[illegible]

अलंकार-मीमांसा

डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला
१३३

अलंकार-मीमांसा

डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'
एम्० ए० (हिन्दी-संस्कृत), पी-एच० डी०
हिन्दी-विभाग, एस. सिन्हा कालेज, औरंगाबाद (गया)

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१
१९७०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२६

मूल्य : ४-००

© चौखम्बा विद्याभवन

चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१

फोन : ६३०७६

प्रधान कार्यालय :

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

गोपाल मन्दिर लेन,

पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स ८, वाराणसी-१

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

THE

VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA

133

*****

ALAMKĀRA-MĪMĀMSĀ

(A Study of Alamkāras)

By

DR. RĀJAVAMŚA SAHĀYA 'HĪRĀ',

M. A. (Hindi-Sanskrit), Ph. D.

Department of Hindi

S. Sinha College, Aurangabad, (Gaya)

THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI-1

1970

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

© The Chowkhamba Vidyabhawan
Post Box No. 69

Chowk, Varanasi-1 (India)

1970

Phone : 63076

First Edition

चौखम्बा विद्याभवन
चौक वाराणसी - 0542-2420404
रू० २५/-

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Publishers & Oriental Book-Sellers

P. O. Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi-1 (India)

Phone : 63145

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पूज्य गुरुदेव

आचार्य श्री बनारसी लाल जी 'काशी'

के

कर कमलों में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आमुख

अलंकार वाणी के शृङ्गार एवं काव्य के सौन्दर्य के साधन हैं। भारतीय आचार्यों ने अलंकार को सौन्दर्य का पर्याय मानते हुए इसे 'सौन्दर्यमलंकारः' कहा है। प्राचीन भारतीय साहित्यशास्त्र में अलंकारों का विशद विवेचन किया गया है और इसके स्वरूप-निरूपण, भेद-प्रस्तार तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में गम्भीर ऊहापोह किए गए हैं। भारतीय साहित्यशास्त्रियों ने अलंकारों का अत्यधिक महत्त्व आँकते हुए इन्हें कथन को आकर्षक एवं प्रभावशाली बनाने वाले साधनों के रूप में प्रदर्शित किया है। अलंकारों का महत्त्व इससे भी प्रकट होता है कि कतिपय आचार्यों ने इसे काव्य का अनिवार्य तत्त्व मानते हुए पृथक् रूप में अलंकार-सम्प्रदाय की स्थापना की है। हाँ, यह अवश्य है कि काव्य में अलंकारों के स्थान-निर्धारण के सम्बन्ध में उनके विचार परस्पर विरोधी एवं भिन्न-भिन्न रहे हैं। आलंकारिकों का एक वर्ग ऐसा है जो इसे काव्य का शोभाकारक धर्म स्वीकार करते हुए अलंकारविहीन रचना को उष्णता-रहित अग्नि की भाँति व्यर्थ एवं वाणी को विधवा मान लेता है; किन्तु इस अतिवादी दृष्टिकोण के विपरीत भी ऐसे विचार प्रकट किये गए हैं, जिनमें अलंकारों को काव्य का अनिवार्य तत्त्व नहीं स्वीकार किया गया है। दूसरे खेवे के आचार्य अलंकार को काव्य में वही स्थान प्रदान करते हैं जो स्थान किसी सुन्दरी के शरीर में प्रसाधन के साधनों; जैसे कटक, कुण्डल आदि को प्राप्त है। ये आचार्य इस विचार के पोषक हैं कि काव्य में अलंकार न भी रहें तो उसका महत्त्व कम नहीं होता। अतः अनलंकृत काव्य भी महनीय हो सकता है। भारतीय आचार्यों ने अलंकारों के प्रयोग विषयक तथ्य पर विचार करते हुए काव्य में इसके आधिक्य पर बल नहीं दिया। इनके अनुसार अलंकारों से बोझिल रचना काव्य न

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रह कर उक्तिवैचित्र्यमात्र बन जायगी। कवि को अलंकारों के प्रयोग में सतर्क रहने की आवश्यकता पड़ती है और सिद्धहस्त कवि के काव्य में तो अलंकार स्वतः स्फुरित हो जाते हैं, उसे इनके लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। अलंकारों के उचित निर्वाह में ही कवि-कर्म की सार्थकता सिद्ध है।

संस्कृत साहित्यशास्त्र के इतिहास में एक तथ्य अत्यन्त विलक्षण दिखाई पड़ता है कि अलंकार विरोधी आचार्य भी अपने ग्रन्थों में अलंकार को महत्त्वपूर्ण स्थान देकर इनका विशद विवेचन करते हैं। अन्तिम खेवे के आचार्यों ने, जो वस्तुतः अलंकारवादी आचार्य नहीं हैं, अलंकारों का गम्भीर विवेचन करते हुए तद्विषयक नवीन तथ्य प्रस्तुत किये हैं और अलंकारवादी आचार्यों की अपेक्षा इसके स्वरूप का अधिक वैज्ञानिक मूल्यांकन किया है। अलंकारों के वैज्ञानिक वर्गीकरण एवं समकोटिक अलंकारों में अन्तरस्थापन तथा इनका सीमा-निर्धारण एवं इनके स्वरूप का स्थिरीकरण विषयक महनीय स्थापनायें परवर्त्ती काल के आचार्यों की ही हैं।

अलंकार विरोधी आचार्यों के प्रबल विरोध के कारण भी अलंकारों का विकास होता गया और अन्ततः १२५ अलंकारों का स्वरूप स्थिर हुआ। वस्तुतः दश शब्दालंकार, सौ अर्थालंकार एवं दो मिश्रालंकार ही वास्तविक अलंकार हैं और शेष अलंकार अमान्य ठहरा दिये गए हैं। अलंकार भारतीय सौन्दर्य-दर्शन की महनीय देन हैं। इनकी कितनी आलोचना क्यों न हो, पर इनके महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता। यों तो प्राचीन आचार्यों ने अलंकार काव्य को निकृष्ट या अवर काव्य कह कर इसे हेय दृष्टि से देखा है, किन्तु आज का आलोचक इनके महत्त्व को स्वीकार कर रहा है। अनेक पाश्चात्य पण्डितों का कहना है कि भारत में सौन्दर्यशास्त्र का विकास नहीं हो सका है और वहां 'सौन्दर्य शास्त्र' नाम का कोई स्वतन्त्र शास्त्र है ही नहीं। किन्तु उनकी यह मान्यता अलंकारों के अध्ययन करने से खण्डित हो जायगी, ऐसा मेरा व्यक्तिगत विचार है। अलंकार न केवल काव्य के शोभाधायक या उत्कर्ष के हेतु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हैं अपितु ये चित्र-विधान एवं बिम्ब-विधान में कवि-कर्म के महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में प्रतिष्ठित किये जा सकते हैं।

अलंकार कवि की मनःस्थिति के मापन के महत्त्वपूर्ण मानदण्ड हैं। किस परिस्थिति में एवं किस मानसिक स्थिति में कवि किस विषय का किस प्रकार वर्णन करता है एवं उसके भावों को अभिव्यक्त करने में भाषा कहां तक सहायक होकर उसकी कल्पना को रूपायित करती है, इन तथ्यों को जानने में अलंकारों का महत्त्वपूर्ण योग निरूपित किया जा सकता है। किसी चित्र को प्रस्तुत करते समय कवि की कल्पना किस प्रकार विविध रूपों को प्रदर्शित करती है, इस कार्य में अलंकारों का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। बिम्बविधान के तो मानो अलंकार प्राण हैं। आज का विवेचक अलङ्कारों को हेय दृष्टि से न देख कर इनके मनोवैज्ञानिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए काव्य एवं जीवन में इनकी व्यावहारिकता पर सन्देह नहीं प्रकट करता। भाषण-कला के लिए तो अलंकारों की उपयोगिता निर्विवाद सिद्ध होती है। इस प्रकार आज अलंकार विषयक समस्त विरोधी भावनायें खण्डित हो चुकी हैं और काव्य में इनकी महत्ता पुनः स्वीकार की जाने लगी है। हिन्दी की आधुनिक कविता में विशेषतः प्रयोगवाद, नई कविता एवं अकविता में—भी अलंकारों के धड़ल्ले के साथ प्रयोग किये गए हैं। कतिपय शोधकर्त्ताओं ने आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार-विधान का अन्वेषण कर इस तथ्य की पुष्टि की है।

अप्रस्तुत विधान के नियोजन में अलंकार महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं। अतः इनकी उपयोगिता को कम नहीं किया जा सकता। मैं विगत २५ वर्षों से भारतीय शास्त्र एवं अलंकारों का अध्ययन करता चला आ रहा हूँ। अलंकारों को अपने शोध का विषय बनाते हुए मैंने इस पर चार खण्डों में पुस्तक लिखने की योजना बनाई थी। जिनसें प्रथम भाग का विषय अलंकारों का ऐतिहासिक मूल्यांकन था। यह विषय मेरी पी-एच० डी० की उपाधि का शोध प्रबन्ध है जिसे मैंने हिन्दी के महान् साहित्यशास्त्री तथा भारतीय काव्यशास्त्र एवं रीतिकाव्य के अधिकारी विद्वान् पूज्य गुरुदेव आचार्य डॉ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के निर्देशन में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पूरा किया है। इसके द्वितीय भाग में अलंकारों का सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है जो चौखम्बा संस्कृत सीरीज से प्रकाशित हो रहा है। इसमें हिन्दी के साथ-ही-साथ संस्कृत के भी उदाहरण दिये गए हैं। अलंकार विषयक प्रस्तुत ग्रन्थ तृतीय कड़ी के रूप में है जिसमें अलंकारों का सैद्धान्तिक निरूपण कर केवल हिन्दी उदाहरणों से सजाया गया है। मेरे अध्ययन का चतुर्थ खण्ड तैयार हो रहा है जिसमें अलंकार-विषयक विविध मान्यताओं तथा भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वानों के विवेचन को स्थान दिया जायगा। इसमें अलंकारों की मनोवैज्ञानिक स्थिति तथा काव्य में उनके उपयोग के अतिरिक्त भरत से लेकर अत्याधुनिक युग के हिन्दी आचार्यों का अलंकारसम्बन्धी धारणा का मूल्यांकन होगा।

मैंने आज से २५ वर्ष पूर्व अलंकारों का अध्ययन पूज्यगुरुदेव आचार्य बनारसी लाल जी 'काशी', साहित्यरत्न, भूतपूर्व अध्यापक तिलौथू विद्यालय के चरणों में बैठ कर किया था। इस पुस्तक के लेखन में उन आचार्य-प्रवर का बहुत बड़ा हाथ है।

इस ग्रन्थ के लेखन में अनेक हितचिंतकों, मित्रों, सम्बन्धियों एवं शिष्यों का बहुत बड़ा योग रहा है और मैं उन सभी व्यक्तियों का आभारी हूँ। पूज्य भैया अशर्फीलाल एवं मनोहरलाल जी ने मुझे पग-पग पर प्रोत्साहित कर मेरे लेखन-कार्य को बढ़ाया है इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। मेरे पूज्य भाई साहब ठाकुर इन्द्रनाथ प्रसाद सिंहा, अधौरा निवासी, चि० भागिनेय ठाकुर सुधीरनाथ प्रसाद सिन्हा 'लल्लन' ने मेरे पथ को सदा प्रशस्त कर मुझे लिखने में प्रवृत्त किया है, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ। मेरे दो मित्रों—पं० बाबूराम दूबे एवं पं० लालमणि दूबे—का वरदहस्त मेरे जीवन का सँबल रहा है। ये मेरे अपने हैं, अतः इन्हें धन्यवाद किन शब्दों में दूँ। आज मुझे अपने तीन गुरुओं की अनुपस्थिति खटक रही है इसका मुझे काफी दुःख है। दैवदुर्विपाक से वे तीनों ही व्यक्ति दिवंगत हो चुके हैं। यदि आज वे जीवित होते तो उन्हें सर्वाधिक प्रसन्नता होती। मैं उनकी दिवंगत आत्माओं के प्रति श्रद्धा के सुमन अर्पित कर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रहा हूँ। वे हैं—पं० विश्वनाथ द्विवेदी, पं० चन्द्रशेखर शर्मा (बी० ए० एल० एल० बी०) तथा पं० मंगलेश्वर तिवारी।

वाराणसी के 'चौखम्बा संस्कृत सीरीज' प्रकाशन संस्थान के संचालक महोदयों का मैं अतिशय आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में अत्यधिक उत्साह दिखाया है।

अन्त में पाठक से नम्र निवेदन है कि पृ० १०९, पंक्ति ९ में 'अर्थ है प्रकार ' की जगह '—अर्थ है प्रकारान्तर।' तथा पृ० १२१, पंक्ति १८ में 'का होना विशेषोक्ति' की जगह 'का न होना विशेषोक्ति' पढ़ने की कृपा करेंगे—प्रमाद से अशुद्ध छप गया है।

फाल्गुनी पूर्णिमा
वि० सं० २०२६

—लेखक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सहायक ग्रंथों की सूचो

संस्कृत :

काव्यादर्श—दण्डी (हिन्दी अनुवाद)–चौखम्बा

काव्यालंकार सूत्र—वामन–हिन्दी भाष्य–आ० विश्वेश्वर

काव्यालंकार (हिन्दी अनुवाद)–चौखम्बा

काव्यालंकार (हिन्दी अनुवाद) डॉ० सत्यदेव चौधरी

ध्वन्यालोकलोचन—(हिन्दी अनुवाद)–चौखम्बा

वक्रोक्तिकाव्यजीवितम्—कुन्तक–एस० के० डे० (सम्पादित)

व्यक्तिविवेक—महिमभट्ट–(रुय्यक कृत टीका सहित) चौखम्बा

काव्यप्रकाश—मम्मट–प्रदीपोद्योत

अलंकारसर्वस्व—विमर्शिनी सहित–रुय्यक

अलंकारसर्वस्व (हिन्दी अनुवाद) डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी

चन्द्रालोक—जयदेव (हिन्दी अनुवाद सहित)–चौखम्बा

काव्यमीमांसा—राजशेखर (हिन्दी अनुवाद)–चौखम्बा

प्रतापरुद्रीय—विद्यानाथ

सरस्वतीकण्ठाभरण—भोज–रत्नेश्वर एवं जगद्धर की टीका सहित

साहित्य-दर्पण–(हिन्दी अनुवाद)–चौखम्बा

कुवलयानन्द (अप्पय दीक्षित) अलंकारचन्द्रिका सहित

चित्रमीमांसा—अप्पय दीक्षित–काव्यमाला

औचित्यविचारचर्चा–क्षेमेन्द्र—हिन्दी अनुवाद–चौखम्बा

रसगंगाधर (१–२ भाग सम्पूर्ण)–संस्कृत हिन्दी टीका–चौखम्बा

अलंकारकौस्तुभ—विश्वेश्वर पंडित

अलंकार–प्रदीप—विश्वेश्वर पंडित–चौखम्बा

वाग्भटालंकार—वाग्भट

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी ग्रन्थ :

रसमंजरी—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार
संक्षिप्त अलंकारमंजरी ,,
काव्य-दर्पण—पं० रामदहिन मिश्र
काव्यालोक—भाग—१ ,,
वाङ्मयविमर्श— आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १, २, पं० बलदेव उपाध्याय
सिद्धान्त और अध्ययन—डॉ० गुलाब राय
साहित्यालोचन—डॉ० श्यामसुन्दर दास
भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका भाग १
ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त—डॉ० भोलाशंकर व्यास
भारतीय काव्यशास्त्र और काव्यालंकार—डॉ० भोलाशंकर व्यास
अलंकार-मीमांसा—डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी
भारतीय साहित्य-शास्त्र—डॉ० देशपाण्डे
हिन्दी और मराठी का काव्यशास्त्र—डॉ० मनोहर काले
काव्यात्म-मीमांसा—डॉ० जयमन्त मिश्र—चौखम्बा
संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पी० वी० काणे
रस-मीमांसा—आ० रामचन्द्र शुक्ल

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अलङ्कार-सूची

	पृष्ठ		पृष्ठ
शब्दालङ्कार—		माला दीपक	८४
अनुप्रास और उसके भेद	३	प्रतिवस्तूपमा	८५
यमक	९	दृष्टान्त	८८
श्लेष	१२	उदाहरण	८९
वक्रोक्ति	१७	निदर्शना	९०
पुनरुक्ति प्रकाश	१९	व्यतिरेक	९४
वीप्सा	२०	सहोक्ति	९६
पुनरुक्तवदाभास	२१	विनोक्ति	९८
अर्थालङ्कार—		समासोक्ति	९९
उपमा	२४	परिकर	१०३
अनन्वय	३५	परिकराङ्कुर	१०४
उपमेयोपमा	३६	अर्थश्लेष	१०५
रशनोपमा	३८	अप्रस्तुत प्रशंसा	१०६
समुच्चयोपमा	३९	पर्यायोक्ति	१०९
मालोपमा	४०	व्याजस्तुति	१११
प्रतीप	४२	आक्षेप	११३
रूपक	४६	विरोध या विरोधाभास	११६
परिणाम	५२	विभावना	११८
उल्लेख	५४	विशेषोक्ति	१२१
स्मरण	५७	असम्भव	१२३
सन्देह	५९	असङ्गति	१२३
भ्रान्तिमान्	६२	विषम	१२६
अपह्नुति	६५	सम	१२८
उत्प्रेक्षा	६८	विचित्र	१२९
अतिशयोक्ति	७३	अधिक	१३०
तुल्ययोगिता	७९	अल्प	१३१
दीपक	८२	अन्योन्य	१३२
कारक दीपक	८२	विशेष	१३२

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्याघात	१३४	सूक्ष्म	१७६
कारणमाला	१३६	व्याजोक्ति	१७७
एकावली	१३७	लोकोक्ति	१७८
सार	१३९	स्वभावोक्ति	१७९
यथासंख्य	१४०	भाविक	१८१
पर्याय	१४१	उदात्त	१८३
परिवृत्ति	१४४	निरुक्ति	१८४
परिसंख्या	१४६	अत्युक्ति	१८५
विकल्प	१४९	हेतु	१८६
समुच्चय	१५०	अनुमान	१८७
समाधि	१५३	मिश्रालङ्कार या उभयालङ्कार	१८८
प्रत्यनीक	१५५	संसृष्टि	१८९
अर्थापत्ति	१५७	संकर	१९१
काव्यलिङ्ग	१५८	मिथ्याध्यवसिति	१९३
अर्थान्तरन्यास	१६१	प्रहर्षण	१९४
विकस्वर	१६४	विषादन	१९५
प्रौढोक्ति	१६५	अनुज्ञा	१९५
ललित	१६६	तिरस्कार	१९६
उल्लास	१६६	रत्नावली	१९६
अवज्ञा	१६७	अनुगुण	१९६
लेश	१६८	गुढ़ोक्ति	१९७
मुद्रा	१६९	विवृतोक्ति	१९७
तद्गुण	१६९	लोकोक्ति	१९८
अतद्गुण	१७०	छेकोक्ति	१९८
मीलित	१७१	अत्युक्ति	१९९
सामान्य	१७२	प्रतिषेध	१९९
उन्मीलित	१७३	विधि	२००
उत्तर	१७३	अनुकूल	२००

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अलंकार-मीमांसा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शब्दालंकार

१. अनुप्रास

जहाँ व्यंजनों की समता हो, पर उनके स्वर मिलें अथवा नहीं तो वहाँ अनुप्रासालंकार होता है। अनुप्रास शब्द अनु + प्र + आस के योग से बना है। अनु का अर्थ है अनुकूल या बार-बार, प्र का प्रकर्ष या नैकट्य तथा आस का रखना या विन्यास करना। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ वर्णनीय रस के अनुकूल व्यंजनों का बार-बार और आस-पास विन्यास करना या रखना। अतः रस, भावादि के अनुकूल प्रकृष्टन्यास को अनुप्रास कहा जाएगा। इससे यह ज्ञात होता है, कि रस के प्रतिकूल वर्णों की रचना या प्रयोग में अनुप्रास नहीं होगा—

"रसाद्यनुगतः प्रकृष्टो न्यासोऽनुप्रासः।"

का० प्र० पृ० ४९५-बा० बो०।

यह दो प्रकार का होता है—वर्णानुप्रास और शब्दानुप्रास। निरर्थक वर्णों की आवृत्ति को वर्णानुप्रास एवं सार्थक वर्णों के आवर्त्तन को शब्दानुप्रास कहते हैं।

अनुप्रासो द्विविधः वर्णानुप्रासः शब्दानुप्रासश्चेति। निरर्थकवर्णानुप्रासः प्रथमः द्वितीयस्तु सार्थक वर्णानुप्रासस्वरूपः। बाल-बोधिनी पृ० ४९५

वर्णानुप्रास के दो भेद होते हैं—छेकानुप्रास एवं वृत्त्यनुप्रास तथा शब्दानुप्रास का एक ही प्रकार है लाटानुप्रास। अनुप्रास के अन्य दो भेद भी हैं—श्रुत्यनुप्रास और अन्त्यानुप्रास।

अनुप्रास में वर्णमैत्री का प्राधान्य होता है तथा इसमें एक सी व्यंजन ध्वनियां अनेक शब्दों के आदि अथवा अन्त में क्रमतः प्रयुक्त होती हैं। इसमें कवि का मुख्य ध्यान व्यंजन-साम्य पर टिका रहता है। इसमें केवल व्यंजनों की ही समता होती है, स्वर-साम्य आवश्यक नहीं होता। यदि स्वरों में समता दिखाई पड़े तो ठीक, पर स्वर-वैसादृश्य के कारण भी अनुप्रास सम्भव है। अतः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आचार्यों ने व्यंजनसादृश्य को अनुप्रास का अनिवार्य तत्त्व मानते हुए 'स्वर-सादृश्य' को वैकल्पिक माना—

"न च स्वरमात्रसादृश्ये रसानुगमः न वा सहृदयहृदयावर्जकत्वलक्षणः प्रकर्षः।" प्रदीप पृ० ४९४

आचार्यों ने स्पष्टतः यह निर्देश किया है कि स्वर के वैसादृश्य में भी व्यंजन-साम्य के कारण अनुप्रास होगा। यदि किसी रचना में स्वर एवं व्यंजन दोनों में साम्य हो तो उसमें उभय साम्य के कारण अधिक चारुता आ जायगी। पर स्वर एवं व्यञ्जनों के सादृश्य को अनुप्रास के लिए अनिवार्य नहीं स्वीकार किया जा सकता—अलङ्कारप्रस्तावे केवलस्वरपौनरुक्त्यमचारुत्वान्न गण्यते। अलंकारसर्वस्व पृ० १६॥

आचार्यों ने व्यंजनों की आवृत्ति को व्यवधानरहित होना आवश्यक माना है। अर्थात् एक व्यंजन के बाद उसी के पास ही अन्य व्यंजन की आवृत्ति होती है। यदि व्यंजनों के आवर्त्तन में अधिक व्यवधान हो जाय तो अनुप्रास का चमत्कार या सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

अनुप्रास के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह शब्द के आदि में ही हो, शब्द के आदि, अथवा अन्त में भी वर्ण-साम्य के कारण चमत्काराधान होता है। रसानुगामिनी प्रकृष्ट रचना को ही अनुप्रास कहते हैं।

वह मधुर मधुमास था, जब गंध से।
मुग्ध होकर झूमते थे मधुपदल॥ पंत, ग्रन्थि॥

यहां मधुर, मधुमास में म की आवृत्ति होने से अनुप्रास है।

अनुप्रास की विशेषताएँ—

क—अनुप्रास योजना का महत्त्व, वर्णविन्यास की रसानुकूलता तथा उसकी सार्थकता भावानुरूप अक्षर-न्यास में है।

ख—इसमें वृत्तियों के आधार पर भावानुरूप शब्द-सृष्टि होती है।

ग—अनुप्रास में भाव, नाद एवं वर्णमैत्री के नियोजन से अधिक सौन्दर्याधान होता है।

घ—कविता में स्वाभाविक अनुप्रास के प्रयोग से सहज आकर्षण होता है। प्रयत्नसाध्य अनुप्रास का प्रयोग उसकी रमणीयता को नष्ट कर देता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

ङ—"अनुप्रास योजना का मनोविज्ञान यही है कि कर्ण का अनुरणन एक श्रुतिसौन्दर्य की सृष्टि करता है।"

—आधुनिक हिन्दी-कविता में अलंकार-विधान । पृ० २१६ ॥

च—उच्चारण-सादृश्य के साथ अनुप्रास में उसका भावानुकूल भी होना आवश्यक है। अर्थात् उच्चारण-सादृश्य भावानुकूल हो।

६—अनुप्रास में अर्थानुरूप उच्चारण होना चाहिए, अर्थात् उच्चारण एवं अर्थ में सादृश्य का होना आवश्यक है। तात्पर्य यह कि भावों की कोमलता एवं कठोरता के अनुरूप वर्ण-योजना होनी चाहिए।

(क) छेकानुप्रास

अनेक वर्णों की स्वरूप एवं क्रमानुसार एक बार आवृत्ति होने पर छेकानुप्रास होता है।

छेक शब्द का अर्थ है चतुर। चतुरजनों को प्रिय होने के कारण इसे छेकानुप्रास कहते हैं—छेको विदग्धस्तत्प्रयोज्यत्वादेष छेकानुप्रासः। साहित्यदर्पण १०। ३ ॥ वृत्ति विमला पृ० ८३ ॥

छेकानुप्रास में अनेक व्यंजनों या व्यंजन समुदाय की एक बार ही आवृत्ति होती है, पर इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह आवृत्ति स्वरूपतः एवं क्रमतः दोनों ही प्रकार से होनी चाहिए। अर्थात् इस अलंकार में अनेक व्यञ्जनों की समता स्वरूप से भी हो और क्रम से भी। अर्थात् 'एक ही स्वरूप के व्यंजन उसी क्रम से यदि दूसरी बार आयें तो छेकानुप्रास होगा'। उदाहरणस्वरूप रस और सर को लिया जा सकता है। दोनों का स्वरूप एक ही है किन्तु रस में र के बाद स है और सर में स के बाद र। अर्थात् दोनों में क्रम का साम्य नहीं है, इसलिए यहाँ छेकानुप्रास नहीं होगा। कमल और कोमल में छेकानुप्रास हो जायेगा क्योंकि इनमें स्वरूप और क्रम एक ही है।

उदाहरण—क—बाल-बेलि सूखी सुखद, इहि रूखे रुख घाम।
फेरि डहडही कीजिए सुरससींचि घनस्याम ॥ बिहारी।

यहाँ 'बाल-बेलि, सूखी सुख, रूखे रुख' में क्रमशः ब, ल, स, ख एवं र, ख की स्वरूप एवं क्रम से आवृत्ति हुई है, अतः छेकानुप्रास हुआ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—मधुर मधुमास का वरदान क्या है ?
तो प्रणय में प्रार्थना का मोह क्यों है ? माखनलाल चतुर्वेदी ।

ग—सुरा सुरभिमय वदन अरुण वे नयन भरे आलस अनुराग ।
कल कपोल था जहाँ बिछलता कल्प वृक्ष का पीत पराग ॥
कामायनी ॥

घ—लपट से झट रूख जले जले, नद नदी घट सूख चले चले ।
विकल ये मृग मीन मरे मरे, विकल ये दृग दीन भरे भरे ॥ साकेत ॥

(ख) वृत्त्यनुप्रास

वृत्तिगत एक वर्ण की अथवा अनेक वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने पर वृत्त्यनुप्रास होता है ।

रसानुकूलवर्ण-विन्यास ही वृत्ति है । इसमें प्रत्येक रस के अनुसार वर्णों का प्रयोग होता है । यदि शृङ्गार रस की रचना हो तो वहाँ मधुर वर्ण तथा वीर रस की रचना में कठोर वर्ण प्रयुक्त होते हैं । इस प्रकार वृत्त्य अनुप्रास का अर्थ हुआ वृत्ति के अनुरूप वर्ण-विन्यास । तीन प्रधान रसों के आधार पर तीन प्रकार की वृत्तियाँ मानी गयी हैं—उपनागरिका, परुषा एवं कोमला । शृङ्गार में उपनागरिका, वीर रस में परुषा तथा शान्त रस में कोमला वृत्ति होती है । कोमल, कठोर एवं मृदु गुणों के आधार पर इनका वर्गीकरण किया गया है ।

क—उपनागरिका वृत्ति—इसमें कोमल तथा माधुर्य गुण-व्यंजक वर्णों का प्रयोग होता है । सानुनासिक वर्णों से युक्त एवं कठोर वर्णों से रहित रचना उपनागरिका वृत्ति होती है । इसका प्रयोग शृङ्गार, हास्य एवं करुण रसों में होता है ।

उदाहरण—रस सिंगार मज्जन किये कंजनु भंजनु दैन ।
अंजन रंजन हू बिना, खंजन गंजन नैन ॥ बिहारी ॥

ख—परुषावृत्ति—इसमें ओजगुण व्यंजक वर्णों का प्रयोग होता है । कठोरवर्ण, द्वित्ववर्ण, संयुक्तवर्ण, लंबे-लंबे समास, रेफ आदि इसमें प्रयुक्त होते हैं । यह वीर, रौद्र एवं भयानक रसों में दिखाई पड़ती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—प्रलम्ब आतंक-प्रसू उपद्रवी, अतीव मोटा यम-दीर्घ-दण्ड सा।
कराल आरक्तिम-नेत्रवान औ, विपाक्त-फूत्कार-निकेत सर्प था॥
प्रिय-प्रवास १३। ४१॥

ग—कोमला वृत्ति—इसमें प्रसाद गुण व्यंजक वर्णों का प्रयोग होता है तथा यह शान्त, अद्भुत एवं वीभत्स रसों में विशेष रूप से शोभा पाती है। यों तो सभी रसों में इसका प्रयोग संभव है।

उदाहरण—कब टल सकता था श्याम के टालने से
सुख पर मंडलाता था स्वयं मत्त होके।
यक दिन वह था औ एक है आज का भी,
जब भ्रमर न मेरी ओर तू ताकता है॥
प्रिय-प्रवास १५। ७७॥

क—पर जो छंद छंद के छलिया, जो तुम बन्द बन्द के बन्दी।
सौ सौ सौगंधों के साथी? मैंने तुमको नहीं पुकारा॥
माखनलाल चतुर्वेदी।

यहाँ छंद छंद छलिया में 'छ' की तथा बन्द, बन्द बन्दी में बन्द की अनेक वार आवृत्ति हुई है। सौ सौ सौगंधों में एक वर्ण की अनेक वार आवृत्ति हुई है। अतः वृत्त्यनुप्रास हुआ।

ख—नय-नीति-निपुणता-निधि नव-नागर तू है;
स्वातन्त्र्य-शान्ति, सुख-शासन, सागर तू है।
साहित्य, शिल्प, समुदाय, शिक्षा सर तू है,
शुचि सृष्टि-सार सौरभ-शोभाकर तू है। लोचनप्रसाद पाण्डेय।

ग—लीलाकारी, ललित-गलियाँ लोभनीयालयों में।
क्रीड़ाकारी कलित कितने केलिवाले थलों में॥ प्रिय-प्रवास ८।६२।

घ—गरज गगन के गान गरज गंभीर स्वरों में॥ पंत।

ङ—पुलकित पलक पसार अपार। पंत।

(ग) लाटानुप्रास

शब्द और अर्थ दोनों की पुनरुक्ति में तात्पर्यमात्र के भेद को लाटानुप्रास कहते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लाट का अर्थ है गुजरात। गुजरात देश के लोगों को प्रिय होने के कारण इसे लाटानुप्रास कहा जाता है—लाटजन-वल्लभत्वाच्च लाटानुप्रासः। काव्य-प्रकाश ९। ८१। वृत्ति।

इस अलंकार में शब्द और अर्थ एक ही होते हैं और उनकी आवृत्ति भी होती है किन्तु अन्वय करने पर उनका तात्पर्य बदल जाता है।

इसमें शब्दों या पदों की आवृत्ति होती है, अतः इसे पदानुप्रास या शब्दानुप्रास कहते हैं।

लाटानुप्रास के तीन प्रधान तत्त्व हैं—शब्दावृत्ति या उच्चारणसादृश्य, अर्थ सादृश्य एवं तात्पर्य भेद।

लाटानुप्रास में शब्द और अर्थ में अभिन्नता होती है किन्तु अन्वय करने पर उनका तात्पर्य बदल जाता है। इसके कतिपय उदाहरणों में अर्थान्तरसंक्रमित वाच्यध्वनि भी दिखाई पड़ती है।

जैसे कहा जाय कि 'रविकिरणों का स्पर्श प्राप्त कर कमल कमल हो जाता है' रविकिरणानुगृहीतानि भवन्ति कमलानि कमलानि।

इसमें कमल शब्द की आवृत्ति हुई तथा दोनों का अर्थ भी एक ही है किन्तु प्रथम कमल उद्देश्य है तो द्वितीय विधेय। इसका अर्थ हुआ कि रवि-किरणों से अनुगृहीत होने पर कमल प्रस्फुटित हो जाता है या शोभायुक्त हो जाता है। शब्द-सादृश्य एवं अर्थ-सादृश्य दोनों ही इसमें विद्यमान होते हैं।

वे घर हैं वन ही सदा जहँ है बंधु–वियोग।
वे घर हैं वन ही सदा जहँ नहिं बंधु–वियोग॥

यहाँ शब्द और अर्थ एक ही हैं किन्तु अन्वय करने पर उनका तात्पर्य बदल जाता है। जहाँ भाइयों में विरोध है वहाँ घर भी वन के समान (भयंकर) है और जहाँ भाइयों में प्रेम है वहाँ वन भी घर के समान है।

(घ) श्रुत्यनुप्रास

जहाँ तालु, कण्ठ आदि एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों की समानता हो तो वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है। इसमें एक ही स्थान में उच्चरित होने वाले वर्ण प्रयुक्त होते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क—किस तपोवन से किस काल में सच बता मुरली कल-नादिनी ।
अवनि में तुझको इतनी मिली, मधुरता, मृदुता, मनहारिता ॥
प्रिय-प्रवास ॥

यहाँ अन्तिम चरण में दन्त्य वर्णों की आवृत्ति हुई ।

ख—झाँक न झंझा के झोंके में झुक कर खुले झरोखे से ॥
पंचवटी, गुप्तजी ।

यहाँ तालुस्थान के वर्ण 'झकार' की आवृत्ति हुई है । श्रुत्यनुप्रास में एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों की आवृत्ति में काव्य-सहृदय के कानों को सुखप्रद लगता है ॥

(ङ) अन्त्यानुप्रास

प्रथम स्वर के साथ यथावस्थ व्यंजन की आवृत्ति होने पर अन्त्यानुप्रास होता है जो पद या पाद के अन्त में पड़ता है । हिन्दी में इसे 'तुकान्त' भी कहते हैं । पद या पाद के अन्त में होने के कारण इसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।

आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई कान्ता की कम्पित कमनीय गात,
याद आई चाँदनी से धुली हुई आधी रात ॥ 'निराला'

यहाँ बात, रात, गात में अन्त्यानुप्रास है ।

२—यमक

सार्थक होने पर भिन्न अर्थ वाले वर्णसमुदाय या वर्णश्रृङ्खला की क्रमशः आवृत्ति या पुनः श्रवण को यमक कहते हैं ।

यमक का शाब्दिक अर्थ है दो—'यमौ द्वौ समजातौ तत्प्रतिकृतियमकम्' अर्थात् 'यम अथवा जोड़ुए पैदा हुए दो जीव की प्रतिकृति अर्थात् चित्ररचना' (हिन्दी काव्य-प्रकाश, डॉ० सत्यव्रत सिंह) । समान आकार के वर्णसंघात की आवृत्ति होने से इसे यमक कहते हैं । इसमें वर्णों की आवृत्ति कम से कम दो वार अवश्य होनी चाहिए । यमक में सार्थक वर्णों के अतिरिक्त निरर्थक वर्णों की भी आवृत्ति होती है । सार्थक वर्णों की आवृत्ति में यह ध्यान रखना चाहिए कि वे सभी भिन्नार्थक हों । इसकी विशेषताएं—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क—इसमें स्वरव्यंजनसमुदाय या वर्णसमूह की आवृत्ति होती है।

ख—लाटानुप्रास में भी वर्णसमुदाय की आवृत्ति होती है अतः उससे भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए यमक में वर्णसमुदाय का भिन्नार्थक होना आवश्यक है। लाटानुप्रास में केवल एकार्थक वर्णों की आवृत्ति होती है। इसलिए परिभाषा में कहा गया कि 'अर्थ होने पर भिन्न अर्थ वाले'।

ग—इसमें वर्णों की आवृत्ति पूर्वक्रम से होनी चाहिए अन्यथा सर और रस में भी यमक होने लगेगा। इसलिए परिभाषा में पुनः श्रुति का प्रयोग किया गया है।

घ—निरर्थक वर्णों की आवृत्ति में भी यमक होता है।

ङ—यमक अलंकार में 'जिस समुदाय की आवृत्ति हो उसका एक अंश या सर्वांश यदि अनर्थक हो तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु उसके किसी एक अंश या सर्वांश के सार्थक होने पर आवृत्त समुदाय की भिन्नार्थकता आवश्यक है।' समानार्थक शब्दों की आवृत्ति में यमक नहीं हो सकता। यमक में अ... वैषम्य को आवश्यक तत्त्व माना गया है।

च—यमक कहीं तो निरर्थक वर्णों का कहीं सार्थक वर्णों का और क... सार्थक-निरर्थक वर्णसमुदायों या पदों का होता है।

छ—इसमें कहीं-कहीं शब्दों या पदों की आवृत्ति होती है तो कहीं ... वाक्य की तथा उनके अर्थ भी बदल जाते हैं।

यमक के प्रयोग के लिए आचार्यों ने यह व्यवस्था की है कि इसका प्रयो... अत्यन्त सावधानी एवं कौशल के द्वारा होना चाहिए। इसके सम्बन्ध में विच... करते हुए ध्वनिकार ने इसका प्रयोग आवश्यक नहीं माना है तथा इसके विध... को रस के प्रतिकूल सिद्ध किया है। यमक तो श्रृङ्गार में सर्वथा वर्जित है।

यमक में डकार, लकार और वकार सर्वथा अभिन्न माने जाते हैं।

क—मैं सुरभि खोजता भटकूँगा वन-वन बन कस्तूरी कुरंग॥ कामाय... 'वन' एवं वन में यमक है। वन का अर्थ अरण्य एवं बन का अर्थ है ... जाना।

ख—तरणि के ही साथ तरल तरंग में,
तरणि डूबी थी हमारी ताल में॥ सुमित्रा पंत।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तरणि और तरणि की आवृत्ति में यमक है प्रथम का अर्थ है सूर्य एवं द्वितीय का नौका।

ग—बोल रसाल रसाल सजाते।

मधु बरसा मधुमास जगाते॥ प्रभातफेरी, नरेन्द्र शर्मा।

रसाल का अर्थ है रसदार, एवं आम (रसाल)

मधु (मिठाई या शहद) मधु (वसंत ऋतु)

निरर्थक पदों का यमक—

फागुन-गुन गा प्राणों की पिक कुहुकी मधुवन यौवन में।

प्रभातफेरी, नरेन्द्र शर्मा।

यहाँ गुन-गुन में निरर्थक तथा सार्थक वर्णों की आवृत्ति हुई।

वाक्यावृत्ति यमक—जब पूरे वाक्य की आवृत्ति हो जाय तो वाक्यावृत्ति यमक होता है।

ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करैं, कंद मूल भोग करैं,
तीन बेर खाती सो तो तीन बेर खाती हैं॥ भूषण।

ऊँचे मंदिरों या राजप्रासादों में रहने वाली अब ऊँची-ऊँची गुफाओं या ऊँचे पर्वतों के अन्दर रहती हैं। मेवा-मिष्टान्न खाने वाली अब जड़ी-बूटी खा रही हैं प्रातः, दोपहर एवं संध्या तीन समय भोजन करने वाली तीन बेर खाकर रह जाती हैं।

भागावृत्ति यमक—जहाँ चरण के आधे भाग की आवृत्ति हो या तीसरे या चतुर्थ भाग की आवृत्ति हो तो वहाँ भागावृत्ति यमक होता है।

दिवि रमनी रमनीय कित, है रति रति सम हीन।
हरि बनिता बनिताहि छिन, मनमथ मथ बस कीन॥ अलंकार-मंजूषा।

यहां रमनी, रति, बनिता और मथ की तीसरे पाद में आवृत्ति हुई है।

सिंहावलोकन या मुक्तपदग्राह्य—जब किसी छन्द के प्रथम चरण के अन्तिम शब्द को उसके द्वितीय चरण के आदि में ग्रहण किया जाय तो वहां मुक्त-पद-ग्राह्य होता है। इसमें अन्तिम शब्द को पुनः ग्रहण कर लिया जाता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। जिस प्रकार सिंह मुड़-मुड़ कर चलता है, दोनों ओर देखते हुए चलता है, उसी प्रकार इस अलंकार का शब्द अन्त एवं आदि दोनों ओर पड़ता है।

उदाहरण—

प्रिय गाओ वह मधुमय गीत, गीत में भरी हुई है प्रीति।
प्रीति में होती है अनरीति, रीति से बढ़ता प्रेम पुनीत॥ 'हीरा'

ख—देव कवि का यह निम्नांकित सवैया इसका सुन्दर उदाहरण है।

लाल है भाल सिन्दूर भरयौ मुख सिन्धुर चारु और बांह बिसाल है।
साल है सत्रुन को कवि 'देव' सुसोभित सोम कला धरे भाल है।
भाल है दीपित सूरज कोटि लौं काटत कोटि कुसंकट जाल है।
जाल है बुद्धि विवेकन को यह पारबती को लड़ायतो लाल है॥

यमक और लाटानुप्रास—यमक और लाटानुप्रास दोनों में ही शब्द औ अर्थ दोनों की आवृत्ति होती है, यही दोनों का साम्य है। इनमें अन्तर यह कि लाटानुप्रास में एकार्थक पदों (शब्दों) की आवृत्ति होती है तो यमक भिन्नार्थक पद आवृत्त होते हैं।

यमक के अन्य उदाहरण—

क—अङ्ग ना मैं दिखाती तऊ अंगना अंगना हमरी ऊनई सी परैं॥

ख—लै चुभकी चलि जातजित, जित जल-केलि अधीर।
कीजतु केसरि-नीर से, तिति तिति के सरि-नीर॥ विहारी॥

ग—अयि सुमनः सुमनः सुमनः सुमनः सुमनोहर कान्ति युते।
श्रित रजनीरजनीरजनीरजनीकरवक्त्रवृते॥

३—श्लेष

श्लिष्ट शब्दों के द्वारा अनेक अर्थों के कथन किये जाने को श्लेषालं कहते हैं।

श्लेष शब्द श्लिष् धातु से बना है जिसका अर्थ है चिपका हुआ। अलंकार में ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जिनमें एकाधिक अर्थ चिपके हैं। श्लेष दो प्रकार का होता है—शब्दश्लेष एवं अर्थश्लेष। शब्द पर आ श्लेष शब्दश्लेष एवं अर्थाश्रित श्लेष अर्थश्लेष कहा जाता है। शब्दश्लेष में श

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिवृत्ति-सहिष्णुता या शब्द परिवर्त्तन को सहने की शक्ति नहीं होती; अर्थात् यदि श्लिष्ट शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रख दिया जाय तो वहां उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। अर्थश्लेष में शब्द-परिवर्त्तन की पूर्ण क्षमता होती है तथा उसमें श्लिष्ट शब्द के बदले उसका पर्यायवाची शब्द रख भी दिया जाय तो उसके चमत्कार में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता। शब्दश्लेष दो प्रकार का होता है—अभंगपदश्लेष एवं सभंगपदश्लेष। जहां पदों को बिना तोड़े ही अनेक अर्थ किये जाँए वहां अभंगपदश्लेष होता है और पदों को तोड़ कर अनेक अर्थ का विधान करने में सभंगपदश्लेष होगा। शब्दश्लेष में शब्द के आधार पर दो या अधिक अर्थ स्फुट होते हैं।

अर्थश्लेष के लक्षण में तीन बातें हैं—

क—इसमें एक ही वाक्य का प्रयोग होता है।

ख—अर्थश्लेष में ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं जो एकार्थवाची होते हैं।

ग—इसमें एकार्थवाची शब्दों से अनेक अर्थ प्रकट होते हैं।

रुय्यक ने इसे अर्थश्लेष माना है। (इनका विचार अर्थश्लेष में देखें)

परवर्त्ती आचार्यों में विश्वनाथ ने मम्मट का अनुकरण किया और इसका स्वरूप व्यवस्थित हो गया।

इन्होंने इसके सभंग, अभंग और सभंगाभंग नामक भेदों का भी उल्लेख किया है। इन्हें मम्मट कृत सभी भेद मान्य हैं।

क—उठे मधुर लहरी मानस में—झरना।

यहाँ 'मानस' के दो अर्थ हैं मन एवं तालाब।

ख—इन्द्रनील मणि महाचषक था सोम रहित उलटा लटका॥

कामायनी।

'सोम' शब्द में श्लेष है जिसका अर्थ है चन्द्रमा तथा सोमरस।

अभंग श्लेष—

ग—जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई॥ आँसू।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ 'घनीभूत' एवं 'दुर्दिन' शब्द में श्लेष है।

घनीभूत के दो अर्थ हैं—इकट्ठी हुई और बादल बनी हुई।

दुर्दिन के भी दो अर्थ हैं—बुरा दिन एवं मेघयुक्त दिवस।

ग—तुम्हारा पी मुख वास तरंग।
आज बौरे भौंरे सहकार॥ गुञ्जन–पंत।

यहाँ बौरे के दो अर्थ हैं—पागल एवं आम की मंजरी।

सभंगपदश्लेष—

क—बहुरि सक्र सम विनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥
रामायण।

यहाँ खलों की वन्दना की गयी है। खलों की उपमा शक्र या इन्द्र से देते हुए गो० तुलसीदास कहते हैं कि जिन्हें सुरा (शराब) नीक है, अच्छी है। यह अर्थ खलों के लिए है।

इन्द्र के पक्ष में सुर (देवता) + अनीक (सेना वाले) हुआ। यहाँ सुरानीक शब्द के दो अर्थ, दो प्रकार से टुकड़े करने से हुए। अतः यह उदाहरण सभंगपदश्लेष का हुआ।

ख—किसी की बिछुड़न न उर में सँभाली गई।
'लाजकाजल' धुला धार बहने लगी॥ हृदयेश।

'लाजकाजल' में सभंगपदश्लेष है। लाज का जल एवं 'लाजकाजल' दो अर्थ, शब्द के दो टुकड़े करने पर हुए।

दोनों का मिश्रण—

अजौं तरयौना ही रह्यौ, स्रुति सेवत इक अङ्ग।
नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकतन के संग॥ विहारी।

तरयौना, नाक, श्रुति एवं मुकतन शब्द में श्लेष है। तरयौना के दो अर्थ हैं—तरा नहीं, एवं कर्णफूल। नाक—स्वर्ग एवं नासिका, श्रुति—कर्ण एवं वेद, मुकतन—मोती एवं सत्संगी, मुक्ति दिलाने वाले। 'तर्यौनाही' में सभंगपद एवं शेष में अभंगपदश्लेष है। 'तर्यौनाही' के दो खण्ड किये गए—तर्यौ, नाही एवं तरयौनाही।

श्लेष की शब्दालंकारता—श्लेष शब्दालंकार है अथवा अर्थालंकार इस प्रश्न को लेकर संस्कृत आलंकारिकों में पर्याप्त मतभेद है। मम्मट और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

विश्वनाथ इसे शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों ही मानते हैं तो भामह, दण्डी एवं रुय्यक अर्थालंकार में ही इसे परिगणित करते हैं। आचार्य रुय्यक ने श्लेष के दो भेदों—सभंगपदश्लेष एवं अभंगपदश्लेष—में से सभंगपदश्लेष को शब्दालंकार एवं अभंग पदश्लेष को अर्थालंकार माना है। न्याय के अनुसार दूसरा शब्द या पद भिन्न होने पर एक ही शब्द या पद में चिपका रहता है। रुय्यक का मत है कि "सभंग में जतुकाष्ठ (लाह और काठ) आचार्य मम्मट एवं विश्वनाथ ने श्लेष के दोनों ही भेदों को शब्दालंकार स्वीकार किया है। आ० मम्मट का विवेचन अत्यन्त वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत है किन्तु विश्वनाथ के विवेचन पर मम्मट की छाया है। पूर्वपक्ष के रूप में उठाये गए प्रश्न का उत्तर देते हुए मम्मट ने इस प्रकार का विचार व्यक्त किया है। स्वरितादि स्वररूप गुण के भेद के फल-स्वरूप भिन्न प्रयत्न से उच्चारण करने योग्य एवं उस स्वर-भेद के अभाव के कारण एक ही प्रयत्न से उच्चार्यमाण शब्दों की रचना को शब्दश्लेष जो दूसरे अलंकारों का प्रतिभास मात्र होता है तथा एक ही प्रयत्न से उच्चार्यमाण समान आकार के शब्दों के दो अर्थों को बतलाने वाला अर्थश्लेष भी जो अर्थालंकार के अन्तर्गत माना गया है उसे शब्दालंकार कैसे स्वीकार किया जा सकता है।

ननु स्वरितादिगुणभेदात् भिन्नप्रयत्नोच्चार्याणां, तदभावादभिन्नप्रयत्नोच्चार्याणां च शब्दानां बन्धेऽलङ्कारान्तरप्रतिभोत्पत्तिहेतुः शब्दश्लेषोऽर्थश्लेषश्चेति द्विविधोऽप्यर्थालंकारमध्ये परिगणितोऽन्यैरिति कथमयं शब्दाऽलंकारः? काव्यप्रकाश, आ० विश्वेश्वर कृत टीका, पृ० ४२२। इसका उत्तर देते हुए मम्मट ने कहा है कि गुण, दोष एवं अलंकार आदि की शब्दनिष्ठता एवं अर्थनिष्ठता का निर्णय अन्वय-व्यतिरेक भाव से होता है। अन्वय-व्यतिरेक का अर्थ है—'तत्सत्त्वे तत्सत्ता अन्वयः एवं तदभावे तदभावो व्यतिरेकः'। अर्थात् किसी के रहने पर किसी का रहना अन्वय एवं किसी के अभाव में किसी का न रहना व्यतिरेक है। इस दृष्टि से किसी शब्द के रहने पर यदि किसी गुण, दोष एवं अलंकार की सत्ता विद्यमान रहे तथा उस शब्द के बदले यदि उसका पर्यायवाची शब्द रख दिया जाय और उस अलंकार, दोष या गुण की सत्ता तिरोहित हो जाय तो उसे शब्दाश्रित माना जाएगा और यदि किसी शब्द विशेष को

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हटाकर उसके स्थान पर उसके समानार्थक शब्द को रखने पर भी यदि गुण-दोष या अलंकार ज्यों के त्यों बने रहें तो वे अर्थाश्रित माने जाएँगे। इस प्रकार अन्वय-व्यतिरेक की इस कसौटी पर कसने के बाद यह निश्चित हो जाता है कि श्लेष के दोनों ही प्रकार शब्दाश्रित हैं, अर्थाश्रित नहीं। अभंग एवं सभंग पदश्लेष दोनों में ही शब्द-परिवर्त्तन की क्षमता नहीं है। अर्थश्लेष का उदाहरण वहाँ होगा जहाँ शब्द-परिवर्त्तन के बाद भी श्लेष की स्थिति अक्षुण्ण रहे।

रञ्चहिं सों ऊंचो चढ़ैं रंचहिं सों घटि जायं।
तुलाकोटि खल दुहुन की एकै रीति लखायं॥

तुला की (तराजू) डण्डी एवं खलों का कार्य एक ही सा है क्योंकि दोनों ही थोड़े में ही ऊपर उठ जाते हैं और थोड़े में ही नीचे झुक जाते हैं। यहाँ 'स्तोकेनोन्नतिमायाति' के स्थान पर यदि 'अल्पेनोद्रेकमायाति' कर दिया जाए तो भी श्लेष नष्ट नहीं होता। थोड़े के स्थान पर कुछ कर देने पर भी काम चल जाता है।

ख—संस्कृत आचार्यों ने श्लेष के सम्बन्ध में एक अन्य प्रश्न भी उठाया है कि श्लेष एवं श्लेषमिश्रित अन्य अलङ्कारों की परस्पर स्थिति क्या है। श्लेष स्वतन्त्र अलङ्कार है या नहीं! उद्भट एवं रुय्यक आदि के विचारानुसार श्लेषालङ्कार सर्वथा स्वतन्त्र नहीं रहता, वह जहाँ कहीं भी होगा वहाँ अन्य अलङ्कार भी रहेंगे। श्लेष के साथ अन्य अलङ्कार रहें तो यह उनके चमत्कार को बाधित कर देगा। इसके विपरीत मम्मट एवं विश्वनाथ आदि का मत है कि श्लेष कभी तो अन्य अलङ्कारों से स्वतन्त्र रहता है और कभी नहीं भी रहता। जब श्लेष अन्य अलङ्कारों के साथ रहता है तो कभी तो वह अन्य अलङ्कारों का पोषण करता है और कभी स्वयं उनसे पुष्ट होता है।

श्लेष और अभिधाशक्ति—अभिधाशक्ति में अनेकार्थवाची शब्दों के एक अर्थ का नियमन संयोगादि (संयोग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोधिता, अर्थ, लिङ्ग, प्रकरण, अन्य संनिधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति एवं स्वर) निर्णायक तत्त्वों के द्वारा होता है। पर श्लेष में दोनों ही अर्थ होते हैं। अभिधा में एक अर्थ प्रधान होता है, पर श्लेष (शब्दश्लेष) में दोनों ही अर्थ प्रधान होते हैं। अभिधा में संयोगादि के कारण एक अर्थ गृहीत होता है तो श्लेष में कवि को दोनों ही अर्थ अभीष्ट होते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

श्लेष और ध्वनि—श्लेष में श्लिष्ट शब्दों के जितने भी अर्थ स्फुट या प्रकाशित होते हैं वे सभी वाच्यार्थ होते हैं, अभिधा शक्ति द्वारा ज्ञात होते हैं। श्लेष में दो या दो से अधिक अर्थ होते हैं वे शब्दतः स्पष्ट होते हैं। ध्वनि में वाच्यार्थ की प्रधानता न होकर व्यंग्य अर्थ प्रधान होता है। श्लेष में दोनों ही अर्थ वाच्य होते हैं किन्तु ध्वनि में एक अर्थ वाच्य होता है और दूसरा व्यंग्य।

४. वक्रोक्ति

वक्ता के अन्यार्थक वाक्य का यदि श्रोता, काकु या श्लेष के द्वारा अन्यार्थ-कल्पना कर दे तो वहाँ वक्रोक्ति होती है।

वक्रोक्ति में दो शब्द हैं—वक्र और उक्ति, जिसका अर्थ है टेढ़ा कथन। इसमें वक्ता द्वारा भिन्न अभिप्राय से कथित वाक्य का श्रोता भिन्न अर्थ कर देता है और वह अर्थ वक्ता के अभीष्ट से सर्वथा भिन्न होता है। इसमें भिन्न अर्थ की कल्पना दो प्रकार से होती है—काकु या श्लेष से। काकु कण्ठ के ध्वनि-विकार को कहते हैं तथा ध्वनि में परिवर्त्तन कर देने पर वक्ता का अभिप्राय बदल जाता है। श्लिष्ट शब्दों के द्वारा कई अर्थों की प्रतीति होती है। इस प्रकार वक्रोक्ति के दो प्रकार हुए—श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति। जहाँ श्लिष्ट शब्दों के द्वारा वक्ता के अन्यार्थक वाक्य का श्रोता अन्य अर्थ कल्पित कर देता है तो वहाँ श्लेष वक्रोक्ति एवं कण्ठ ध्वनि के विकार से यदि अन्यार्थ की योजना हो तो काकु वक्रोक्ति होगी। अर्थात् जब वक्रोक्ति श्लेषाश्रित हो तो श्लेष एवं जब काकु के बल पर स्थित हो तो काकु वक्रोक्ति होगी। श्लेष वक्रोक्ति भी दो प्रकार की होती है—अभङ्गपद श्लेष वक्रोक्ति और भङ्ग-पद-श्लेष वक्रोक्ति।

वक्रोक्ति मुख्यतः श्लेष पर आश्रित है और इसका चमत्कार श्लेष के ही कारण होता है।

वक्रोक्ति अलङ्कार को कुछ आचार्यों ने शब्दालङ्कार एवं कुछ ने अर्थालङ्कार माना है। रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, एवं अप्पय दीक्षित इसे अर्थालङ्कार स्वीकार करते हैं। मम्मट इसे शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार मानते हैं और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उनका अनुकरण करते हुए विश्वनाथ ने भी इसे शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार माना है।

उदाहरण—भंग-पदश्लेष वक्रोक्ति—जब श्लिष्ट पदों के अनेक टुकड़े कर वक्ता के कथन का श्रोता द्वारा अन्य अर्थ किया जाय तो भंग-पदश्लेष वक्रोक्ति होती है।

क—मानतजोगहि सुमति वर, पुनि-पुनि होत न देह।
मानत जोगी जोग को, मोहि न जोग सनेह॥

वक्ता कहता है कि हे वर! (श्रेष्ठ) सुमति गहि (सुन्दर मति को ग्रहण कर) मान तजो (मान अर्थात् रोष का त्याग करो) इस पर श्रोता इसका अन्य अर्थ करते हुए कहता है—मानत जोगहि सुमति वर—अर्थात् सुन्दर मतिवाले लोग योग को मानते हैं। इसके बाद श्रोता शब्द को भंग कर उत्तर देता है कि योगी लोग योग को मानते हैं, मुझे योग से किसी प्रकार का स्नेह नहीं है। यहाँ 'मानतजोगहि' को टुकड़े कर कई अर्थ किये गए हैं।

अभंगपदश्लेष वक्रोक्ति—जब श्लिष्ट पदों का विना खण्ड किये ही अन्यार्थ की योजना की जाय तो अभंगपदश्लेष वक्रोक्ति होगी।

ख—एक कबूतर देख हाथ में पूछा कहां अपर है।
उसने कहा अपर कैसा है? उड़ है गया सपर है॥ नूरजहां॥

यहां सलीम और मेहरुन्निसा के वार्तालाप में वक्रोक्ति की सिद्धि हुई है। सलीम 'अपर' शब्द का (प्रथम पंक्ति में) प्रयोग दूसरा के लिए करता है, किन्तु मेहर अपर का प्रयोग 'बिना पंख का' कर उसके कथन का अन्यार्थ कर देती है। शब्द-भंग किये बिना ही उत्तर देने में यहां अभंग-पद-श्लेष वक्रोक्ति हुई।

काकुवक्रोक्ति—जब काकु या कंठ ध्वनि-विकार से वक्ता के कथन को श्रोता अन्यार्थ कर दे तो वहां काकुवक्रोक्ति होती है।

उदाहरण—

क—लिखन बैठि जाकी सवी, गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥ बिहारी॥

यहाँ 'भये न केते' का अर्थ हो जाएगा कि सभी हो गए। अर्थात् संसार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

के सभी चित्रकार नायिका की सबी (छवि या चित्र) नहीं उतार सकने के कारण क्रूर हो गए।

ख—जब आप पिता के वचन पाल सकते हैं।

तब मां की आज्ञा भरत टाल सकते हैं ? साकेत ॥

द्वितीय पंक्ति से काकु या कंठ-ध्वनि-विकार से यह अर्थ प्रकट होता है कि भरत मां की आज्ञा टाल नहीं सकते।

५. पुनरुक्ति प्रकाश

जहाँ अभीष्ट भाव को सुन्दर बनाने के लिए एक शब्द की अनेक बार आवृत्ति हो तो वहाँ पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार होता है।

पुनरुक्ति का अर्थ है एकबार कथित बात की पुनः आवृत्ति या दुहराना। इसमें कथन या उक्ति को रुचिकर बनाने के लिए एक शब्द की अनेक बार आवृत्ति की जाती है।

इस अलंकार का वर्णन संस्कृत आचार्यों ने नहीं किया है। रीतिकालीन आचार्यों में दास ने ही इसका उल्लेख किया है। इस अलंकार का स्रोत भोज-कृत सरस्वतीकण्ठाभरण के अनुप्रास के अन्तर्गत सुरक्षित है। अनुप्रास के पदानुप्रास नामक भेद के अन्तर्गत वीप्सा एवं द्विरुक्ति का वर्णन है। यह द्विरुक्ति ही पुनरुक्ति-प्रकाश का स्रोत है।

उदाहरण—

क—बनि-बनि-बनि बनिता चलीं, गनि-गनि-गनि डग देत।

धनि-धनि-धनि अँखियाँ सुछबि, सनि-सनि-सनि सुख देत ॥ 'दास'

यहाँ बनि, गनि, धनि एवं सनि शब्दों की पुनरुक्ति से कथन में चमत्कार आ गया है।

ख—आज कितनी सदियों के बाद,

देवि, कितनी सदियों के बाद ॥ भगवतीचरण वर्मा ॥

ग—हृदय रो अपने दुःख का भार,

हृदय, रो उनका है अधिकार,

हृदय रो, यह जड़ स्वेच्छाचार ॥ पंत, पल्लव ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६. वीप्सा

आदर, घृणा, हर्ष, शोक आदि भावों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए शब्दों की आवृत्ति की जाय तो वहां वीप्सा अलंकार होता है।

वीप्सा का अर्थ है आवृत्ति या दुहराना। इस अलंकार में भाव को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए शब्दों को दुहराया जाता है। इसमें विस्मयादि बोधक भावों का ही वर्णन होता है। संस्कृत काव्य-शास्त्रियों ने इसका उल्लेख नहीं किया है। इसका सर्वप्रथम विवेचन आचार्य भिखारीदास ने ही किया।

आधुनिक हिन्दी आचार्यों में लाला भगवान दीन, श्री अर्जुन केडिया, पं० रामदहिन मिश्र एवं आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने इसका विवेचन किया है।

पं० रामदहिन मिश्र के अनुसार "जहां आदर, घृणा आदि किसी आकस्मिक भाव को प्रभावित करने के लिए शब्दों की आवृत्ति की जाय वहां यह (वीप्सा) अलंकार होता है।" पुनरुक्ति से वक्तव्य की पुष्टि होती है और वीप्सा से मन का एक आकस्मिक भाव झलकता है।

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार—"आदर घबराहट, आश्चर्य, घृणा, रोचकता आदि प्रदर्शित करने के लिए किसी शब्द को दुहराना वीप्सा अलङ्कार कहलाता है।"

इस अलंकार का स्रोत भोजकृत अनुप्रास के वर्णन में देखा जा सकता है जहाँ वीप्सा का कथन किया गया है तथा इसके द्रव्य, गुण, जाति, क्रिया आदि भेद भी कहे गए हैं। सरस्वतीकण्ठाभरण में वीप्सा का उदाहरण निम्नांकित है।

उदाहरण—

क—सिव सिव ह्वै प्रसन्न करु दाया।

यहां सिव-सिव की आवृत्ति में आदर का भाव है।

ख—रीझि रीझि रहसि-रहसि हँसि-हँसि उठै,
साँसै भरि आंसू भरि कहत दई दई।
मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधामय,
राधा-मन मोहि मोहि मोहन मयी मयी॥ देव॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आधुनिक काव्य में भी इसके उदाहरण मिलते हैं ।

ग—हाय ! आर्य रहिये रहिये,
मत कहिये, यह मत कहिये ।
हम संकट को देख डरें,
या उसका उपहास करें ॥ साकेत ॥

घ—विहग, विहग
फिर चहक उठे ये पुंज पुंज
कल कूजित कर उरका निकुंज
चिर सुभग-सुभग ॥ पंत ॥

७. पुनरुक्तवदाभास

जहाँ वास्तविक पुनरुक्ति न होकर पुनरुक्ति का आभास मात्र हो वहाँ पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है ।

पुनरुक्तवदाभास का अर्थ है पुनरुक्ति के समान आभास । इसमें पुनरुक्ति न होकर पुनरुक्ति की झलक मात्र दिखाई पड़ती है, उसका केवल आभास होता है । पुनरुक्तवदाभास में ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जो भिन्न रूप वाले होते हैं और भिन्न अर्थ वाले भी, किन्तु उनमें एकार्थता का आभास होता है । ऊपर-ऊपर से देखने पर पुनरुक्ति प्रतीत होती है किन्तु वास्तविक अर्थ का बोध हो जाने पर उसका अन्त हो जाता है । इसमें पुनरुक्ति का ज्ञान सत्य न होकर मिथ्या होता है तथा आपाततः पुनरुक्ति की प्रतीति होती है । अर्थबोध के पश्चात् पुनरुक्ति का निराकरण हो जाता है ।

पुनरुक्तवदाभास के शब्दालंकारत्व अथवा अर्थालंकारत्व के सम्बन्ध में संस्कृत आचार्यों में मतैक्य नहीं है । मम्मट, शोभाकर और विश्वनाथ इसे शब्दालंकार में ही स्थान देकर इसकी परिगणना शब्दालंकारों में ही करते हैं । मम्मट इसे उभयालंकार भी मानते हैं । इनके अनुसार 'तथा शब्दार्थयोरयम्' यह शब्द एवं अर्थ दोनों में हो सकता है । विश्वनाथ भी यही कहते हैं कि 'वस्तुतः यह उभयालंकार है—वस्तुतोऽयमुभयालङ्कारः । साहित्यदर्पण । मम्मट और विश्वनाथ ने इसे अन्वयव्यतिरेक भाव के आधार पर उभयालंकार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy Kathmandu Collection

ही स्वीकार किया है। क्योंकि इसके ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ शब्द-परिवर्त्तन सह्य होता है और कहीं शब्द-परिवर्त्तन संभव नहीं होता। इसलिए इसे उभयालंकार ही मानना उपयुक्त होगा, पर इसके शब्द-वैचित्र्य की प्रधानता एवं परम्परा का ध्यान रखते हुए वे इसे शब्दालंकार के अन्तर्गत वर्णित करते हैं। शोभाकर मित्र आश्रय-आश्रयि-भाव के आधार पर इसे शब्दालंकार मानना अधिक उपयुक्त समझते हैं।

रुय्यक और उनके टीकाकार जयरथ इसे अर्थालंकार ही मानना उपयुक्त समझते हैं। इनके अनुसार इस अलंकार में अर्थ पुनरुक्ति का आभास ही इसका प्राण है और इसका चमत्कार अर्थाश्रित है, अतः यह अर्थालंकार ही है, शब्दालंकार नहीं।

वस्तुतः पुनरुक्तवदाभास उभयालंकार है, शब्दालंकार या अर्थालंकार नहीं। मम्मट इसे अन्वय-व्यतिरेक के आधार पर ही उभयालंकार सिद्ध करते हैं और वही मत मान्य भी है।

क—अली भौंर गुंजन लगे, होन लगे दल-पात।
जहँ तहँ फूले रूख तरु, प्रिय प्रीतम किमि जात ॥ दास ॥

यहाँ अली और भौंर भ्रमरवाची शब्द हैं, किन्तु अली का अर्थ है सखी एवं भौंर का अर्थ भौंरा है। इसी प्रकार दल और 'पात' पत्ते के अर्थ वाले हैं, किन्तु 'दल-पात' का अर्थ है पत्तों का गिरना। रूख एवं तरु वृक्षवाची हैं, पर यहाँ रूख का अर्थ रूखड़ा है। प्रिय और प्रीतम प्रिय के द्योतक हैं किन्तु प्रिय का अर्थ प्यारा एवं 'प्रीतम' का अर्थ पति है।

इस प्रकार यहाँ पुनरुक्तवदाभास अलंकार हुआ।

ख—समय जा रहा और काल है आ रहा।
सचमुच उलटा भाव भुवन में छा रहा ॥ गुप्तजी ॥

यहाँ समय और काल समय के पर्याय हैं किन्तु काल का अर्थ मृत्यु है। इसका अर्थ होगा कि समय व्यतीत होता जा रहा है और काल या मृत्यु का आगमन हो रहा है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यमक और पुनरुक्तवदाभास—यमक और पुनरुक्तवदाभास दोनों में भिन्नार्थक शब्द होते हैं किन्तु जहाँ यमक में भिन्न अर्थ वाले शब्दों का आकार समान होता है वहाँ पुनरुक्तवदाभास में भिन्न आकार वाले शब्दों का प्रयोग होता है। अर्थात् यमक में भिन्नार्थक शब्द एक आकार वाले होते हैं और पुनरुक्तवदाभास में भिन्न आकार वाले। इसीलिए आचार्यों ने यमक से भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए इसके लक्षण में 'भिन्नाकार या भिन्न आकार वाले' विशेषण का प्रयोग किया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थालंकार

१. उपमा

उपमालंकार सभी (अर्थालंकारों) अलंकारों में प्रमुख है। इसे अलंकारों का मूलभूत स्वीकार किया गया है। संस्कृत के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में उपमा के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध होते हैं तथा उपनिषद्, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों में भी इसके उदाहरण विद्यमान हैं। इस प्रकार उपमा की प्राचीनता असंदिग्ध है। उपमा का सर्वप्रथम शास्त्रीय विवेचन यास्क कृत निरुक्त में है। उपसर्ग के प्रकरण में अनु सादृश्यबोधक उपसर्ग माना गया तथा निपात-प्रसंग में इव, न, चित्, नु को उपमाबोधक स्वीकार किया गया है। निरुक्त के तृतीय अध्याय में १२ उपमावाचक शब्दों का उल्लेख कर उपमा की व्याख्या प्रस्तुत की गई है जो उसी रूप में कालान्तर में मान्य हुई। आचार्य गार्ग्य के मतानुसार भिन्न वस्तु का उपमान से सादृश्य स्थापन ही उपमा है। यहां उपमा का कर्म गुणवान् या प्रख्याततम से गुणन्यून अथवा अप्रख्यात वस्तु की तुलना है। यह तुलना कभी-कभी न्यून गुण वाले पदार्थ से अधिक गुणवाले की हो सकती है। इसका अभिप्राय है अधिक गुण वाले पदार्थ से अल्पगुण वाले पदार्थ की तुलना। इस प्रकार उपमा का सर्वप्रथम शास्त्रीय स्वरूप प्रस्तुत करने का श्रेय निरुक्तकार को ही है। यास्क ने उपमा के चार प्रकारों का भी निरूपण किया है—कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा एवं सिद्धोपमा। उपमावाचक (निपातों) शब्दों का प्रयोग नहीं होने पर लुप्तोपमा या अर्थोपमा होती है। जैसे 'पुरुषसिंह' 'श्वाऽयस्' आदि। इस प्रकार निरुक्त के प्रमाण से यह स्पष्ट है कि यास्क से पूर्व उपमा का विवेचन गार्ग्य आदि आचार्यों द्वारा हो चुका था, और वेद-मन्त्रों के अर्थ में उपमा की व्याख्या की जाती थी। यास्क के उपमाभेद काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों पर आश्रित न होकर प्रयुक्त शब्द का अनुगमन करते हैं, जैसा कि निरुक्तकार के विवेचन में स्वाभाविक है।"

उपमा का शाब्दिक अर्थ है—सादृश्य, समानता एवं तुल्यता आदि। उ-
सामीप्यात् मानं इत्युपमा अर्थात् समीपता के कारण किया गया मान। उपमा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शब्द उप और मा इन दो शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ है निकट या समीप (उप) मान (मा) या माप (तौलना)। इसमें दो पदार्थों को समीप रखकर तुलना की जाती है, एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ सादृश्य स्थापित किया जाता है। उपमा सादृश्यमूलक अलंकार है। इसमें सादृश्य के कारण जो सौन्दर्यानुभूति होती है, उसी की प्रधानता है। या यों कहें कि सादृश्य ही उपमा का प्राण है। दो पदार्थों में समानता दिखलाना ही उपमा है किन्तु समानता में चमत्कार उत्पन्न करने की क्षमता होनी चाहिए। जिस सादृश्य या समानता के कारण सहृदयों का चित्त आनन्दित हो उठे वहीं उपमा होती है, अन्यथा उसके अभाव में इसका अस्तित्व संभव नहीं है। आचार्य वामन ने सौन्दर्य को अलंकार से अभिन्न माना है। उनके अनुसार सौन्दर्य ही अलंकार है। अतः हृदयग्राही या सुन्दर सादृश्य को ही उपमा कहा जा सकता है। उपमा का चमत्कार केवल काव्यशास्त्र या साहित्य में ही नहीं देखा जाता अपितु लोक में भी इसका महत्त्व स्वीकार किया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से भी इसकी महत्ता असंदिग्ध है। उपमा मन की अति सरल प्रक्रिया है। सहजता एवं सरलता के कारण ही सभी सादृश्यमूलक अलंकारों में इसकी लोकप्रियता सर्वाधिक है। सरलता के कारण ही इसे व्यापक क्षेत्र प्राप्त हुआ है। कवि भाव को उद्दीप्त करने के लिए दो पदार्थों में समानता स्थापित करता है तथा उपमा के द्वारा असादृश्य में भी सादृश्य ला देता है। यदि दो पदार्थों में असमानता हो तो भी कवि उपमा के द्वारा उनमें सादृश्य की योजना कर उन्हें समीप ला देता है।

उपमा की परिभाषा सभी आचार्यों ने दी है किन्तु उनके लक्षण में कुछ अन्तर पड़ता है। उपमा के स्वरूप-निर्माण में सभी आलंकारिकों ने सादृश्य, साम्य एवं साधर्म्य में से किसी एक शब्द का प्रयोग किया है। भरत, दण्डी, जयदेव, जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने सादृश्य का सन्निवेश किया है तो वामन, भामह, विद्यानाथ, विश्वनाथ एवं वाग्भट ने साम्य का तथा उद्भट, मम्मट, रुय्यक और हेमचन्द्र ने साधर्म्य शब्द का प्रयोग कर उपमा के स्वरूप का निरूपण किया। कुछ आचार्यों ने सादृश्यादि के अतिरिक्त उपमा की परिभाषा में गुणलेश या उसके पर्यायवाची शब्द का भी व्यवहार किया है तथा कुछ आचार्य उपमानोपमेय एवं अन्य अलंकारों से विभेद स्थापित करनेवाले शब्दों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का भी समावेश करते हैं। उद्भट एवं रुय्यक उपमानोपमेय का प्रयोग करते हैं तो मम्मट, विद्यानाथ, विश्वनाथ एवं विश्वेश्वर ने अन्य अलंकारों से भेद उपस्थित करने वाले शब्दों का सन्निवेश किया है।

आचार्यों ने 'भेदे', 'स्वतः सिद्धत्व' 'वाच्य' एवं 'एक' आदि शब्दों का प्रयोग कर उपमा को क्रमशः अनन्वय, उत्प्रेक्षा, रूपक एवं उपमेयोपमा से पृथक् सिद्ध करने के लिए ही किया है। विद्वानों ने उपमा के लक्षण में 'गुणलेशतः' या इसके समानार्थी शब्दों के प्रयोग को अनावश्यक माना है क्योंकि गुण-लेश शब्द का अन्तर्भाव सादृश्य में ही हो जाता है। अतएव इसके पृथक् निर्देश की आवश्यकता नहीं है। "सादृश्य की परिभाषा 'तद्भिन्नत्वे सति तद्गत-भूयोधर्मवत्त्वम्' की गई है। इस प्रकार 'तद्गतभूयोधर्मवत्त्वम्' अथवा अवयव-सामान्ययोग गुणसामान्ययोग अथवा क्रिया सामान्ययोग के रूप में होता है अतः गुणलेशतः के पृथक् निर्देश की आवश्यकता नहीं।" इसी प्रकार उपमानोपमेय के निर्देश को भी अनावश्यक माना गया है क्योंकि इनका काम सादृश्य से ही चल जाता है। सादृश्य का भाव ऐसी दो वस्तुओं से होता है जिसमें एक वस्तु दूसरी वस्तु के समान कही जाती है। अर्थात् सादृश्य से ही उपमानोपमेय की सिद्धि हो जाती है। मम्मट की परिभाषा में उपमानोपमेय शब्द का सन्निवेश नहीं होने का कारण यही है।

'काव्य-प्रकाश' के टीकाकार वामन झलकीकर ने भी इसका समर्थन किया है।

उपमा की परिभाषा में अन्यालंकार विभेदक तत्वों का समावेश भी निरर्थक है क्योंकि अलंकार का स्वरूप निर्णय चमत्कार के ही कारण होता है। अतएव उसके लक्षण में 'इस चमत्कारहेतु का ही सन्निवेश होना चाहिए, चमत्कारहेतु से असम्बद्ध अन्य अलंकारों से विभेदक तत्वों का नहीं।'

कतिपय आचार्यों ने अलंकार के स्वरूप-निर्णय में चमत्कार अथवा उसके समानार्थी शब्दों का ही प्रयोग किया है क्योंकि चमत्कार ही अलंकार का प्राण है। उपमालंकार के स्वरूप-निर्णय में भी उद्भट, वाग्भट, हेमचन्द्र एवं जगन्नाथ ने चमत्कारसूचक शब्दों का सन्निवेश किया है। किन्तु जहाँ पर चमत्कार-सूचक शब्दों का प्रयोग नहीं भी हो तो वहां अलंकार के सामान्य लक्षण द्वारा ही उसका आक्षेप कर लेना चाहिए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपमा का महत्त्व—आलंकारिकों ने उपमा को अत्यन्त गौरवशाली पद प्रदान किया है। सभी अर्थालंकारों में उपमा को ही प्रथम स्थान प्राप्त होता है। राजशेखर ने उपमा को अलंकारों का शिरोरत्न कहकर इसकी महिमा का बखान किया है। भरत के नाट्यशास्त्र में जिन चार अलंकारों का उल्लेख है उनमें एक उपमा भी है। यह इस तथ्य को सूचित करता है कि भारतीय काव्यशास्त्र की प्रारम्भिकावस्था से ही उपमा को उचित महत्त्व प्राप्त हो गया था। प्रसिद्ध आलंकारिक एवं अलंकारसर्वस्व के रचयिता राजानक रुय्यक ने उपमा को अलंकारों का 'बीजभूत' कहकर इसकी प्रशस्ति का गान किया है। रुय्यक के अनुसार इसका प्रधान कारण उपमा का अनेक प्रकार से वैचित्र्यपूर्ण होना ही है।

अप्पय दीक्षित ने उदाहरण प्रस्तुत कर यह बताया है कि किस प्रकार उपमा उक्तिभंगी के भेद से अनेक अलंकारों में दिखाई पड़ती है।

मुख चन्द्र सा (सुन्दर) है—उपमा।

मुख चन्द्र के समान है एवं चन्द्रमा मुख के समान है—उपमेयोपमा।

मुख मुख ही के समान है—अनन्वय।

चन्द्रमा मुख के समान है—प्रतीप।

चन्द्र को देख कर मुख की याद आती है—स्मरण।

मुख चन्द्रमा है—रूपक।

मुख-चन्द्र से ताप शान्त हो रहा है—परिणाम।

यह मुख है या चन्द्रमा—सन्देह।

चन्द्रमा समझ कर चकोर तुम्हारे मुख की ओर दौड़ रहा है—भ्रान्तिमान्।

तुम्हारे मुख को चकोर चन्द्र एवं चंचरीक (भ्रमर) कमल कहते हैं।

या

तुम्हारे मुख को कोई कमल एवं कोई चन्द्रमा कहता है—उल्लेख।

यह मुख नहीं, चन्द्रमा है—अपह्नुति।

मुख मानो चन्द्रमा है—उत्प्रेक्षा।

यह चन्द्रमा है—अतिशयोक्ति।

मुख ने चन्द्र और कमल को जीत लिया—तुल्ययोगिता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रात में तुम्हारा मुख एवं चन्द्र शोभते हैं—दीपक।
तुम्हारे मुख को देख कर मैं प्रसन्न हूं।
चकोर चन्द्रमा को देख कर आनन्दित है—प्रतिवस्तूपमा।
आकाश में चन्द्रमा है तो पृथ्वी पर तुम्हारा मुख—दृष्टान्त।
मुख में चन्द्रमा की श्री है—निदर्शना।
निष्कलंक मुख चन्द्रमा से बढ़कर है—व्यतिरेक।
तुम्हारे मुख के साथ चन्द्रमा रात में मनहर लगता है—सहोक्ति।
मुख के आगे चन्द्रमा निस्तेज है—अप्रस्तुतप्रशंसा।

अप्पय दीक्षित ने चित्र मीमांसा में उपमा के महत्त्व का गान करते हु इसे उच्चपद पर अधिष्ठित कर दिया है। इनके अनुसार उपमा एक ऐसी न है जो काव्य के रंगमंच पर अनेक भूमिका से विविध रूपों में उपस्थित हो काव्य रसिकों का रंजन करती है।

पुनः उन्होंने उपमा का महत्त्व स्थापित करते हुए कहा है कि जि प्रकार मनुष्य को ब्रह्मज्ञान होते ही अखिल ब्रह्मांड का ज्ञान प्राप्त हो जात उसी प्रकार उपमा अलंकार का ज्ञान होते ही सभी अलंकारों की प्रतीति (स रूप से ही) हो जाती है।

उपमा के तत्त्व—जब गुण, क्रिया आदि के द्वारा एक वस्तु दूसरी वस् समान कही जाती है तो वहां उपमालंकार होता है। अलंकारों के वर्गीकरण अनुसार यह भेदाभेदप्रधान साधर्म्यमूलक अलंकार है।

उपमा के चार तत्त्व हैं—उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म। जि वर्णन किया जाय या जिसके विषय में कहा जाय या जिसकी तुलना पदार्थ के साथ की जाय उसे उपमेय कहते हैं। इसके अन्य नाम हैं— विषय, प्रस्तुत, एवं प्राकरणिक। जिससे उपमा दी जाती है उसे उपमान हैं—इसके अन्य नाम—अवर्ण्य, अप्रस्तुत एवं विषयी हैं।

जिस गुण या समानता के कारण उपमेय की तुलना उपमान से की है उसे धर्म या साधारण धर्म कहते हैं। वाचक वे शब्द हैं जो उपमेय उपमान की समता दिखाने में सहायक सिद्ध होते हैं। उपमा में एक ध्यान देने योग्य है कि उसका साहित्य ... एवं चमत्क

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

हो। जब उपमा के चारों अंग—उपमेय, उपमान, वाचक एवं धर्म स्पष्टतः व्यंजित होते हैं, तो वहाँ पूर्णोपमा होती है और इनमें से एक, दो या तीन के अभाव में लुप्तोपमा होगी।

जैसे कहा जाय कि 'राम का मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है' तो राम–उपमेय, चन्द्रमा–उपमान, सुन्दर–धर्म एवं समान वाचक होगा। चूँकि यहां उपमा के चारों अङ्ग स्पष्ट रूप से वर्णित हैं अतः पूर्णोपमा है।

सोनजुही सी जगमगै, अँग-अँग जोबन जोति।
सुरँग कुसुम्भी चूनरी, दुरँग देह दुति होति॥ विहारी।

उपमेय—जोबन जोति, उपमान—सोनजुही, धर्म—जगमगै, वाचक—सी।

उपमालंकार में सादृश्य के द्वारा ही दो पदार्थों को परस्पर निकट लाया जाता है या उपमेय उपमान को एक दूसरे के समीप ला दिया जाता है। 'मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है' इस वाक्य में चन्द्र के निकट मुख को लाया गया है। उपमेय एवं उपमान को एक दूसरे के निकट लाने में धर्म या दोनों के सामान्य गुण का हाथ रहता है तथा समान गुण के कारण ही एक पदार्थ की तुलना अन्य पदार्थ के साथ की जाती है। आचार्य वामन ने उपमान को उत्कृष्ट गुण वाला एवं उपमेय को न्यूनगुण वाला कहा है। इस सम्बन्ध में आपत्ति भी उठाई गई है। उपमान को उत्कृष्ट गुणवान् तथा उपमेय को निकृष्ट गुणवान् कहकर उनमें गुण के उत्कर्ष तथा अपकर्ष के द्वारा इस प्रकार भेद करना उचित नहीं। उपमेय को उपमान के सदृश बताने से कवि का प्रयोजन एक का अपकर्ष तथा द्वितीय का उत्कर्ष दिखाना नहीं होता और न ही इस सादृश्य का कारण यह होता है कि एक में गुणों का अपकर्ष है तथा द्वितीय में उत्कर्ष है, अपितु इस सादृश्य का प्रयोजन यही होता है कि उपमेय का उत्कर्ष स्पष्टतः अभिव्यक्त हो जाय तथा इसका कारण भी यही होता है कि उपमेय में कवि को गुण का उत्कर्ष प्रतीत होता है। इस गुणोत्कर्ष को दिखाने के लिए कवि उपमेय का उपमान से जो सादृश्य दिखाता है वह इसीलिए क्योंकि उस गुणोत्कर्ष का प्रदर्शन और किसी प्रकार संभव नहीं।

यदि गुणोत्कर्ष तथा गुणापकर्ष के द्वारा उपमान तथा उपमेय में भेद माना जाए तो उपमेय का साम्य उपमान से संभव नहीं। यह साम्य तो तभी संभव

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

है जब इन दोनों में धर्म की साधारणता मानी जाती है और यह भी बिना किसी उत्कर्ष अथवा अपकर्षजनित भेदभाव के।

उपमान के चयन में कवि स्वतन्त्र अवश्य होता है किन्तु उसे यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि वह लौकिक नियमों की अवहेलना न कर सके। लोक में जिन पदार्थों में परस्पर विरोध दिखाई पड़ता है उनमें वह सम्बन्ध स्थापित करने का साहस नहीं दिखलाता। इसी प्रकार सादृश्य-विधान के लिए उपमेय एवं उपमान की भिन्नता भी आवश्यक होती है। उसी वस्तु का उससे सादृश्य संभव नहीं। सादृश्य के लिए भेद तथा अभेद दोनों तत्त्वों की आवश्यकता है। उसी वस्तु का उससे सादृश्य दिखाने में यह संभव नहीं क्योंकि इस दशा में अभेद तत्त्व का लोप हो जाएगा और फलतः पूर्ण एकता हो जायगी। इस सम्बन्ध में हेमचन्द्र का मत ध्यान देने योग्य है।

लुप्तोपमा—संस्कृत के आचार्यों में विश्वनाथ ने लुप्तोपमा का भी श्रौती एवं आर्थी भेद स्वीकार किया है, किन्तु हिन्दी में इस प्रकार का प्रचलन नहीं है। हिन्दी के अधिकांश आचार्य उपमा के एक, दो या तीन अङ्गों के ही लोप को स्वीकार करते हैं। हिन्दी के कुछ आचार्य (जैसे पोद्दार जी) उपमेय के लोप को लुप्तोपमा नहीं स्वीकार करते। इस सम्बन्ध में आ० देवेन्द्रनाथ का कहना है कि जब इस प्रकार कोई अङ्ग लुप्त रहे तो लुप्तोपमा होती है। कुछ लोग जैसे (पोद्दार जी) उपमेय के लोप में लुप्तोपमा नहीं मानते पर ऐसा करना बुद्धिसंगत नहीं है। उपमेयलुप्ता के भी उदाहरण मिलते हैं, फिर उसे लुप्तोपमा के भेदों में न गिनना विचित्र न्याय है। यदि कहें कि उसमें चमत्कार नहीं रहता है तो यह भी जबर्दस्ती ही है। पद्माकर ने चारों का लोप किया है, इस प्रकार उन्होंने लुप्तोपमा के पन्द्रह भेद किये हैं।

इक द्वै तीन रु चार को जहँ लोप पहिचान।
सो युं पंचदस भेद जुत, लुप्तोपमा प्रमान ॥ पद्माभरण—१०।

१—उपमेयलुप्ता—जहां उपमान, धर्म और वाचक का कथन हो, किन्तु उपमेय लुप्त रहे वहाँ उपमेयलुप्ता होती है।

क—चंचल हैं ज्यों मीन, अरुनारे पंकज सरिस।
निरखि न होत अधीन, ऐसो नर कारन कवन।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

पूर्वार्द्ध में उपमेयलुप्ता है। प्रथम चरण में मीन उपमान, ज्यों वाचक और चंचल साधारण धर्म है।

द्वितीय चरण में अरुनारे धर्म, पंकज उपमान एवं सरिस वाचक। उपमेय (नेत्र) का कथन नहीं होने से यहाँ उपमेयलुप्ता हुई।

ख—पड़ी थी बिजली सी विकराल। साकेत।

यहां उपमेय कैकेई का कथन नहीं किया गया है।

ग—सुख कमल समीप सजे थे दो किसलय दल पुरइन के। आंसू : प्रसाद।

२—उपमानलुप्ता—जहाँ उपमान को छोड़कर उपमा के सभी अंग प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ें वहाँ उपमानलुप्ता होती है।

सुन्दर नन्दकिसोर सों जग में मिलै न और।

नन्दकिशोर उपमेय, सुन्दर धर्म, सो वाचक। यहाँ 'जग में मिलै न और' कह कर उपमान का निषेध किया गया है।

३—धर्मलुप्ता—जहाँ उपमेय, उपमान एवं वाचक का कथन हो, किन्तु धर्म लुप्त रहे, वहां धर्मलुप्ता होती है। दण्डी इसे वस्तूपमा कहते हैं।

क—कुन्द-इन्दु सम देह, उमारमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मरदन मयन॥ रामायण।

उपमान—कुन्द इन्दु, उपमेय उमारमन (शंकर) की देह, वाचक सम।

ख—जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये॥ आंसू : प्रसाद॥

ग—कनक-से दिन, मोती सी-रात। सुनहली सांझ गुलाबी प्रात॥

महादेवी।

४—वाचकलुप्ता—जहां केवल वाचक का लोप हो, उपमेय, उपमान एवं धर्म स्पष्ट रूप से वर्त्तमान हों, वहां वाचकलुप्ता होती है।

सरदबिमलबिधु-बदन सुहावन। रामायण।

बदन—उपमेय, सरदबिमलबिधु–उपमान, सुहावन–धर्म।

शलभ चंचल मेरे मन प्राण। गुंजन : पंत।

शलभ—उपमान, चंचल–धर्म, उपमेय–मेरे मन प्राण। वाचक का लोप है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५—वाचकधर्मलुप्ता—जहां वाचक और साधारण धर्म लुप्त रहें वहां वाचकधर्मलुप्ता होती है ।

विधु-वदनी मृगसावक लोचनि । रामायण ।

उपमेय—वदनी एवं लोचनी, उपमान—विधु एवं मृगसावक ।

बिजली-माला पहने फिर मुस्काता था आंगन में ॥ आंसू : प्रसाद ।

टिप्पणी—वाचक धर्मलुप्ता एवं रूपक में भेद—जहां विशेषण उपमेय से अन्वित या सम्बन्धित होता है वहां उपमा और जहां उपमान से सम्बन्धित रहता है वहां रूपक होता है ।

६—धर्मोपमानलुप्ता—जहां उपमेय और वाचक का कथन हो, पर धर्म और उपमान न रहें वहां धर्मोपमानलुप्ता होती है ।

आजु पुरन्दर सम कोउ नाहीं ।

यहां पुरन्दर (इन्द्र) उपमेय, और सम वाचक का कथन है ।

७—धर्मोपमेयलुप्ता—जहां धर्म और उपमेय लुप्त हों किन्तु उपमान और वाचक का कथन किया गया हो ।

नीलम चंपक माल से कौन स्वयंवर में मृगराजकुमार से ।

नीलम चंपक माल—उपमान, से—वाचक, पुनः मृगराजकुमार उपमान एवं से वाचक हैं ।

८—वाचकोपमानलुप्ता—जहां धर्म और उपमेय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ें किन्तु वाचक और उपमान का कथन न हो ।

अरुन नयन उर बाहु बिसाला । रामायण ।

नयन—उपमेय और अरुण—धर्म, उर बाहु—उपमेय, बिसाला—धर्म ।

९—वाचकोपमेय लुप्ता—जहां वाचक और उपमेय लुप्त रहें, किन्तु धर्म और उपमान का कथन हो ।

इत तें उत उत तें इतै, छिन न कहूँ ठहराति ।
जक न परति चकई भयी, फिरि आवति फिरि जाति ॥ विहारी ।

चकई उपमान, फिरि आवति फिरि जाति धर्म है ।

१०—वाचकधर्मउपमानलुप्ता—जहां केवल उपमेय का कथन हो, वाचक धर्म और उपमान लुप्त रहें ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपमानऽरु वाचक धरम रहित सुनहु पिक-तान ॥ पद्माभरण ।

यहां केवल पिकतान उपमेय का वर्णन है ।

क—अति अनूप जहं जनक निवासू । रामायण ।

जनक-निवासू—उपमेय ।

ख—तुम्हारी आंखों का आकाश, सरस आंखों का नीलाकाश ।
खो गया मेरा मन अनजान, मृगेक्षणि ! इसमें खग अनजान ॥
गुञ्जन : पन्त ।

यहां 'मृगेक्षणि' में केवल उपमान का कथन है ।

उपमा का अन्य अलंकारों से भेद—

उपमा और रूपक—उपमा एवं रूपक दोनों में ही सादृश्य होता है; किन्तु उपमा का सादृश्य वाच्य होता है तो रूपक का आर्थ या व्यंग्य । उपमा भेदाभेद-प्रधान अलंकार है, किन्तु रूपक अभेदप्रधान । उपमा का सौंदर्य साधर्म्य पर आश्रित रहता है जबकि रूपक का चमत्कार आरोप या तद्रूपता के कारण होता है । उपमा में दो वस्तुओं में तुलना होती है तो रूपक में दो वस्तुओं में अभेद होता है, दोनों को एक मान लिया जाता है ।

जब क्रिया का अन्वय उपमेय के साथ हो तो उपमा तथा उपमान के साथ हो तो रूपक होगा । उपमा में साम्य होता है पर रूपक में अतिसाम्य होता है—साम्य मात्रे उपमा अतिसाम्ये तु रूपकम् । माणिक्यचन्द्र ।

उपमा और उत्प्रेक्षा—उपमा में उपमेय की उपमान से तुलना की जाती है जबकि उत्प्रेक्षा में उपमान की उपमेय में संभावना । उत्प्रेक्षा अभेदप्रधान या अध्यवसानमूलक अलंकार है और उपमा भेदाभेदप्रधान साधर्म्यमूलक । 'इव' वाचक उपमा एवं उत्प्रेक्षा दोनों में ही प्रयुक्त होता है । अतः ऐसी स्थिति में यह निर्णय कठिन हो जाता है कि यहां उपमा होगी या उत्प्रेक्षा । इव शब्द से जब लोकप्रसिद्ध साधर्म्य की प्रतीति हो तो उपमा तथा लोक-अप्रसिद्ध एवं कविकल्पित साधर्म्य का बोध होने पर उत्प्रेक्षा अलंकार होगा ।

उपमा और प्रतीप—उपमा का चमत्कार साधर्म्य के कारण होता है तो प्रतीप में उपमान के अनादर से । उपमा में प्रस्तुत उपमेय एवं अप्रस्तुत उपमान होता है पर प्रतीप में अप्रस्तुत उपमेय एवं प्रस्तुत उपमान ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपमा और अनन्वय—अनन्वय में उपमान और उपमेय एक ही रहते हैं जबकि उपमा में दोनों भिन्न होते हैं। अनन्वय में उपमेय ही उपमान हो जाता है।

उपमा और उपमेयोपमा—उपमा एक वाक्यगत होती है तो उपमेयोपमा सदैव दो वाक्यों में होती है। उपमेयोपमा में दो उपमाएँ रहती हैं। 'इसमें प्रथम वाक्य का उपमेय, द्वितीय उपमा का उपमान और प्रथम उपमा का उपमान द्वितीय उपमा का उपमेय हो जाता है।'

चन्द्रालोकसुधा पृ० १९।

उपमा के भेदों का आधार—उपमा के भेदों के कई आधार हैं जिनके द्वारा इसके अनेक प्रकारों की कल्पना की गई है। वे हैं—सादृश्य, साधारणधर्म का अनेकत्व, सादृश्य का संश्लिष्ट चित्रण, सादृश्य का वाचत्व तथा व्यंग्यत्व और अवयवों के उपादान एवं अनुपादान।

उपमा के प्रशंसोपमा, निन्दोपमा तथा तत्त्वाख्यानोपमा आदि प्रकारों में साधारण धर्मों की उत्कृष्टता या उत्कर्ष एवं अपकर्ष तथा दोनों के अभाव का हाथ रहता है। इनमें उपमाओं का उत्कर्ष अथवा अपकर्ष न होकर साधारण धर्म का ही उत्कर्षापकर्ष दिखाया जाता है—क्योंकि इनका सम्बन्ध मुख्य रूप से गुण से ही होता है, गुणी से नहीं। गुणी से सम्बन्ध तो गुण के ही द्वारा होता है। मालोपमा, परस्परोपमा, समुच्चयोपमा आदि भेदों के आधार उपमानों एवं साधारण धर्मों में से किसी एक या दोनों के अनेकत्व हैं। "उपमानों की अनेकता का प्रयोजन उपमेय का केवल अनेक उपमानों से सादृश्य बताना नहीं होता परन्तु इस सादृश्य के द्वारा साधारणधर्म का उत्कर्ष दिखाना होता है।" सादृश्य के संश्लिष्ट चित्रण के आधार पर सावयवा एवं निरवयवा आदि भेद किये गए हैं। इसमें अवयवियों एवं अवयवों के सादृश्य का चित्रण होता है। सादृश्य के व्यंग्यत्व एवं वाच्यत्व के आधार पर पण्डितराज जगन्नाथ ने उपमा के दो प्रकार माने हैं—व्यंग्योपमा एवं वाच्योपमा।

उपमा के पूर्णोपमा एवं लुप्तोपमा भेदों का आधार अवयवों का उपादान एवं अनुपादान है। पूर्णोपमा में उपमा के समस्त अवयवों का उपादान होता तो लुप्तोपमा में उपमा के कतिपय अङ्गों का लोप।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इन (आधारों) के अतिरिक्त रुद्रट एवं भोज ने पद, वाक्य आदि के आधार पर भी उपमा का विभाजन किया है किन्तु यह विभाग सादृश्य के आधार पर नहीं है।

अनन्वय के लक्षण–निरूपण में 'उपमानान्तर व्यवच्छेद' स्वतः सिद्ध हो जाता है। एक ही पदार्थ को उपमेय एवं उपमान बना देने में अन्य उपमान का निवारण हो ही जाता है, अतः 'उपमानान्तर व्यवच्छेद' का समावेश औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता।

२. अनन्वय

जहाँ एक ही वस्तु को उपमान एवं उपमेय कहा जाय वहाँ अनन्वय होता है।

अनन्वय का अर्थ है—न अन्वयेतीति अनन्वयः अर्थात् सम्बन्ध (अन्वय) का न होना। इसमें उपमेय को ही उपमान मान लिया जाता है। अनन्वय की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—न विद्यते उपमेयस्य उपमानान्तरेण अन्वयः सम्बन्धो वाऽत्रेति अनन्वयः। अर्थात् जहाँ उपमेय की किसी अन्य उपमान से समता नहीं प्रदर्शित की जाती तथा अपने से अतिरिक्त किसी अन्य उपमान का निषेध किया जाता है। इस अलंकार के द्वारा कवि किसी पदार्थ की अद्वितीयता सिद्ध करना चाहता है। इस अलंकार में कवि की मानसिक स्थिति वर्ण्य या उपमेय की महत्ता से इतनी अधिक अभिभूत हो जाती है कि वह उसके सदृश उपमान को लाना चाहते हुए भी अन्य पदार्थ के अभाव के कारण अन्ततः उसी को उपमान मान लेता है। क्योंकि वह उपमेय के सदृश उपमान को देख ही नहीं पाता। अनन्वय में अनुभूति की सांद्रता के कारण कवि-कल्पना क्रियाशील नहीं हो पाती एवं कल्पना विहंगम के पर बँध जाते हैं। इसका कारण उपमेय के प्रति कवि की दृढ़ आस्था ही है जिससे वह उसके सदृश अन्य पदार्थ की कल्पना ही नहीं कर पाता। अतः उपमेय स्वयं उपमान बनकर अन्य उपमानों का निराकरण कर देता है। जैसे कहा जाय कि 'महात्मा गांधी के समान तो महात्मा गांधी ही थे' तो यहाँ अनन्वय हो जायगा। इस उदाहरण में महात्मा की अनुपमेयता सिद्ध करने के कारण अनन्वय है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क—मरिबे जिवाइबे कों उपमा लजाइबे कों,
तेरी अँखियाँ सी प्यारी तेरी दोऊ अँखियाँ ।

यहाँ नायिका की आँखों को उन्हीं आँखों के समान कहने में अनन्वय है।

ख—उस काल दोनों में परस्पर युद्ध वह ऐसा हुआ ।
है योग्य बस कहना यही अद्भुत वही ऐसा हुआ ॥
गुप्तजी—काव्य-दर्पण ॥

यहाँ उस युद्ध के समान वह युद्ध था इस कथन में अनन्वय है ।

ग—कहाँ पाऊँ मनोरम छबि तुम्हारी ।
तुम्हीं सम तुम यही उपमा हमारी ॥ 'हीरा'

घ—यद्यपि भारत आरत है । पर भारत के सम भारत है ॥
भारत-भारती ॥

अनन्वय एवं लाटानुप्रास—दोनों का अन्तर स्थापित करते हुए एकावलीका ने कहा है कि अनन्वय में शब्द-भेद क्षम्य होता है, किन्तु लाटानुप्रास में शब्द-भेद अक्षम्य है। जहाँ लाटानुप्रास में शब्द और अर्थ दोनों की पुनरावृत्ति आवश्यक होती है वहाँ अनन्वय में केवल अर्थ पौनरुक्त्य आवश्यक होता है ।

३. उपमेयोपमा

जहाँ उपमेय और उपमान परस्पर उपमान और उपमेय कहे जाएँ वहाँ उपमेयोपमा होती है ।

इसमें उपमेय से उपमान की एवं उपमान से उपमेय की समता दिखाई जाती है । उपमेय तथा उपमान को परस्पर उपमान तथा उपमेय इसलिए कहा जाता है कि उसके लिए कवि को तीसरे पदार्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती। उपमेयोपमा में कवि की मानसिक स्थिति ऐसी हो जाती है कि वह उपमेय और उपमान को अतिरिक्त अन्य को अपने भाव का आधार नहीं बना पाता ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपमेय एवं उपमान में इस प्रकार की समता दिखाई पड़ती है कि उपमेय को देखकर उसकी मानसिक तृप्ति उपमान से हो जाती है एवं उपमान की महत्ता का अनुभव होने पर अन्य उपमान के अभाव में पुनः उपमेय पर ही वह अपने विचार को केन्द्रस्थ कर उपमान का उपमान उपमेय को ही बना डालता है। स्पष्ट है कि कवि के भाव का आधार कुछ समय के लिए उपमेय और उपमान में ही आवद्ध हो जाता है, वह विस्तृत होकर आगे नहीं बढ़ता। उसे, एक दूसरे की स्पष्टता के लिए उन्हीं उपमेय एवं उपमानों के रूपों में ही पर्याप्त गंभीरता मिल जाती है।

उपमेयोपमा की विशेषतायें—

क—इसमें दो पदार्थों का पर्याय से उपमानोपमेयत्व वर्णित किया जाता है।

ख—इसमें दो वाक्य होते हैं। प्रथम उपमेय को द्वितीय वाक्य में उपमान एवं प्रथम उपमान को द्वितीय वाक्य में उपमेय बनाया जाता है। प्रथम वाक्य के उपमेय उपमान द्वितीय वाक्य के उपमान उपमेय बन जाते हैं।

(ग) इसमें तृतीय सदृश का व्यवच्छेद होता है क्योंकि उपमेय ही उपमान बनता है तथा उपमान ही उपमेय अर्थात् दो वस्तुयें परस्पर उपमान एवं उपमेय के पद को ग्रहण करती हैं।

(घ) उपमेयोपमा का अर्थ है उपमेयेन उपमा। अन्य उपमान के तिरस्कार को ही उपमेयोपमा का मूल माना गया है। अर्थात् जिन दो पदार्थों—उपमेय एवं उपमान का कथन किया गया है उनकी समानता के लिए तीसरी वस्तु उपयुक्त नहीं हो सकती। 'जयरथ का विचार भी उल्लेखनीय है—अस्याश्चोपमानान्तरतिरस्कार एव फलम्। अतएवोपमेयेनोपमा इत्यस्या अन्वर्थाभिधानम्। यत्र पुनरुपमानान्तरतिरस्कारो न प्रतीयते तत्र नायमलङ्कारः॥

उपमेयोपमा में उपमेय की उपमा उपमान से दी जाती है एवं उपमान की उपमा उपमेय से क्योंकि औपम्य निर्वाह के लिए तृतीय पदार्थ की आवश्यकता पड़ती ही नहीं।

उदाहरण के लिए 'कमल के समान मुख एवं मुख के समान कमल है' इस

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाक्य को रखा जा सकता है। यहाँ मुख एवं कमल को एक दूसरे का उपमान-उपमेय बनाया गया है क्योंकि कवि का औपम्य-निर्वाह मुख एवं कमल तक ही सीमित रहता है और आगे बढ़ नहीं पाता। अन्य पदार्थों का 'सादृश्य सम्बन्धी क्षेत्र' इनके क्षेत्र से अलग हो जाता है। अतः उपमेयोपमा में देखा जाता है कि कवि किसी पदार्थ के गुण या धर्म को अन्यत्र खोजते हुए अन्य अर्थात् उपमान में प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार पहली वस्तु का साम्य दूसरी वस्तु के साथ सहज ही स्थापित हो जाता है, किन्तु जब उसे द्वितीय पदार्थ अर्थात् उपमान के समान अन्य पदार्थ की खोज करनी पड़ती है तो निराश होकर अन्ततः उसे उपमेय या प्रथम पदार्थ की ही शरण लेनी पड़ती है। इस प्रकार वह उद्घोषित कर देता है कि उपमेय के समान उपमान है और उपमान के समान उपमेय। कवि की इसी मान्यता से उपमेयोपमा अलंकार की उद्भावना हुई है।

उदाहरण—

क—तो मुख सो ससि सोहत है, वलि सोहत है ससि सो मुख तेरो॥

यहाँ चन्द्रमा के समान मुख एवं मुख के समान चन्द्रमा को कहने में उपमेयोपमा है।

ख—पूरनमासी सी तू उजरी, अरु तोसी उजारी है पूरनमासी॥

ग—तेरी सी बेनी है स्याम अमा अरु तेरीयो बेनी है स्याम अमासी।
तेरो सो आनन चंद लसै तुअ आनन सें सखि चन्द समासी॥

घ—दो सिंहों का मनो अचानक हुआ समागम।
राक्षस से था न्यून न कपि या कपि से था वह कम॥

—रा० च० उ० काव्य-दर्पण से पृ० ४६

यहाँ कपि के समान राक्षस एवं राक्षस के समान कपि के कथन में उपमेयोपमा है।

ङ—प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।

४. रशनोपमा

पूर्व कथित उपमेय जहाँ उत्तरोत्तर उपमान बनता चला जाय वहाँ रशनोपमा होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'रशना' शब्द का अर्थ है 'करधनी'। जिस प्रकार करधनी में अनेक कड़ियों की श्रृंखला होती है उसी प्रकार इस अलंकार में पूर्व में कथित उपमेय उत्तरोत्तर कथित उपमान का उपमेय बनता जाता है और इस प्रकार वहाँ उपमेय एवं उपमानों की श्रृङ्खला बन जाती है। इसलिए इसे रशनोपमा कहा जाता है। इसमें अनुक्रम के होते हुए भी साधर्म्य का ही प्राधान्य रहता है।

उदाहरण—

क—वचसी मधुरी मूरती, मूरति सी कल कीति।
कीरति लौं सब जगत में, छाइ रही तव नीति॥

यहाँ प्रथम वाक्य में मूर्ति वचन का उपमेय एवं द्वितीय वाक्य में कीर्त्ति का उपमान बन गई है। कीर्ति पहले उपमेय थी उत्तरार्ध में वह उपमान बन गई।

इस दोहे में पहली उपमा का उपमेय अगली उपमा का उपमान बनता चला गया है। यहाँ उपमेयों एवं उपमानों की श्रृङ्खला है, अतः रशनोपमा हुई।

५. समुच्चयोपमा

जहाँ अनेक साधारण धर्मों का समुच्चय या जमाव हो वहाँ समुच्चयोपमा होती है।

समुच्चय का अर्थ है समूह। इसमें उपमेय एवं उपमान की समता कई साधारण धर्मों के कारण होती है। उपमा में एक ही साधारण धर्म होता है किन्तु इसमें साधारण धर्मों का समूह होता है। समुच्चयोपमा अलंकार में कवि की दृष्टि उपमान के अनेक गुणों की ओर होती है। उपमेय की किसी विशेष विशेषता के कारण, जब कवि उपमान से उसकी समता स्थापित करता है तो उसे उपमान में कई प्रकार के ऐसे गुण भी दिखाई पड़ने लगते हैं जिससे वह उपमेय की समता स्थापित करने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में अनेक गुणों से उपमित होने के कारण समुच्चयोपमा अलंकार का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उद्भव होता है। समुच्चयोपमा में कवि निश्चिन्त होकर उपमेय एवं उपमान के विभिन्न गुणों पर विचार करता है तत्पश्चात् वह अनेक धर्मों के आधार पर ही उपमेय की समता उपमान के साथ स्थापित कर पाता है।

क—चम्पक कलिका सी अहै, रूप, रंग अरु बास ॥

यहाँ तीन साधारण धर्मों के कारण बाला की उपमा चंपक से दी गई है और वे हैं—रूप, रंग और सुगन्धि। अतः धर्मों के समुच्चय के कारण यहाँ समुच्चयोपमा हुई।

ख—दिव्य, सुखद, शीतल, रुचिर तव दर्शन विधु-रूप।

यहाँ तीन साधारण धर्मों—दिव्य, सुखद एवं शीतल के आधार पर ही उपमा दी गई है।

६. मालोपमा

जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान कहे जाएँ वहाँ मालोपमा होती है।

'मालोपमा' का अर्थ है—उपमा की माला। इसमें एक उपमेय की बहु से उपमानों द्वारा समता दिखाई जाती है। अतः उपमानों की माला प्रस्तुत कि जाने के कारण इसे मालोपमा कहते हैं। मालोपमा अलंकार में कवि क उपमेय के प्रति अनुभूति की अत्यधिक तीव्रता परिलक्षित होती है। जब कवि की वृत्ति उपमेय की समता के लिए एक उपमान से तृप्त नहीं होती तब व अनेक उपमानों की योजना कर अपनी इच्छा की पूर्त्ति करता है। अतः ए उपमेय के लिए अनेक उपमानों की नियोजना ही मालोपमा का कारण बनत है। अनेक उपमानों की योजना का आधार है धर्मों की अनेकता, एक या लोप। इस प्रकार इसके तीन भेद हो जाते हैं—भिन्नधर्मा, एकध एवं लुप्तधर्मा।

मालोपमा के तीन भेद हैं—

(१) समानधर्मा, (२) भिन्नधर्मा (३) लुप्तधर्मा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१—समानधर्मा—जहाँ बहुत से उपमानों का एक ही साधारण धर्म हो वहाँ समानधर्मा मालोपमा होती है। इसे एकधर्मा भी कहते हैं।

२—भिन्नधर्मा—जहाँ अनेक उपमानों के भिन्न-भिन्न साधारण धर्म हों।

३—लुप्तधर्मा—जिसमें साधारण धर्मों का लोप हो अर्थात् अनेक उपमानों के साधारण धर्म का स्पष्ट कथन नहीं किया जाय।

उदाहरण—समानधर्मा मालोपमा—

पछतावे की परछाहीं सी, तुम भूपर छाई हो कौन।
दुर्बलता की अँगड़ाई सी, अपराधी सी भय से मौन॥ पंत।

यहाँ 'छाया' के चार उपमान कहे गए हैं तथा इनका साधारण धर्म एक है 'छाई'। अतः एकधर्मा मालोपमा हुई।

भिन्नधर्मा—

क—सफरी से चञ्चल घने, मृग से पीन सु ऐन।
कमल-पत्र से चारु ये, राधाजू के नैन॥

यहाँ राधा की आँखों के लिए सफरी, मृग और कमल तीन उपमान हैं। इनकी उपमा विभिन्न साधारण धर्मों के कारण दी गई है। जैसे मछली की तरह चञ्चल, मृग की नाईं बड़ी और कमल के समान सुन्दर।

ख—मरकत से द्युतिवन्त हैं, रेसम से मृदु वास।
निपट महीन मुरारि से, कच काजर से स्याम॥

ग—कभी चौकड़ी भरते मृग से भू पर चरण नहीं धरते,
मत्त मतङ्गज कभी झूमते, सजग शशक नभ को चरते॥

यहाँ बादल उपमेय के मृग, मतङ्गज, शशक आदि अनेक उपमान हैं जिनके धर्म हैं चौकड़ी भरना, झूमना, चरना आदि।

लुप्तधर्मा—

क—घन से, तम से, तार से, खञ्जन की अनुहारि।
अलि से मावस रैन से, बाला तेरे बार॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ बाला के केश की समता घन, तम, तार, खञ्जन, भौंरा एवं अमावस्या की रात से दी गई है। यहाँ साधारण धर्मों का अभाव है।

ख—तरुवर की छायानुवाद सी, उपमा-सी भावुकता-सी।
अविदित भावाकुल भाषा-सी, कटी-छँटी नव कविता सी॥ पंत—छाया।

यहाँ छाया के विभिन्न उपमान एक साथ गुंफित हैं किन्तु साधारण धर्म लुप्त है। अतः यहाँ लुप्तधर्मा मालोपमा हुई।

ग—सुषमा की प्रतिमा एक तरुणी दिवाङ्गना सी,
रति की अनूप रचना सी, मोहन इन्द्र धनुषी,
सुन्दरी प्रणय-अभिलाषा सी,
मादक मदिरा सी, सोहनलाल द्विवेदी—वासवदत्ता।

मालोपमा का अन्य उदाहरण—

आधी रात में खिला स्वतन्त्रता का प्रात है,
जैसे पंक में खिला हो रम्य राजीव एक,
काले गिरिशृङ्ग पर जैसे सजी चन्द्रिका,
जैसे मोह में खिलें अनन्त अनुभूतियाँ,
कर्कश शब्दजाल में हो वीर काव्य जैसे,
जैसे झंझावात मुक्त व्योम में विलीन हो,
जैसे अर्ध रात्रि में हो जन्म वासुदेव का,
आज आधी रात में स्वतन्त्रता का प्रात है॥ रामकुमार वर्मा॥

७. प्रतीप

प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कल्पित करना ही प्रतीप अलंकार है।

प्रतीप का अर्थ है विपरीत, विलोम या उलटा। उपमेय एवं उपमान के सम्बन्ध को उलट देने के ही कारण इसे प्रतीप कहते हैं। उपमा में उपमान के समान उपमेय को बताया जाता है, किन्तु प्रतीप में उपमेय-उपमान का यह स्वाभाविक सम्बन्ध उलट दिया जाता है, अर्थात् उपमेय के समान उपमान कथित होता है। इस अलंकार में उपमान का तिरस्कार कर उपमेय की उत्कृष्टता सिद्ध की जाती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जैसे—लोंयन सों अंबुज बने, मुख सों चंद बखानि। भा० भू०

यहाँ आँखके समान कमल एवं मुखके समान चन्द्र को बताने में प्रतीप है।

यह साधर्म्यमूलक अलंकार है जिसमें कवि का मुख्य लक्ष्य उपमेय की उत्कृष्टता सिद्ध करना रहता है। इसमें उपमान में उपमेय की कल्पना करना यही विपरीतता है। उपमान की अतिशयता एवं उत्कृष्टता तो पूर्व सिद्ध है किन्तु कवि प्रतीप में उपमान के आतिशय्य को मानते हुए भी उपमेय के अधिक उत्कर्ष का विधान करता है। 'उपमान को उपमेय बनाकर और उसका अतिशयत्व प्रकट करते हुए भी इस अलंकार का मूल कार्य उपमेय का ही उत्कर्ष करना होता है, उपमान बने हुए उपमेय का नहीं।' प्रत्येक अलंकार में वर्ण्य को ही असाधारण रूप दिया जाता है अर्थात् उसके महत्त्व को सिद्ध करने के लिए तत्सदृश अप्रस्तुत का विधान किया जाता है। प्रतीप में भी इस सिद्धान्त का विरोध नहीं दिखाई पड़ता। प्रतीप में उपमेय के उत्कर्ष के साथ उपमान का अपकर्ष भी निहित है। अतः कुछ आलंकारिक उपमानापकर्ष के बोधक व्यापार को ही प्रतीप कहते हैं—उपमानापकर्षबोधानुकूलो व्यापारः प्रतीपम्—परमानन्दचक्रवर्ती, काव्यप्रकाशविस्तारिका। उपमान का अपकर्ष बोधन ही प्रतीप का प्रयोजन या उद्देश्य है।

प्रतीप में वर्ण्य या उपमेय को गौरवशाली सिद्ध करने के लिए पाँच स्थितियों का उल्लेख किया जाता है जिनके आधार पर इसके पाँच भेद किये गए हैं। प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बनाना, उपमेय को उपमान बनाकर वर्णनीय या उपमेय का निरादर करना, उपमान का तिरस्कार करना, उपमान को उपमेय की समता के अयोग्य सिद्ध करना तथा उपमान की व्यर्थता बताना।

१—प्रथम प्रतीप—प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कल्पित कर उपमान का निरादर करना प्रथम प्रतीप है। पण्डितराज ने प्रसिद्ध उपमा की विपरीतता से वर्णन की जाने वाली उपमा को प्रथम प्रतीप कहा है। उपमा की विपरीतता से उनका अभिप्राय है प्रसिद्ध उपमान में उपमेय की एवं प्रसिद्ध उपमेय में उपमान की कल्पना से।

उदाहरण—

क—मैथिली आनन सों अरविंद कलाधर आरसि जानि परै हैं ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सीता के मुख के समान कमल, चन्द्रमा एवं आईने के कथन में प्रसिद्ध उपमानों को उपमेय कल्पित कर उनके तिरस्कार का भाव भरा हुआ है।

ख—अधरों की लाली से चुपके, कोमल गुलाब के गाल लजा।
आया, पंखड़ियों को काले पीले धब्बों से सहज सजा॥ पंत॥

अधरों की लाली से गुलाब के लज्जित होने में प्रथम प्रतीप है।

ग—'उसी तपस्वी से लम्बे थे देवदारु दो चार खड़े'॥ कामायनी।

तपस्वी के समान देवदारु के कथन में उपमान (देवदारु) को उपमेय (तपस्वी) बनाया गया है।

२—द्वितीय प्रतीप—प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कल्पित कर वास्तविक उपमेय का तिरस्कार करना। यहाँ उपमेय के तिरस्कार में भी उपमान के अनादर का भाव रहता है।

उदाहरण—

क—का घूँघट मुख मूँदै अबला नारि।
चंद सरग पै सोहत, यहि अनुहारि॥

यहाँ नायिका के मुख के समान चन्द को कहकर मुख (उपमेय) का निरादर कराया गया है। यहाँ मुख के निरादर में भी उपमान (चन्द्रमा) के तिरस्कार का भाव है।

ख—नैन तजहु तुम निज गरब, यों बहु खञ्जन गोत॥

३—तृतीय प्रतीप—उपमेय को उपमान कल्पित कर प्रसिद्ध उपमान का तिरस्कार करना तृतीय प्रतीप है। यह द्वितीय प्रतीप का उलटा होता है। द्वितीय प्रतीप में उपमेय वर्ण्य विषय होता है। किन्तु तृतीय प्रतीप में उपमेय अवर्ण्य होता है।

उदाहरण—

क—गरब करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैली इति समाजगत, कीरति सिवा खुमान॥ भूषण।

यहाँ शिवाजी की कीर्त्ति के समक्ष चाँदनी का अनादर वर्णित है। अतः उपमान का तिरस्कार होने के कारण तृतीय प्रतीप हुआ।

ख—राधे तेरो वदन विराजत नीको।
जब इत उत तू बंक बिलोकति होत निसापति फीको॥ सूरदास।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

ग—जिसकी आँखों पर निज आँखें रख विशालता नापी है ।

विजय गर्व से पुलकित होकर मन ही मन फिर काँपी है ।—नूरजहाँ

मृग-नयन का निरादर है ।

४—चतुर्थ प्रतीप—जब उपमान उपमेय की उपमा के अयोग्य हो जाय तो चतुर्थ प्रतीप होगा । इसमें उपमान की अयोग्यता सिद्ध की जाती है तथा कवि का मुख्य उद्देश्य होता है उपमान का तिरस्कार करना ।

उदाहरण—

क—बहुरि विचार कीन्ह मन माँहीं । सीय बदन सम हिमकर नाहीं ॥

—रामायण ।

यहाँ सीता के मुख के समान चन्द्रमा नहीं है, ऐसा कहकर चन्द्रमा की अयोग्यता सिद्ध की गई है ।

ख—बोली वह 'पूछा तो तुमने शुभे चाहती हो तुम क्या' ?

इन दशनों अधरों के आगे क्या मुक्ता है विद्रुम क्या ?—गुप्तजी

यहाँ दशन एवं अधर उपमेय हैं तथा मुक्ता एवं विद्रुम उपमान दशनों एवं अधरों के समक्ष मुक्ता तथा विद्रुम को अयोग्य ठहराने में चतुर्थ प्रतीप है ।

५—पंचम प्रतीप—जब उपमेय के समक्ष उपमान व्यर्थ सिद्ध हो जाय तो वहाँ पंचम प्रतीप होता है । अथवा जब उपमान का कार्य करने के लिए उपमेय ही पर्याप्त हो, तो उपमान की क्या आवश्यकता ? इस प्रकार का वर्णन कर यदि उपमान की व्यर्थता सिद्ध हो तो पंचम प्रतीप होता है ।

संस्कृत आचार्यों ने उपमान का कैमर्थ्य या व्यर्थता सिद्ध करने को पंचम प्रतीप माना है ।

उदाहरण—

क—अमिय झरत चहुँ ओर को, नयन ताप हरि लेत ।

राधाजू को वदन अस, चन्द उदित केहि हेत ॥

यहाँ राधा के मुख के समक्ष चन्द्रमा को व्यर्थ सिद्ध करने में पंचम प्रतीप है ।

ख—कहा कुमुद कहु कौमुदी, कितक आरसी जोति ।

जाकी उजराई लखे, आँखि ऊजरी होति ॥ बिहारी ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

यहाँ नायिका की उज्ज्वल आभा के समक्ष कुमुद, कौमुदी (चाँदनी) और आरसी को व्यर्थ सिद्ध किया गया है।

प्रतीप और व्यतिरेक—प्रतीप और व्यतिरेक दोनों में ही उपमेय की उत्कृष्टता दिखाई जाती है, किन्तु प्रतीप में उपमेय एवं उपमान के क्रम को उलट दिया जाता है, व्यतिरेक में ऐसा नहीं होता। व्यतिरेक में उपमेय, उपमेय के गुणाधिक्य का वर्णन कर उसकी उत्कृष्टता का प्रतिपादन किया जाता है तथा साधर्म्य के साथ वैधर्म्य के द्वारा भी उपमेय की उत्कृष्टता सिद्ध की जाती है, किन्तु प्रतीप में केवल साधर्म्य के द्वारा ही उपमेय का आतिशय्य प्रकट किया जाता है। प्रतीप साधर्म्यमूलक अलंकार है तो व्यतिरेक वैधर्म्यमूलक, यही दोनों का पार्थक्य है। व्यतिरेक में उपमेय की प्रधानता दिखाई जाती है तो प्रतीप में उपमान का प्रत्याख्यान किया जाता है। व्यतिरेक में उपमेय की उत्कृष्टता दिखाते समय प्रतीप की भाँति उपमेय एवं उपमान के क्रम में परिवर्त्तन नहीं किया जाता है। प्रतीप में अनादर वाच्य तथा व्यतिरेक में अनादर व्यंग्य होता है। दोनों में ही उपमान के अनादर का भाव प्रदर्शित होता है, यही दोनों का साम्य है।

प्रतीप और उपमा—प्रतीप उपमा का विलोम या उलटा होता है। उपमा के उपमानोपमेयभाव प्रतीप में उलट जाते हैं। उपमा में प्रस्तुत उपमेय एवं अप्रस्तुत उपमान होते हैं किन्तु प्रतीप में यह संबन्ध उलट जाता है और प्रस्तुत उपमान एवं अप्रस्तुत उपमेय रूप में वर्णित होते हैं। प्रतीप का सौंदर्य उपमान के तिरस्कार में निहित है तो उपमा का चमत्कार दो पदार्थों के साम्य में रहता है।

८. रूपक

विना किसी निषेध के उपमेय में उपमान के आरोप को रूपक कहते हैं।

क—'रूपक' का अर्थ है रूप का आरोप। आरोप एक वस्तु में दूसरी वस्तु को इस प्रकार रखने को कहते हैं जिससे दोनों में किसी प्रकार का अन्तर न रह जाय। अतः रूपक का अर्थ हुआ रूप धारण करना या एक वस्तु को दूसरी वस्तु का रूप देना। रूपक अभेद का आरोप कर उपमान एवं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपमेय में एकता का प्रतिपादन करता है। इसमें उपमेय उपमान का रूप धारण कर लेता है, इसलिए यह रूपक कहलाता है। अपह्नुति अलंकार में भी उपमेय में उपमान का आरोप होता है, किन्तु वह निषेध सहित होता है और रूपक में निषेध-रहित।

रूपक सादृश्यगर्भ अभेद प्रधान आरोप-मूलक अलंकार है। इसमें सादृश्य सम्बन्ध अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। या यों कहा जाय कि इसमें गौणी सारोपा लक्षणा होती है। रूपक में आरोप-विषय पर आरोप्यमाण का आरोप किया जाता है या उपमेय को उपमान रूप दे दिया जाता है। रूप के आरोप का कविकल्पित या आहार्य होना चाहिए वास्तविक या स्वारसिक आरोप चमत्कार-रहित होता है। उपमेय पर उपमान का आरोप शाब्द हो आर्थ नहीं क्योंकि यदि आरोप अर्थगत होगा तो वहां निदर्शना अलंकार हो जायगा। आरोप में सौंदर्य या चमत्कार का होना आवश्यक है अन्यथा वह श्रोता को आकृष्ट नहीं कर सकता। रूपक अभेद प्रधान अलंकार है। अभेद प्रधान अलंकारों में उपमेय एवं उपमान के मध्य किसी प्रकार का भेद नहीं रहता यहां तक कि उन दोनों के गुण-धर्मों में भी अन्तर की प्रतीति नहीं होती है। दो पदार्थों में भेद की प्रतीति न होना ही अभेद है और जहां इसकी प्रधानता होती है वहां अभेद प्रधान अलंकार होता है। उपमालंकार में उपमेय एवं उपमान में उनके गुणों के आधार पर ही भिन्नता दिखाई पड़ती है। यह भिन्नता जब तक दिखाई पड़े तब तक वह उपमा का ही क्षेत्र कहा जायगा किन्तु ज्योंही दोनों के गुणों में एकत्व का भान लायेगा त्यों ही वहां रूपक हो जायगा। रूपक में उपमेय के साथ ही उपमान में भी अभेद का भाव आने लगता है। कवि मानस में मुख एवं चन्द्रमा दोनों की प्रतिमाएं एक ही साथ उदय होने लगती हैं तथा उसके मानसिक नेत्रों के समक्ष दोनों ही उपस्थित होकर अपने गुण में एकता या अभेद स्थापित करने के लिए उसे इस प्रकार बाध्य करते हैं कि वह अन्ततः दोनों में किसी प्रकार के भेद का प्रस्थापन न कर दोनों को एक या अभिन्न मान लेता है। उसे दोनों की भिन्नता अथवा समानता देखने का समय प्राप्त न होता और यह निर्णय लेना पड़ता है कि मुख-चन्द्र है। इस प्रकार का निर्णय तत्काल लेना पड़ता है, इसमें

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विलंब नहीं होता। रूपक प्राचीनतम अलंकारों में से है। भरत ने जिन चार अलंकारों की चर्चा की है उनमें एक रूपक भी है। अतः इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है।

रूपक के दो भेद माने गए—अभेद एवं तद्रूप रूपक।

जब उपमेय में अभेद रूप से उपमान का आरोप हो तो अभेद रूपक होगा।

इसके तीन भेद किये गए—सम, अधिक एवं न्यून।

सम अभेद रूपक—जहां विना न्यूनाधिकता के उपमेय में उपमान का आरोप हो।

अधिक अभेद रूपक—उपमेय में उपमान से गुणाधिक्य दिखलाकर अभेदता स्थापित की जाय तो अधिक अभेद रूपक होगा।

न्यून अभेद रूपक—जब उपमेय में उपमान से न्यूनता दिखाकर अभेद स्थापित किया जाय तब न्यून अभेद रूपक होगा।

तद्रूपरूपक—जहां उपमान उपमेय का रूप धारण कर ले पर एक न हो तो वहां तद्रूप रूपक होगा। इसके भी सम, हीन एवं अधिक के नाम से तीन उपभेद किये गए।

समतद्रूप—जहां उपमेय और उपमान में समरूपता होने पर तद्रूपता दिखाई जाय।

अधिक तद्रूप—जहां उपमेय में उपमान से कुछ अधिक गुण होने पर भी दोनों को तद्रूप कहा जाय।

हीन तद्रूप—उपमेय में उपमान से कम गुण होने पर भी एकरूपता दिखाई जाय तो वहां हीन तद्रूप होता है।

मम्मट के भेदों का विवरण—सांग, निरंग एवं परम्परित।

१—सांगरूपक—जहां अंगों सहित उपमेय में उपमान का आरोप हो वहां सांगरूपक होता है।

इसके दो प्रकार हैं—समस्तवस्तुविषय एवं एकदेश विवर्त्ती।

क—समस्तवस्तु विषय सांग या सावयव रूपक—इसमें सभी वस्तुओं का समस्त आरोप्यमाण का (विषयों का) शब्दतः कथन किया जाता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

नारि-कुमुदिनी अवध सर, रघुवर-विरह-दिनेस।
अस्त भये विकसित भईं, निरखि राम-राकेस॥—रामायण।

यहाँ नारी को कुमुद, अवध को तालाव, रामचन्द्र के विरह को सूर्य एवं राम को चन्द्रमा का रूप दिया गया है। यहाँ उपमान एवं उपमेय दोनों की अंगों सहित अभेदता का वर्णन किया गया है। अतः सांगरूपक हुआ। यह वर्णन शब्दों द्वारा कथित है, अर्थ वल से आक्षिप्त नहीं। अतः यहाँ समस्तवस्तु विषय नामक सांगरूपक हुआ।

एकदेशविवर्त्ती—जहाँ कुछ आरोप शब्द द्वारा कहे जाएँ और कुछ आर्थ हों अर्थात् जिन्हें शब्द द्वारा कहा नहीं गया हो अपितु अर्थ-वल से आक्षिप्त हों, वहाँ एकदेशविवर्त्ती नामक भेद होता है। इसमें कुछ उपमान तो शब्द द्वारा उपात्त या ग्रहण किये जाते हैं तथा कुछ अर्थ-सामर्थ्य से जाने जाते हैं।

उदाहरण—

शिशुता की निशा सिरानी, उग आया यौवन-दिनकर।
छविविलसित तन सरवर में दो सरसिज लसे मनोहर॥ नूरजहाँ।

यहाँ शिशुता में निशा का, यौवन में दिनकर एवं तन में तालाव का आरोप शब्दतः कथित है, किन्तु सरसिज के साथ स्तन का आरोप शब्द द्वारा स्पष्ट नहीं कहा गया है। इसका अर्थ द्वारा सहज ही आक्षेप होता है। अतः यहाँ एकदेशविवर्ती सांग रूपक हुआ।

निरंग रूपक या निरवयव रूपक—जहाँ अंग से रहित उपमेय में उपमान का आरोप हो वहाँ निरंग रूपक होता है। इसमें एक उपमेय में एक उपमान का आरोप होता है—(निरवयं तु तदुक्तं यण्येकारोपसाधकं नान्यत्—अलंकार-कौस्तुभ पृ० २१६) जैसे चन्द्रमुख।

इसके दो प्रकार होते हैं—शुद्ध या केवल निरंगरूपक एवं मालारूप निरंगरूपक।

शुद्ध-निरंगरूपक—जहाँ एक उपमेय में एक उपमान का आरोप हो वहाँ शुद्धनिरंगरूपक होता है। जैसे—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

नयन की नीलम तुला पर मोतियों से प्यार तोला ।
कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला ॥
—महादेवी—सांध्य गीत।

नयन के ऊपर नीलम तुला का आरोप होने के कारण यहाँ शुद्ध निरंग रूपक (एक उपमेय पर एक उपमान का आरोप) है ।

नयन-नीलिमा के लघु नभ में । पंत ।

नयन-नीलिमा में लघुनभ (उपमान) का आरोप होने से यह शुद्ध निरंग रूपक का उदाहरण हुआ ।

मालारूप निरंगरूपक—जहाँ एक उपमेय में अंग-रहित अनेक उपमानों का आरोप हो वहाँ मालारूप निरंग रूपक होता है । जैसे—

धूम धुँआरे काजर कारे, हमहीं विकरारे बादर ।
मदनराज के वीर बहादर, पावस के उड़ते फणिधर ॥ पंत ।

यहाँ एक उपमेय (बादल) पर अनेक उपमानों का आरोप होने से मालारूप निरंग रूपक हुआ ।

परम्परित—जहाँ एक आरोप दूसरे आरोप का कारण हो वहाँ परम्परित रूपक होता है । जैसे—

क—राम नाम सुन्दर करतारी । संसय विहँग उड़ावन हारी ॥ रामायण

परम्परित रूपक के दो भेद होते हैं—एक रूप तथा मालारूप ।

ख—देखो पृथ्वी पुष्प-मुखों से सरस-सुरभि-संवाद ॥
—रामकुमार वर्मा—चित्ररेखा

उदाहरण—

१—भुज-लता फँसा कर नर-तरु से झूले सी झोंके खाती हूँ ॥—कामायनी

क—प्यासी मछली सी आँखें थीं विकल रूप के जल में ॥ आँसू ।

यहाँ आँख में मछली का आरोप है तथा यह आरोपरूप में जल के आरोप का कारण है । एक आरोप का दूसरे आरोप के कारण होने से यहाँ एक परम्परित रूपक हुआ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—लो जग की डाली-डाली पर जागी नवजीवन की कलियाँ ॥ पंत।

महामोह घन-पटल-प्रभंजन । संसय-विपिन-अनल-सुर-रंजन ॥ रामायण।

यहाँ मोह में घन-पटल (मेघ-समूह) का आरोप किया गया है, जो राम में प्रभंजन के आरोप का कारण स्वरूप उपस्थित है। इसी प्रकार उत्तरार्द्ध में जो संशय में विपिन का आरोप है वह राम में अग्नि के आरोप का कारण है। यहाँ एक राम (उपमेय) में प्रभंजन और अनिल एकाधिक आरोप हैं। अतः यह मालारूप परम्परित का उदाहरण हुआ।

मम्मट, विश्वनाथ आदि अन्य आचार्य एक रूप एवं माला रूप परम्परित के भी श्लिष्टत्व एवं अश्लिष्टत्व के आधार पर चार भेदों की कल्पना करते हैं, पर श्लेष के आधार पर अलंकारों का भेद-विस्तार उपयुक्त नहीं माना जा सकता। ऐसा करने पर सभी अर्थालंकारों के दो भेद करने पड़ेंगे। श्लेषमूलक एवं अश्लेष-मूलक।

रूपक का अन्य अलंकारों के साथ संबंध—

रूपक और उत्प्रेक्षा—रूपक में आरोप की प्रधानता होती है तो उत्प्रेक्षा में संभावना की। अर्थात् रूपक में उपमेय पर उपमान का आरोप होता है तो उत्प्रेक्षा में प्रस्तुत में अप्रस्तुत की संभावना की जाती है। रूपक में उपमेय पर उपमान के आरोप में निश्चितता की स्थिति रहती है पर उत्प्रेक्षा में अनिश्चितता होती है।

रूपक और संदेह—रूपक में चित्तवृत्ति में निश्चितता रहती है पर संदेह में कवि की मनःस्थिति प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत के बीच दोलायमान होती रहती है अर्थात् अनेक पक्षों में होने के कारण उसमें निश्चितता का अभाव रहता है।

रूपक और स्मरण—स्मरण और रूपक दोनों ही सादृश्यमूलक अलंकार हैं। रूपक में उपमेय में उपमान का आरोप किया जाता है किन्तु स्मरण में पूर्वानुभूत पदार्थ के समान तत्सदृश वस्तु को देखकर उसकी अनुभूति होती है। रूपक में आरोप प्रधान होता है किन्तु स्मरण में स्मृति की प्रधानता होती है।

रूपक और अतिशयोक्ति—रूपक में तद्रूपता होती है तो अतिशयोक्ति में अध्यवसान। रूपक में उपमेय एवं उपमान दोनों का शब्दतः उपादान किया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जाता है अर्थात् दोनों ही विद्यमान होते हैं पर अतिशयोक्ति में केवल उपमान का ही कथन किया जाता है और वह उपमेय का निगरण कर लेता है।

रूपक और भ्रान्तिमान्—रूपक में प्रकृत और अप्रकृत का अभेद प्रदर्शित किया जाता है पर वक्ता को दोनों पार्थक्य ज्ञात रहता है। अर्थात् वह चन्द्रमा और मुख के अन्तर को जानते हुए भी चन्द्रमा से मुख को अभिन्न मान लेता है। भ्रान्तिमान् में उपमेय में उपमान का भ्रम निश्चयात्मक होता है। अर्थात् वहाँ धोखे या भ्रम से ही एक पदार्थ को दूसरा पदार्थ मान लिया जाता है।

रूपक और उल्लेख—निरंग मालारूपक एवं उल्लेख दोनों में ही एक पदार्थ का अनेक प्रकार से कथन होता है। दोनों में अन्तर यह है कि निरंग रूपक में एक पदार्थ में अनेक पदार्थों का आरोपमात्र ही होता है, अनेकधा कथन नहीं जब कि उल्लेख में विभिन्न परिस्थितियों के कारण एक वस्तु की अनेक रूपों में अवस्थिति का निरूपण किया जाता है।

परिणाम

जब उपमान उपमेय का रूप धारण कर कोई क्रिया करे तब परिणाम अलंकार होता है।

परिणाम का अर्थ है परिणति या परिवर्त्तन। इस अलंकार में उपमान स्वरूप में परिवर्त्तन हो जाता है। अर्थात् वह उपमेय के साथ मिलकर किसी क्रिया को सम्पन्न करने में समर्थ होता है। इसमें उपमान में स्वतः कार्य करने की क्षमता नहीं होती अर्थात् उसमें क्रियाकारित्व की असमर्थता रहती है, पर वह उपमेय के साथ अभिन्न होकर किसी कार्य को सम्पन्न करने में सर्वथा समर्थ हो जाता है। परिणाम सादृश्यगर्भ अभेद-प्रधान आरोपमूलक अलंकार है तथा इसका रूपक के साथ निकट का सम्बन्ध है। परिणाम में विषयी या उपमान का उपयोग नहीं होता पर उपमेय के साथ अभेद स्थापन के कारण उसमें उपयोगिता के तत्त्व का आधान हो जाता है और वह क्रियाकारित्व की शक्ति से सम्पन्न हो जाता है। इसमें उपमेय एवं उपमान का अभेदत्व तो मान्य होता है, पर उपमान में कार्य करने की क्षमता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होती और उसमें तब तक यह शक्ति नहीं आती जब तक कि वह उपमेय के साथ अभिन्नत्व स्थापित नहीं करे। इस अलंकार में उपमान उपमेय रूप में परिणत होकर ही क्रिया करने में समर्थ होता है। तात्पर्य यह कि परिणाम में निष्क्रिय उपमान उपमेय के साथ मिल कर ही प्रकृतकार्योपयोगी होता है। परिणामालंकार में कवि की दृष्टि मूलतः उपमेय एवं उसके कार्य-कलाप ही में स्थित रहती है। जब वह उपमान सौंदर्याभिव्यक्ति के लिए उपमान की योजना करता है तो उस समय उसका ध्यान उसके (उपमान की) सामर्थ्यासामर्थ्य पर नहीं जाता, पर ज्यों ही उसे यह भान हुआ कि उपमान में क्रियाकारित्व की क्षमता का अभाव है तो वह तत्क्षण उपमेय के साथ उसका अभेदत्व स्थापित कर उसमें कार्य करने की क्षमता भर देता है। इस प्रकार उपमेय के साथ मिलकर असमर्थ उपमान पूर्ण हो जाता है और उसमें अभीष्ट-सिद्धि की शक्ति आ जाती है।

उदाहरण के लिए कहा जाय कि वह मादक नेत्रोंवाली नायिका प्रसन्न नेत्र-कमलों से देखती है।

इसमें दृग (विषय) पर कमल का आरोप है। पर देखना क्रिया कमल द्वारा सम्भव नहीं है अतः देखना कार्य में उपयोगी होने के लिए कमल को नेत्र के साथ अभेदत्व स्थापित करना पड़ा है और तब वह इस कार्य में पूर्ण समर्थ हुआ है—

'प्रसन्नेन दृगब्जेन वीक्षते मदिरेक्षणा' ॥ कुवलयानन्द २१ ॥

जब आरोप्यमाण या उपमान में प्रकृतार्थ-सम्पादनक्षमता आ जाती है तब वह उपयोगी बन जाता है। इस प्रकार परिणाम अलंकार में आरोप्यमाण का कार्योपयोगित्व उसका अपरिहार्य तत्व माना गया है। जैसे—

क—लोचन-कंज बिसाल तें देखत देखौ बाम।

नायिका विशाल नेत्र-कमलों से देखती है। स्वतः कंज में देखने का सामर्थ्य नहीं है, किन्तु लोचन के साथ अभिन्न होकर वह सहज ही 'वीक्षणक्रिया' सम्पन्न कर लेने में समर्थ हो जाता है, अतः इसमें परिणाम हुआ।

ख—कर-कंजन, खंजन-दृगन, ससि-मुख अञ्जन देति।

विज्जु-हँसनि तें हास जू, मन-बिहंग गहि लेति ॥ दास ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रूपक और परिणाम में विषयी एवं विषय के भिन्न उद्देश्य होते हैं। रूप कालंकार में विषयी विषय को अपने रूप में रूपित कर लेता है और "विष अपने स्वरूप से च्युत हो जाता है।" पर परिणाम में विषयी का उपयोग हो और वह विषय के साहचर्य से ही क्रिया करने में उपयोगी होता है। अ एक मात्र परिणाम अलंकार में ही विषयी या आरोप्यमाण का उपयोग हो है। जयरथ ने ही सर्व प्रथम ऐसा विचार व्यक्त किया है। रूपक में आरोप माण उपरंजक होता है क्योंकि वहाँ उसके रूप-मात्र का ही समारोप हो है पर परिणाम में व्यवहार समारोप होने के कारण वह प्रकृत से अनि हो जाता है।

उल्लेखालंकार

ज्ञाता के भेद से अथवा विषय के भेद से एक वस्तु का अनेक प्र वर्णन या उल्लेखन ही उल्लेखालंकार है।

उल्लेख का अर्थ है लिखना या चित्रण करना किन्तु यहाँ उसका अभि वर्णन से है। इस अलंकार में एक वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन, चित्रण उल्लेखन होता है, अतः इसे उल्लेख कहते हैं। कहीं-कहीं आचार्यों ने वर्ण स्थान पर ग्रहण शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ ज्ञान से है। चूँकि अलंकार में अनुभविता को एक वस्तु का ज्ञान अनेकधा होता है, अतः उल्लेख कहते हैं। उल्लेख में एक ही वर्ण्य विषय होता है, जिसका वर्णन वि प्रकार के व्यक्ति दृष्टिभेद के कारण अनेक प्रकार से करते हैं, अथवा एक ही उस वस्तु के प्रति अपनी अनेक विध प्रतिक्रिया का वर्णन करता है। प्रकार का अनेकधा ज्ञान दो प्रकार से संभव है—ग्रहीतृ भेद एवं विषय से। जब ग्रहीता या अनुभविता किसी विषय का अनेक प्रकार से वर्णन है तब यह आवश्यक नहीं कि वह उस वस्तु में निहित अनेक गुणों या का उल्लेख करे। वह तो उन्हीं गुणों का वर्णन करता है जिनका प्रभाव चित्त पर अधिक पड़ता हो। इस प्रकार एक ही विषय व्यक्ति के विभिन्न प्रकार की भावना की उत्पत्ति के कारण भिन्न-भिन्न होता है। प्रकार का ज्ञान विषय-भेद द्वारा भी संभव है। अर्थात् किसी वस्तु वि निहित अनेक गुणों को जब व्यक्ति या अनुभविता अनेक प्रकार से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तो वहाँ भी उल्लेख होता है। इस प्रकार प्रथम में अनुभविता के भेद से एक वस्तु का अनेकधा कथन में उल्लेख होता है तो दूसरे में एक ही ज्ञाता द्वारा विषय के भेद से किसी वस्तु के अनेक प्रकार के वर्णन में इसकी स्थिति देखी जाती है। इसी आधार पर इसके दो भेदों की कल्पना की गयी है। उल्लेख अलंकार के मूल में एक व्यक्ति अथवा अनेक व्यक्तियों की किसी वस्तु विशेष के प्रति होनेवाली विभिन्न प्रतिक्रियाओं का हाथ है। व्यक्तियों के दृष्टि-भेद से एक वस्तु के प्रति उनकी अनेकधा भावना ही प्रथम उल्लेख है। जब कवि भावातिरेक की स्थिति में किसी वस्तु विशेष के व्यापक प्रभाव का वर्णन करता है तो वह उसके लिए अनेक उपमानों की सृष्टि कर उसका सौन्दर्यांकन करता है। द्वितीय भेद में विस्तु विशेष के गुणों के प्रति होने वाली एक व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं होती हैं। दोनों ही भेदों में 'वस्तु सौन्दर्य' की व्यापकता का भाव निहित है। उल्लेखालंकार के माध्यम से कवि वस्तु-सौन्दर्य की व्यापकता का निदर्शन कर अपनी कल्पना शक्ति को विस्तृत पीठिका पर अधिष्ठित कर देता है। इसमें कवि-कल्पना का चरमोत्कर्ष देखा जाता है जबकि वह एक वस्तु का अनेक प्रकार से चित्रण कर अनेक उपमानों की सृष्टि करते हुए अपनी अपूर्व चित्रण-शक्ति पर गर्व का अनुभव करता है। इस अलंकार के निरूपण में वस्तु-सौन्दर्य का अनेकधा चित्रण करते हुए कवि को न केवल आत्मबल ही प्राप्त होता है अपितु उसे अप्रस्तुत योजना करने की शक्ति का भी ज्ञान होता है। इसमें व्यक्ति के आत्मगौरव एवं आत्मतोष की भावना भी निहित है। उल्लेख सादृश्यगर्भ, अभेदप्रधान आरोप मूलक अलंकार है। इसमें सादृश्य, अभेदता एवं आरोप तीनों ही तत्त्व विद्यमान रहते हैं। कवि एक विषय का वर्णन करने के लिए अनेक उपमानों का नियोजन करता है जिससे इसकी सादृश्यमूलकता प्रकट होती है। एक वस्तु के लिए जितने उपमान प्रस्तुत किये जाते हैं उनका उक्त वस्तु के साथ अभेद या अभिन्नता होती है तथा उस पर अन्य पदार्थों का आरोप भी होता है। जैसे कहा जाय कि 'एक कहैं नरसिंघ है संगर एक कहैं नरसिंघ सिवा है।' तो यहाँ प्रकारान्तर से शिवा जी का सादृश्य नरसिंह के साथ तथा उससे अभेदता भी सिद्ध हो जाती है। शिवाजी नरसिंह हैं ऐसा कहने पर शिवाजी पर नरसिंह का भी आरोप हो जाता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उल्लेख की विशेषताएँ—

क—उल्लेख में वस्तु के व्यापक प्रभाव की जो प्रतिक्रिया अनेक अथवा एक व्यक्ति के मन पर होती है, उसी का चित्रण होता है।

ख—किसी विषय का निमित्त भेद से अनेक प्रकार का वर्णन ही उल्लेख है।

ग—इसके वर्गीकरण के आधार हैं—ज्ञातृ-भेद एवं विषय-भेद।

घ—उल्लेख में वर्णनीय विषय का अनेक विध चित्रण निरुद्देश्य न होकर सोद्देश्य होता है।

ङ—एक वस्तु के प्रति एक अथवा अनेक व्यक्तियों की प्रतिक्रिया अपने में विशेष महत्त्व रखती है। इस दृष्टि से प्रस्तुत का महत्त्व बढ़ जाता है और उसकी परिधि व्यापक हो जाती है।

च—कवि वस्तु के व्यापक प्रभाव का चित्रण (भावातिरेक की स्थिति में) अनेक अप्रस्तुतों के साथ साम्य-स्थापित करते हुए ही करता है।

छ—इसमें वस्तु सौन्दर्य की व्यापकता एवं अनेक रूपता की भावना को बल मिलता है तथा इसकी सिद्धि कर कवि को मानसिक संतोष सरलता से प्राप्त होता है।

भेद—उल्लेखालंकार दो प्रकार का होता है तथा इसके वर्गीकरण के आधार हैं—ज्ञातृ-भेद एवं विषय-भेद।

प्रथम उल्लेख—

ज्ञाताओं के भेद से एक विषय का अनेक प्रकार से चित्रण प्रथम उल्लेख है।

द्वितीय उल्लेख—

द्वितीय उल्लेख में विषय-भेद के कारण एक व्यक्ति एक ही पदार्थ का अनेक प्रकार से उल्लेख या वर्णन करता है।

क—जानति सौति अनीति है, जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानति लाज है, प्रीतम जानति प्रीति॥

यहाँ नायिका विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न रूपों में वर्णित है। सौतें अनीति, सखियाँ सुनीति, गुरुजन लज्जा एवं प्रियतम उसे प्रीति के रूप में देखते हैं। अतः एक व्यक्ति का विभिन्न ग्रहीताओं द्वारा, अपनी अभिलाषा के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

अनुसार विभिन्न रूपों में देखने के कारण यहाँ उल्लेख का प्रथम प्रकार हुआ।

ख—हम सागर के धवल हास हैं, जल के धूम, गगन की धूल।
अनिल फेन ऊषा के पल्लव, वारि-वसन, वसुधा के मूल॥
—पंत।

इसमें बादल का अनेक प्रकार से वर्णन है। वह स्वयं अपने विषयमें अपनी अनेक विशेषताओं का उल्लेख कर रहा है।

ग—किस धीवर ने यह जाल निराला डाला।
सीपी से निकली है मोती की माला।
उत्ताल तरंग पयोनिधि में खिलती है।
पतली मृणाल वाली नलिनी हिलती है॥
—प्रसाद, कानन कुसुम।

उल्लेख के अन्य उदाहरण—

क—कौन तुम हो वसन्त के दूत विरल पतझड़ में अतिसुकुमार।
घन तिमिर में चपला की रेख, तपन में शीतल मंद बयार॥
—कामायनी।

ख—सुरपति के हमहीं हैं अनुचर, जगत्प्राण के हैं सहचर।
मेघदूत की सरल कल्पना चातक के चिर जीवन धर॥
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर, सुभग स्वाति के मुक्ता वर।
विहग वर्ग के गर्भ-विधायक, कृषक बालिका के जलधर॥ पंत।

स्मरण

पूर्वानुभूत पदार्थ के सदृश किसी अन्य पदार्थ को देखकर उसकी याद आने को स्मरण अलंकार कहते हैं।

यह सादृश्यगर्भ भेदाभेद प्रधान अलंकार है। किसी वस्तु को देखकर तत्सदृश अन्य पदार्थ का स्मरण होना ही स्मरण है। इसमें उपमान को देखकर उपमेय की याद आती है और कभी उपमेय को देखकर उपमान के स्मरण होने का भी वर्णन किया जाता है। स्मरण अलंकार में ऐसा भी देखा जाता है कि विरुद्ध वस्तु को देखकर तद्रूप वस्तु की याद हो जाये। कुछ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

आचार्यों ने इसका नाम स्मृति भी दिया है। अलंकार की परिधि में आने के लिए स्मरण का चमत्कारपूर्ण होना आवश्यक है अर्थात् वह कवि-कल्पित हो। कोरे स्मरण के वर्णन में विच्छित्ति का अभाव होने से चमत्कारत्व नहीं आ सकेगा। यह अलंकार कवि की उस मानसिक स्थिति या प्रक्रिया पर आधारित है जिसमें पूर्वानुभव संस्कार रूप से मन में स्थिर रहता है। वह परिस्थिति-वश पूर्वानुभव को जगाकर तत्सदृश परिस्थिति एवं वातावरण का निर्माण कर देता है। यही स्थिति स्मरण अलंकार का कारण बनती है।

स्मरण अलंकार के विवेचन में संस्कृत आलंकारिकों ने दर्शन, अनुभव या ज्ञान शब्द का प्रयोग कर इसके स्वरूप का विवेचन कर इसके क्षेत्र का विस्तार किया है। मम्मट ने दर्शन, रुय्यक ने अनुभव तथा पंडितराज ने ज्ञान शब्द का समावेश कर इस तथ्य की व्यंजना की है।

स्मरण अलंकार के स्वरूप-निर्णय में कतिपय प्रश्न को लेकर आचार्यों में मतवैभिन्न्य देखा जाता है। जैसे सादृश्य के आधार होने वाले पदार्थ के स्मरण के वर्णन के सम्बन्ध में आचार्यों ने यह मत व्यक्त किया है कि यह कोई आवश्यक नहीं कि प्रस्तुत वस्तु के सदृश ही अप्रस्तुत हो अपितु प्रस्तुत पदार्थ से असदृश पदार्थ के स्मरण में भी स्मरण अलंकार हो सकता है।

उदाहरण—

क—मैं पाती हूँ मधुर ध्वनि में कूजने में खगों के।
मीठी तानें परम प्रिय की मोहिनी वंशिका की॥
—प्रिय-प्रवास।

पक्षियों की मधुर-ध्वनि सुन कर कृष्ण की वंशी-ध्वनि की याद आने से यहाँ स्मरण अलंकार हुआ।

ख—देखता हूँ जब पतला,
इन्द्रधनुष सा हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खेलती है जब कुमुद कला;
तुम्हारे मुख का भी ध्यान
मुझे तब करता अन्तर्धान। पंत—गुंजन।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ बादल से चन्द्रकला को निकलते देखकर (कवि को) प्रिया के मुख का ध्यान होने में स्मरण अलंकार है।

ग—जब जब विपिन बीच वैदेही
अनुभव करतीं कष्ट अपार,
तब तब गृह-सुख-स्मृति बरसाती
राघव के दृग से जल-धार ॥

आ० देवेन्द्रनाथ शर्मा—अलंकार-मुक्तावली पृ० ७६।

घ—थूहर पलास देखि-देखि के बबूर बुरे,
हाय-हाय मेरे वे तमाल सुधि आवै हैं।

यहाँ पलाश और बुरे बबूलों को देखकर हरे तमालों की स्मृति होने में वैसादृश्य के कारण स्मरण अलंकार की व्याप्ति हुई है।

स्मृति संचारी और स्मरण—दोनों में ही विस्मृत वस्तुओं के स्मरण का वर्णन होता है किन्तु जब वर्णन में रस की पुष्टि हो तो स्मृति संचारी और अर्थ में चमत्कार हो तो स्मरण अलंकार होगा।

सन्देहालंकार

उपमेय में उपमान के संशय को सन्देह अलंकार कहते हैं।

संदेह सादृश्यगर्भ अभेदप्रधान आरोपमूलक अर्थालंकार है। संदेहालंकार में संशय का सादृश्यमूलक होना आवश्यक है तथा उसे चमत्कारपूर्ण भी होना चाहिए। कवि सादृश्य के कारण ही एक वस्तु में अन्य वस्तु के संशय का निबन्धन करता है तथा अपनी कवित्व-शक्ति या प्रतिभा के द्वारा ही एक उपमेय में अनेक उपमानों का संदेह प्रकट करते हुए इस अलंकार की योजना करता है। इस अलंकार की स्थिति में कवि की चित्तवृत्ति संदेहपूर्ण हो जाती है और उसकी भावना अनेक वस्तुओं में दोलायित होती रहती है। संदेहालंकार के निरूपण के समय कवि की भावना लौकिक-संदेह-ज्ञान से सर्वथा भिन्न होती है। लौकिक-चितवृत्ति या लौकिक-संदेह-ज्ञान स्थाणु या पुरुष की भाँति अनाहार्य या वास्तविक होता है किन्तु कवि की संदेहात्मक चित्तवृत्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(कविकल्पित संदेह-ज्ञान) आहार्य होती है और उसमें वास्तविकता न होकर कल्पना का प्राधान्य होता है। अतः कवि-प्रतिभा-प्रसूत संशय का वर्णन ही संदेहालंकार है अन्यथा केवल संदेह के वर्णन में अलंकारत्व संभव नहीं है। इस प्रकार इस अलंकार के तीन प्रधान तत्त्व हुए—

क—प्रकृताप्रकृत में सादृश्य या साम्य का होना।

ख—सादृश्य से भिन्न आधार या सादृश्येतर सम्बन्ध में सन्देहालंकार की अव्याप्ति।

ग—संशय का कविकल्पनाजन्य या विच्छित्ति या वैचित्र्यपूर्ण वर्णन।

घ—मद-भरे ये नलिन नयन मलीन हैं,
अल्प जल में या विकल लघुमीन हैं।
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी,
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं॥—निराला।

यहां नेत्र में (प्रकृत) लघुमीन (अप्रकृत) का संशय होने से सन्देहालंकार है।

ङ—विरह है अथवा यह वरदान।—पंत।

१—निश्चयमध्य—जहां आदि और अन्त में सन्देह रहे किन्तु मध्य में निश्चय हो जाय तो निश्चयमध्य सन्देह अलंकार होगा।

कहूँ मानवी यदि मैं तुमको तो वैसा संकोच कहां?
कहूँ दानवी तो उसमें है यह लावण्य की लोच कहां?
वन-देवी समझूं तो वह तो होती है भोली-भाली।
तुम्हीं बताओ अतः कौन तुम हे रंजित रहस्य वाली॥
—पञ्चवटी, गुप्त जी।

यहां लक्ष्मण को शूर्पणखा में मानवी, दानवी और वनदेवी का सन्देह होता है किन्तु अन्त में उन्हें यह निश्चय हो जाता है कि यह इनमें से कोई नहीं है। इस प्रकार अन्त में सन्देह बना रहता है। यहां आदि और अन्त में सन्देह की स्थिति है, अतः यह निश्चयमध्य सन्देह हुआ।

२—निश्चयान्त—जहां प्रारम्भ में संशय रहे किन्तु अन्त में निश्चय हो जाय वहां निश्चयान्त सन्देह होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

घन-च्युत चपला कैलता, संसय भयो निहारि।
दीरघ स्वासनि लखि कपी, किय सीता निरधारि॥

अलंकार-मुक्तावली पृ० ८२।

अशोक-वाटिका में सीता को देखकर पवनसुत हनुमान को संशय हुआ कि सीता है अथवा मेघ से गिरी बिजली या लता है। किन्तु दीर्घ निश्वास से उन्हें विश्वास हो गया कि यह सीता ही है। यहां प्रारम्भ में अनिश्चय एवं अन्त में निश्चय की स्थिति है।

सन्देह और भ्रान्तिमान्—भ्रान्तिमान् में निश्चयात्मक भ्रम होता है, किन्तु सन्देह में वास्तविकता एवं अवास्तविकता का निश्चय नहीं होता। भ्रान्तिमान् में असत्य को ही सत्य मान लिया जाता है। सन्देह में प्रकृत में अप्रकृत का संशय होता है तो भ्रान्तिमान् में एक वस्तु में (उपमेय) अन्य वस्तु (उपमान) की भ्रान्ति। सन्देह में ज्ञान द्विकोटिक या विकल्पात्मक होता है तो भ्रान्तिमान् में एक कोटिक या निश्चयात्मक, किन्तु वह भ्रान्त या मिथ्या होता है।

सन्देह और रूपक—रूपक में कवि की चित्तवृत्ति अनिश्चित नहीं रहती, जबकि सन्देह में वह अनेक पक्षों में दोलायमान होती रहती है।

उत्प्रेक्षा एवं सन्देह—उत्प्रेक्षा में संभावना का प्राधान्य होता है तथा उसमें संशय का झुकाव एक पक्ष में ही होता है, पर सन्देह अलंकार में दोनों ओर समान रूप से संशय होता है। दे० काव्य-प्रकाश हिन्दी-टीका, डॉ० हरप्रसाद शास्त्री।

सन्देहालंकार के अन्य उदाहरण—

अन्यालंकार मिश्रित—

क—सोने की सिकता में मानो कालिन्दी बहती भर उसास।
स्वर्गंगा में इन्दीवर की या एक पंक्ति कर रही हास॥ कामायनी।

मालारूप—

ख—कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है,
कि श्याम घन-मंडल में दामिनी की धारा है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है,
कि राहु के कबंध पर कराल केतु तारा है ॥
'शंकर' कसौटी पर सोने की लीक है,
कि तेज ने तिमिर के हीय में तीर मारा है ।
काली पाटियों के बीच मोहिनी की मांग है,
कि ढाल पर ठाढ़ कामदेव का दुधारा है ॥
उर्मिला ने कीर सम्मुख दृष्टि की ।
या वहां दो खंजनों की सृष्टि की ॥ साकेत ।

भ्रान्तिमान्

अत्यधिक सादृश्य के कारण उपमान में उपमेय की निश्चयात्मक भ्रान्ति को भ्रान्तिमान् अलंकार कहते हैं ।

भ्रन्तिमान् का अर्थ है भ्रमपूर्ण ज्ञान । इसमें अप्रकृत या उपमान के समान प्रकृत या उपमेय को देखकर उसमें उपमान का निश्चयात्मक भ्रम हो जाता है तथा यह भ्रम सादृश्यजन्य होता है । भ्रान्तिरूप चित्तधर्म के विद्यमान होने के कारण इसे भ्रान्तिमान् कहते हैं—इसमें किसी को एक वस्तु में अन्य वस्तु का भ्रम हो जाने का वर्णन होता है । भ्रान्तिमान् अलंकार में भ्रम का वर्णन वास्तविक न होकर कविकल्पित होना चाहिए । अर्थात् चमत्कारपूर्ण भ्रम के वर्णन में ही भ्रान्तिमान् का अलंकारत्व संभव है । इस प्रकार भ्रान्तिमान् अलंकार की व्याप्ति के लिए सादृश्य एवं चमत्कारपूर्ण वर्णन का होना आवश्यक है । जहां सादृश्य के अतिरिक्त चिन्ता, काम, शोक, भय, उन्माद आदि से उत्पन्न भ्रान्ति का निरूपण हो तो वहां भ्रान्तिमान् अलंकार न होगा । अतः भ्रान्तिमान् अलंकार का विषय है सादृश्य पर आश्रित भ्रान्ति—सादृश्यप्रयुक्ता च भ्रान्तिरस्य विषयः । यह सादृश्यगर्भ, अभेदप्रधान आरोपमूल अर्थालंकार का एक प्रकार है । सादृश्येतर कारणों से उत्पन्न भ्रान्ति को अलंकार नहीं मानने का आचार्यों ने कोई आधार प्रस्तुत न किया । इस सम्बन्ध में डॉ० ब्रह्मानन्द शर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध में विचार किया है । इनके अनुसार सादृश्य पर आधारित भ्रान्ति के कारण बाह्य होते हैं तो सादृश्य से अतिरिक्त भ्रान्ति के कारण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आन्तरिक। उदाहरण-स्वरूप यदि मुख और कमल के अत्यधिक साम्य के कारण भ्रमर को मुख में कमल की भ्रान्ति हो तो यह कारण बाह्य माना जायगा क्योंकि ऐसी स्थिति में मुख में विद्यमान बाह्य सौन्दर्य के कारण ही भौंरे को इस प्रकार का भ्रम होता है। किन्तु यदि यही भ्रम किसी विरही को हो जाय तो यह कारण आन्तरिक माना जाएगा क्योंकि उसकी मानसिक दशा के कारण ही उसे ऐसा भ्रम होता है। "जब भ्रान्ति के कारण बाह्य होते हैं तब वे भ्रान्ति के विषय में विद्यमान रहते हैं। अतः इस दशा में चमत्कार का कारण भ्रान्ति ही होता है। परन्तु जब भ्रान्ति के कारण आन्तरिक होते हैं तब वे भ्रान्ति के विषय में न रहकर दर्शक की चित्तवृत्ति में रहते हैं। अतः इस दशा में चमत्कार का कारण भ्रान्ति न होकर दर्शक की चित्तवृत्ति होता है।"

इस चित्तवृत्ति का ज्ञान वर्णित भ्रान्ति से अवश्य होता है, परन्तु हमारे चमत्कार का विषय भ्रान्ति न होकर वर्णित मानसिक दशा होती है।

भ्रान्तिमान् अलंकार में कवि को भ्रान्ति नहीं होती बल्कि इसमें कवि-निबद्ध पात्र के ही भ्रम का वर्णन होता है। यदि स्वयं कवि को भ्रम हो जाय तो न तो वहां अलंकारत्व की सृष्टि हो सकेगी और न किसी प्रकार का कौतूहल ही होगा। क्योंकि भ्रान्त व्यक्ति किसी विषय का वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सकता। कवि तो प्रस्तुत विषय का वर्णन करके ही दो पदार्थों में अत्यधिक सादृश्य के कारण उनमें अन्य वस्तु के भ्रम का वर्णन करता है तथा अन्य व्यक्ति की भ्रान्ति का वर्णन करके ही इस अलंकार की चमत्कारपूर्ण व्यंजना करता है। कवि भ्रान्त व्यक्ति की वास्तविक भ्रान्ति का उल्लेख कर अपूर्व आनन्द की प्राप्ति करता है। इसमें एक ही व्यक्ति को एक वस्तु में अनेक पदार्थों के प्रसंग में अनेक भ्रान्तियां भी होती हैं।

क—पाय महावर देन को नाइन बैठी आय।
फिरि-फिरि जानि महावरी, एँड़ी मीड़त जाय॥—विहारी।

यहाँ नायिका की स्वाभाविक लाल एड़ी में नायिन को महावरी का निश्चयात्मक भ्रम हो गया है, अतः वह उसे महवर जान कर बार-बार निचोड़ रही है। नायिन की इस क्रिया में भ्रान्तिमान् अलंकार है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से,
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है?—साकेत।

उर्मिला की नाक के मोती पर अधर की लालिमा के पड़ने से सुग्गे को उस अनार के दाने पर अन्य शुक की भ्रान्ति हो गयी है। अतः यहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार हुआ। उपर्युक्त सभी उदाहरणों में सादृश्य एवं कवि-कल्पना-प्रसूत भ्रान्ति का वर्णन है तथा इनमें कवि की भ्रान्ति न होकर कवि-निबद्धपात्र की भ्रान्ति है।

भ्रान्तिमान् और रूपक—दोनों में साम्य यह है वे अभेदप्रधान अलंकार हैं तथा दोनों में अत्यधिक साम्य के कारण प्रकृत में अप्रकृत का निश्चयात्मक ज्ञान होता है। भ्रान्तिमान् में अवास्तविक ज्ञान की प्रधानता होती है जबकि रूपक में वास्तविक ज्ञान प्रधान होता है। भ्रान्तिमान् में ज्ञाता को केवल उपमान या अप्रकृत का ही ज्ञान होता है किन्तु रूपक में प्रकृत एवं अप्रकृत दोनों की ही प्रतीति होती है। भ्रान्तिमान् अवास्तविक ज्ञान पर आश्रित रहता है किन्तु रूपक वास्तविक ज्ञान पर।

भ्रान्तिमान् एवं अतिशयोक्ति—दोनों ही सादृश्यमूलक अलंकार हैं, दोनों में प्रस्तुत में केवल अप्रस्तुत का ज्ञान होता है। अतिशयोक्ति एवं भ्रान्तिमान् "दोनों में प्रकृत या विषय का उपादान नहीं होता"। भ्रान्तिमान् का अभेद ज्ञान किसी प्रकार के दोष के कारण होता है, फलतः वह अनाहार्य होता है। किसी व्यक्ति को (भौंरे को) अपनी कमी से ही मुख 'कमल' दिखलाई पड़ता है। अतिशयोक्ति का अभेद आहार्य होता है। भ्रान्तिमान् में व्यक्ति जानते हुए भी मुख को चन्द्रमा समझता है।

भ्रान्तिमान् एवं उल्लेख—भ्रान्तिमान् में भ्रम रहता है पर उल्लेख में नहीं। भ्रान्तिमान् का ज्ञान असत्य होता है तो उल्लेख का ज्ञान सत्य।

भ्रान्तिमान् एवं उत्प्रेक्षा—दोनों ही सादृश्यमूलक अलंकार हैं। इस कारण दोनों में प्रकृत में अप्रकृत का ज्ञान होता है। उत्प्रेक्षा में पदार्थ वास्तविक रूप का भी ज्ञान रहता है, पर भ्रान्तिमान् में वास्तविक रूप

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता। उत्प्रेक्षा में संभावना होती है अतः उसका ज्ञान अनिश्चित होता है किन्तु भ्रान्तिमान् में मिथ्याज्ञान निश्चित रहता है।

अपह्नुति

जहाँ प्रकृत अर्थात् उपमेय का निषेध (असत्य) कर उस पर उपमान की स्थापना की जाय वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है।

अपह्नुति का अर्थ है गोपन, छिपाना, वारण या निषेध। इसमें प्रकृत या उपमेय को छिपा कर अप्रकृत या उपमान का स्थापन किया जाता है। अर्थात् सच्ची बात को छिपाकर झूठी बात प्रकट की जाती है। अपह्नुति शब्द 'न्हुङ्' धातु से निष्पन्न है, जिसमें अप उपसर्ग है। अपह्नुति का मूलाधार है सत्य को छिपाकर मिथ्या का आरोप या स्थापन। यह सादृश्यगर्भ भेदाभेद आरोप-मूलक अलंकार है। अपह्नुति के मूल में सादृश्य होता है तथा सादृश्य के कारण ही इसमें एक पदार्थ का निषेध कर अन्य की स्थापना की जाती है।

इसमें प्रकृत का वास्तविक निषेध न होकर कविकल्पित होना चाहिए। यद्यपि इसमें गोपन-क्रिया का विशेष महत्त्व होता है फिर भी उसके द्वारा सादृश्य-भावना की ही सिद्धि होती है तथा निषेध या गोपन के आधार को ग्रहण कर सादृश्य की ही पुष्टि की जाती है। अपह्नुति अलंकार के मूल में सादृश्य के प्रश्न को लेकर आचार्यों में मतभेद भी दिखाई पड़ता है। दण्डी के अनुसार इसकी सादृश्यमूलकता अनिवार्य नहीं है। विद्वानों ने दण्डी के इस कथन की आलोचना कर अपह्नुति की सादृश्यमूलकता स्वीकार की है।

"प्रथम तो विना किसी सादृश्य के आधार के केवल एक वस्तु का निषेध करके अन्य की स्थापना चमत्कार की जनक नहीं होती और यदि इसमें थोड़ा-बहुत चमत्कार होता भी है तो उसे उन सादृश्यमूलक अलंकारों के अन्तर्गत रखना उचित नहीं जिनमें चमत्कार का प्रधान कारण सादृश्य का कोई स्वरूप होता है।" इसके प्रधान दो तत्त्व हैं—उपमेय का निषेध एवं उस पर उपमान का आरोप। CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अपह्नुति के भेद--दीक्षित ने अपह्नुति के छह प्रकारों का निरूपण किया है और वे ही प्रकार आज तक मान्य हैं।

१—शुद्धापह्नुति–जहाँ वास्तविक उपमेय का निषेध कर उपमान का आरोप किया जाय वहाँ शुद्धापह्नुति होती है—

क—चिबुक देख फिर चरण चूमने चला चित्त चिर चेरा।
ये दो होठ न थे राधे था एक फटा उर तेरा॥ द्वापर, गुप्तजी।

यहां होठ का निषेध कर फटे हुए हृदय के आरोप में शुद्धापह्नुति है।

ख—विमल व्योम में देव दिवाकर अग्नि चक्र से फिरते हैं।
किरण नहीं, ये पावक के कण जगतीतल पर गिरते हैं॥

यहां किरण का निषेध कर उस पावक-कण के आरोप में शुद्धापह्नुति हुई।

२—हेत्वपह्नुति—वास्तविक उपमेय का निषेध कर उपमान के आरोप करने में यदि हेतु की कल्पना की जाय तो हेत्वपह्नुति होगी।

स एव युक्तिपूर्वश्चेदुच्यते हेत्वपह्नुतिः।

उदाहरण—

ये नहिं फूल गुलाब के, दाहक हिय जु हमार।
बिनु घनस्याम अराम में, लागी दुसह दवारि॥ पद्माभरण—पद्माकर।

यहाँ गुलाब के फूल का निषेध कर आराम (बाग) में दावाग्नि की कल्पना करने में कारण की योजना की गयी है कि गुलाब के फूल शरीर को जलाने वाले नहीं होते।

३—पर्यस्तापह्नुति--जहां एक वस्तु के धर्म का निषेध अर्थात् उपमान के धर्म का निषेध कर अन्य वस्तु (उपमेय) में उसकी स्थापना की जाय तो वहां पर्यस्तापह्नुति होती है। पर्यस्त का अर्थ है उलटा। इसमें एक के धर्म को अन्य पर फेंक दिया जाता है।

उदाहरण—

क—होइ सुधाधर नाहिं यह, वदन सुधाधर ओप।

यहां चन्द्रमा के धर्म सुधाधरत्व का निषेध कर मुख में आरोपित किया गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—मधुशाला यह नहीं जहां पर मदिरा बेंची जाती है।
भेंट जहां पर मस्ती की मिलती वह मेरी मधुशाला ॥ बच्चन।

४—भ्रान्तापह्नुति—जब किसी को किसी वस्तु में अन्य वस्तु की भ्रान्ति हो जाय एवं उस भ्रम का निवारण सत्य बात कह कर किया जाय तो वहाँ भ्रान्तापह्नुति होती है।

उदाहरण—

बेसर-मोती दुति झलक, परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यों पट पोंछो जाय ॥ बिहारी।

यहाँ नायिका को नक-बेसर के मोती की झलक में अधर पर चूना लगने का भ्रम हुआ है। इस पर उसकी सखी वास्तविक बात कह कर भ्रम को मिटा देती है।

५—छेकापह्नुति—स्वयं कथित जहां अपनी गुप्त बात के प्रकट हो जाने पर मिथ्या साधन द्वारा उसे छिपाया जाय तो उसे छेकापह्नुति कहते हैं। छेक चतुर व्यक्ति को कहते हैं। इसमें चतुर व्यक्ति अपने रहस्य को तीसरे व्यक्ति से छिपाने के लिए ही मिथ्या वचन के द्वारा उसे छिपा लेता है।

उदाहरण—

करत अधर छत, पिय? नहीं, सखी सीत रितु बाइ ॥

नायिका अपनी अंतरंग सखी से अपने प्रियतम की बात करती हुई कहती है कि अधर पर छत या घाव करता है। इस पर अन्य सखी सुनकर कहती है कि क्या प्रिय अधरक्षत करता है? तब नायिका उसे छिपाने के लिए कहती है कि नहीं, शीत ऋतु की हवा।

६—कैतवापह्नुति—जहां कैतव, छल, मिस, व्याज आदि शब्दों के द्वारा उपमेय का निषेध किया जाय तो वहाँ कैतवापह्नुति होगी।

उदाहरण—

क—सावन की अंधी रजनी,
वारिद मिस रोती आयी ॥ हल्दीघाटी।

जल-वर्षा का निषेध कर अश्रु-वर्षा का आरोप मिस शब्द के द्वारा होने से यहाँ कैतवापह्नुति हुई।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—प्रिय, कलि कुसुम में आज, मधुरिमा मधु सुषमा सुविकास।
तुम्हारी रोम-रोम छबि व्याज छा गया मधुवन में मधुमास॥
गुञ्जन—पंत।

पर्यस्तापह्नुति, भ्रान्तापह्नुति एवं छेकापह्नुति नामक भेदों का खण्डन किया गया है क्योंकि इनमें अपह्नुति के लक्षण के विपरीत उपमान का निषेध कर उपमेय की स्थापना की गयी है। अतः इनमें अपह्नुति अलंकार का लक्षण घटित नहीं होता।

रूपक और अपह्नुति--रूपक और अपह्नुति दोनों में आरोप होता है किन्तु रूपक का आरोप निषेध-रहित होता है और अपह्नुति का निषेध-सहित। रूपक में उपमान का आरोप होता है और अपह्नुति में उपमान के आरोप के साथ-साथ उपमेय का निषेध।

छेकापह्नुति एवं वक्रोक्ति—वक्रोक्ति में दूसरे के कथन का दूसरा अर्थ कल्पित किया जाता है किन्तु छेकापह्नुति में अपनी उक्ति का।

उत्प्रेक्षा

१—जहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत की संभावना की जाय वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

उत्प्रेक्षा शब्द उत् + प्र + ईक्षा के योग से बना है जिसका अर्थ है बलपूर्वक देखना या उत्कटरूप से उपमान को देखना—उत्कटा प्रकृष्टस्य उपमानस्य ईक्षा ज्ञानमुत्प्रेक्षा—उद्योत पृ० ४५८।

यहाँ इसका अभिप्राय 'उच्चकोटि के पदार्थ की संभावना' करने से है तथा देखना संभावना का बोधक है। उपमा में उपमेय और उपमान में सादृश्य दिखलाया जाता है और रूपक में दोनों की एकरूपता होती है किन्तु उत्प्रेक्षा में उनके सादृश्य की संभावना की जाती है। संभावना सन्देह और निश्चय के बीच की स्थिति है—जैसे 'मुख मानो चन्द्रमा है' ऐसे कथन में। इस प्रकार उपमेय उपमान की संभावना या कल्पना को उत्प्रेक्षा कहते हैं। यह सादृश्य-मूलक अभेद प्रधान अलंकार है। अर्थात् इसमें उपमेय एवं उपमान में साम्य एवं अभेद होता है। कवि उपमेय में उपमान की कल्पना करते हुए दोनों में सादृश्य की ही स्थापना करता है। इस अलंकार में उपमेय गौण एवं उपमान

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

उत्कृष्ट या प्रधान दिखाई पड़ता है क्योंकि कवि बलपूर्वक उपमान के साथ उपमेय का साम्य स्थापित करता है। उपमेय में वे सारे गुण हों अथवा नहीं किन्तु कवि उनकी संभावना उपमान रूप में करता ही है। चूँकि अलंकार का प्राण है चमत्कार या सौन्दर्य अतः उत्प्रेक्षालंकार में काल्पनिक उपमान का वर्णन होना चाहिए। इस अलंकार में संभावना का प्राधान्य होता है और उत्प्रेक्षा शब्द इसी अर्थ का बोधक भी है। इसमें प्रकृत के स्थान पर अप्रकृत के प्रति कवि की मानसी वृत्ति अधिक आकृष्ट होती है और वह भावातिरेक की स्थिति में अप्रकृत के प्रति अपना चमत्कारपूर्ण आकर्षण प्रकट करता है। "यहाँ से उसके कवित्व का प्रधान विन्दु कमल की सम्भावना का होता है। सम्भावना अथवा मुख को कमल के रूप में उत्प्रेक्षित करने की यह मानसी वृत्ति साध्य अध्यवसाय है।" संभावना की स्थिति में दो में से एक पक्ष शिथिल एवं दूसरा दृढ़ हो जाता है। चूँकि उत्प्रेक्षालंकार में कवि-कल्पना उपमान पर टिकी रहती है अतः उसी का दृढ़ीकरण होता है, उपमेय का नहीं। कुछ आलंकारिक उत्प्रेक्षा के लिए यह आवश्यक मानते हैं कि इसमें उपमान कविकल्पनाप्रसूत हो पर इसमें संभावना मुख्य है। "अतः उपमान के कवि-कल्पित होते हुए भी यदि उपमेय की उसमें सम्भावना नहीं होती है तो वह उत्प्रेक्षा का उदाहरण नहीं हो सकता"।

उत्प्रेक्षालंकार में एक ही आधार में उपमेय एवं उपमान का बोध होने पर भी उनमें उपमान की उत्कट या उत्कृष्ट रूप में ही प्रतीति होती है, अतः उपमान का प्राधान्य निर्विवाद है। बालबोधिनीकार वामन झलकीकर ने तो संभावना को उत्कट कोटि का सन्देह कहा है। जिस संशय की दो कोटि के मध्य में एक कोटि उत्कट या उत्कृष्ट हो उसे संशयसंभावना कहते हैं।

उत्प्रेक्षा में संशय कल्पित होता है तथा उपमान (संभाव्य) या संभावना का पक्ष प्रवल होता है। इसमें उपमेय का भी ज्ञान होता है किन्तु उसका स्थान गौण होता है क्योंकि उसकी संभावना उपमान के ही रूप में की जाती है। जब संभावना चमत्कारपूर्ण या कविप्रतिभोत्थापित हो तो उत्प्रेक्षा अलंकार होगा, कोरी संभावना में अलंकारत्व नहीं होता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसमें स्वरूप, फल एवं हेतु की अन्य रूप में संभावना की जाती है तथा

उपमेय एवं उपमान दोनों ही शब्दतः कथित होते हैं, दोनों ही विद्यमान रहते हैं।

उदाहरण—

क—सोहत ओढ़े पीत-पट, स्याम सलोने गात।
मनो नील-मणि शैल पर, आतप पर्‌यौ प्रभात॥ विहारी।

यहाँ पीताम्बर-युक्त श्रीकृष्ण के श्याम शरीर की सम्भावना प्रभातकालीन किरणों से युक्त नील-मणि शैल के साथ की गयी है। पहले उत्प्रेक्षा का विषय कहा गया है और वाद में उसकी संभावना की गयी है।

ख—नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मधुर अधखिला अंग।
खिला हो ज्यों विजली का फूल, मेघ वन बीच गुलावी रंग॥
कामायनी।

नील परिधान से अलंकृत शरीर का पहले कथन कर बाद में मेघवन में विजली के फूल स्वरूप उपमान की संभावना का कथन किया गया है।

ग—वह देखो वन के अंतराल से निकले।
मानो दो तारे क्षितिज-जाल से निकले॥ साकेत।

यहाँ उत्प्रेक्षा का विषय (भरत और शत्रुघ्न) कथित नहीं है किन्तु उसकी संभावना दो तारों के रूप में की गयी है, उसका कथन किया गया है। अतः विषय का कथन किये विना ही उत्प्रेक्षा करने के कारण यहाँ अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा हुई।

२—हेतूत्प्रेक्षा—जहाँ अहेतु में हेतु की कल्पना की जाय वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती है। इसमें किसी पदार्थ का जो कारण नहीं है उसे भी कारण मान लिया जाता है।

इसके भी दो भेद होते हैं—सिद्धास्पदा और असिद्धास्पदा। आस्पद का अर्थ है आधार एवं सिद्ध का सत्य।

सिद्धास्पदा—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय सिद्ध या सत्य अथवा सम्भव हो वहाँ सिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह निकसे बैन।
याही ते मानहु किये बातनु को विधि नैन ॥ विहारी।

अपने मुख से निकले बैन को असत्य समझ कर उनका संग्रह नहीं किया। मानो इसी विचार से ब्रह्मा ने बातें करने के लिए आँखों को बनाया। यहाँ आँखों के निर्माण में जो कारण नहीं है उसे भी कारण मान लिया है, पर इसका आधार सत्य है, अतः यहाँ सिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा हुई।

असिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा—जहाँ उत्प्रेक्षा का आधार असत्य या असंभव अथवा असिद्ध हो वहाँ असिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा होती है।

उदाहरण—

क—वार-वार उस भीषण रव से कँपती धरणी देख विशेष।
मानो नील व्योम उतरा हो आलिंगन के हेतु अशेष ॥ कामायनी।

'यहाँ पर जल के रूप में आकाश के पृथ्वी पर आने का कारण पृथ्वी का काँपना कहा गया है, जो असिद्ध हेतु है।'

ख—भाल लाल बेंदी ललन, आखर रहे विराजि।
इन्दु-कला कुज में बसी, मनहु राहु-भय भाजि ॥ विहारी।

नायिका के भाल पर स्थित बेंदी में आखत (अक्षत, चावल) ऐसे शोभ रहे हैं मानो चन्द्र-किरण (इन्दुकला) राहु के भय से मंगल (कुज) में जाकर बसी हो।

यहाँ कारण का आधार असत्य या असंभव है।

३—फलोत्प्रेक्षा—जहाँ अफल में फल की संभावना की जाय अर्थात् जो वास्तविक फल न हो उसे भी फल मान लिया जाय, वहाँ फलोत्प्रेक्षा होगी।

इसके दो प्रकार होते हैं—सिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा एवं असिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा।

सिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा—जहाँ फल का आधार सिद्ध अर्थात् सम्भव हो वहाँ सिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

किये पीन कुच विधि मनो, लंक लचहिं के हेत ॥
वाल अधिक छबि लागि निज, नैनन अंजन देति ।
मैं जान्यो मो हनन कों, बानन बिष भरि लेति ॥
काव्य-निर्णय—दास ।

नायिका आँखों की शोभा बढ़ाने के लिए आँखों में अञ्जन लगाती है, इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो नायक को मारने के लिए वाणों में विष भर रही हो । यहाँ वाणों में विष भर कर मारने का फल संभव है ।

असिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा—जिस उत्प्रेक्षा में फलों का आधार असिद्ध या असंभव हो तो वहाँ असिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा होती है ।

उदाहरण—

उनको देख कौन रोया यों अन्तरिक्ष में बैठ अधीर ।
व्यस्त बरसने लगा अश्रुमय यह प्रालेय हलाहल नीर ॥ कामायनी।

यहाँ पशु-वध को देखकर उनके प्रति दयार्द्र होकर अंतरिक्ष से किसी के अश्रु बरसाने के वर्णन में असिद्ध फलोत्प्रेक्षा है । प्रलयकाल में तो अत्यधिक एवं भयंकर वर्षा होती ही है ।

हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा में अन्तर—जहाँ क्रिया किसी हेतु या कारण से कही गई हो तो वहाँ हेतूत्प्रेक्षा और जहाँ क्रिया का सम्बन्ध फल से हो तो फलोत्प्रेक्षा होती है या जब क्रिया से किसी फल की इच्छा प्रकट की जाय।

गम्योत्प्रेक्षा—जहां उत्प्रेक्षा के वाचक शब्दों (मनु, जनु, मानो) का अभाव हो तो वहाँ गम्योत्प्रेक्षा या प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा होती है ।

उदाहरण—

वह थी एक विशाल मोतियों की लड़ी ।
स्वर्ग कंठ से छूट धरा पर आ पड़ी ॥
सह न सकी भव-ताप अचानक गल गयी ।
हिम होकर भी द्रवित रही कल जल मयी ॥ गुप्तजी ।

सापह्नोत्प्रेक्षा—जहाँ निषेधपूर्वक उत्प्रेक्षा की जाती है वहाँ सापह्नोत्प्रेक्षा होती है । इसमें अपह्नुति सहित उत्प्रेक्षा होती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

नाहिन ये पावक प्रबल, लुवैं चलैं चहुँ पास।
मानहु बिरह बसंत के, ग्रीषम लेत उसास॥ बिहारी।

ग्रीष्म ऋतु में चलने वाली लू का निषेध कर वसन्त के विरह में ग्रीष्म का गरम साँस लेना निषेध सहित उत्प्रेक्षा है।

उपमा और उत्प्रेक्षा—उपमा में उपमेय और उपमान में समता दिखाई जाती है, जबकि उत्प्रेक्षा में प्रकृत में अप्रकृत की संभावना की जाती है। उपमा भेदाभेदप्रधान साधर्म्यमूलक अलंकार है और उत्प्रेक्षा अभेद या अध्यवसायमूलक।

उत्प्रेक्षा और सन्देह—उत्प्रेक्षा और सन्देह दोनों ही संशयमूलक अलंकार हैं। जहाँ सन्देह में चित्तवृत्ति का किसी एक पक्ष की ओर मोह नहीं होता वहां उत्प्रेक्षा में उपमान के प्रति झुकाव होता है। सन्देह में दोनों (ज्ञान के) पक्ष (उपमेय एवं उपमान के) समान होते हैं किन्तु उत्प्रेक्षा में उपमान उत्कट या प्रबल होता है।

रूपक और उत्प्रेक्षा—देखिये रूपक—

उत्प्रेक्षा और भ्रान्तिमान्—दे० भ्रान्तिमान्।

उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति—दोनों ही अध्यवसानमूलक अलंकार हैं। अतिशयोक्ति में विषय साध्य होता है और उत्प्रेक्षा में सिद्ध। उसमें विषयी विषय का निगरण कर लेता है फलतः विषय का शब्दतः कथन नहीं होता। पर उत्प्रेक्षा में विषय एवं विषयी दोनों का ही स्वशब्दतः उपादान होता है। उत्प्रेक्षा में सन्देह तथा अतिशयोक्ति की मध्यावस्था होती है जिसमें मनःस्थिति का शनैः-शनैः उपमान की ओर झुकाव होता है किन्तु अतिशयोक्ति में चित्तवृत्ति पूर्णरूपेण उपमान की ओर झुक जाती है और उपमेय उपमान में ही समा जाता है। उत्प्रेक्षा में कुछ अंश तक अनिश्चयता होती है पर अतिशयोक्ति में पूर्ण निश्चय होता है।

अतिशयोक्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जब उपमान के द्वारा उपमेय का ज्ञान हो या उपमान उपमेय का

निगरण कर उसके साथ अभेद-स्थापन करे तो वहां अतिशयोक्ति अलंकार होगा।

अतिशयोक्ति में 'अतिशय' और 'उक्ति' दो शब्द हैं जिसका अर्थ है अतिशय कथन। इस अलंकार में किसी कथन को बढ़ा-चढ़ाकर या लोकसीमा का उल्लंघन कर कहा जाता है। इसमें उपमान उपमेय का निगरण कर जाता है या निगल जाता है। अतियशोक्ति में उपमान के द्वारा ही उपमेय का ज्ञान होता है। उपमान के साथ उपमेय का अभेदत्व या अभिन्नता ही अतिशयोक्ति अलंकार में अतिशय कथन है। जिस प्रकार निगरण की गयी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती और निगरण करने वाले का ही अस्तित्व दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार अतिशयोक्ति अलंकार में उपमान ही उपमान रह जाता है और उपमेय की सत्ता उसी में विलीन हो जाती है। किसी भी विषय का लोकातीत वर्णन करने से उसमें अधिक चमत्काराधान होता है। इसे ही डॉ० नगेन्द्र ने 'मन का विस्तार' माना है।

अतिशयोक्ति सादृश्यगर्भ अभेदप्रधान अध्यवसानमूलक अर्थालंकार है। इसमें सादृश्य या समानता चरम सीमा पर पहुँच जाती है क्योंकि कवि दो पदार्थों में साम्य प्रदर्शित करते हुए अपनी मानसी वृत्ति को एक पर ही इस प्रकार स्थित कर देता है कि दूसरी सर्वथा लुप्त हो जाती है या कवि की मनःस्थिति उपमान पर ही स्थिर रह जाती है और उपमेय उसकी आँखों के सामने से ओझल हो जाता है। जब कवि अपनी मनःस्थिति को उपमान पर टिका देता है तो उसमें आतिशय्य का चरम विकास दिखाई पड़ने लगता है अतः उसमें (उपमान में) लोकातिक्रान्त गोचरता होने लगती है। अतः इसमें समानता का तत्त्व गौण पड़ जाता है और अतिशयता की ही प्रधानता हो जाती है।

इस अलंकार में कवि के मन का विस्तार सीमा का अतिक्रमण कर जाता है, अतः ऐसे वर्णन के द्वारा उसे अपूर्व परितोष एवं मानसिक परितृप्ति होती है। इस अलंकार में समस्त लौकिक सीमाओं को तोड़कर कल्पना-शक्ति का पूर्णतः उपयोग करने का अवसर पाता है तथा लोक-विरुद्ध एवं लोकातीत तथ्यों का निरूपण कर इसमें कौतूहल का अधिक भाव

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भर देता है। जैसे लोक में कारण के पश्चात् कार्य का वर्णन होता है और यही तथ्य लोकसिद्ध एवं संगत भी है पर कवि अत्यन्तातिशयोक्ति नामक अतिशयोक्ति के भेद में कार्य की पूर्वभाविता एवं कारण की परभाविता का वर्णन कर लोकविरुद्ध कथन करता है। वस्तुतः उसका उद्देश्य वर्णन के द्वारा कौतूहल का ही भाव जगाकर चमत्कारोत्पत्ति करना होता है। उदाहरण के लिए कहा जाय कि गज की पुकार सुनाई पड़ने के पूर्व ही भगवान् ने उसका उद्धार कर दिया। अर्थात् वे इतनी तेजी के साथ गज के पास चले कि बिजली भी चकित हो गयी और आधे मार्ग को तै कर लेने के बाद गज की पुकार सुनाई पड़ी तथा जब वे उसका उद्धार कर लौटने लगे तो रास्ते में पक्षिराज गरुड़ मिले। यहाँ गज की पुकार सुनाई पड़ने के पूर्व ही उसके उद्धार के वर्णन में अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार है। यह कथन लौकिक तथ्य का अतिक्रमण करने वाला है, अतः इसमें कौतूहल का आधिक्य है। लोक में पुकार सुनने पर ही किसी का उद्धार सम्भव है पर कवि ने यहाँ पुकार सुनने के पूर्व ही उद्धार का वर्णन कर लोकसीमा का उल्लङ्घन कर दिया है।

धाये उठि बार न उवारन में लाई रञ्च,
चञ्चलाहू चकित रही है बेग साधे पै।
आवत वितुण्ड की पुकार मग आधे मिली
लौटत मिल्यौ तौ पच्छिराज मग आधे पै॥

दण्डी—दण्डी ने अपने लक्षण में लोक-सीमोल्लंघन की ही बात कही है। इनके अनुसार जब लोक-मर्यादा का अतिक्रमण या उल्लंघन कर प्रस्तुत पदार्थ के वर्णन की इच्छा की जाय तो वहाँ अतिशयोक्ति होगी।

उद्भट—उद्भट ने भामह के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है। इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने इसके चार प्रकारों का उल्लेख किया—भेद में अभेद, अभेद में भेद, संभाव्यमानार्थ निबन्धना तथा कार्य और कारण के पौर्वापर्य विपर्यय का कथन। इसके भेदों का सर्वप्रथम निरूपण करने का श्रेय उद्भट को ही है।

वामन—प्राचीन आचार्यों में वामन के लक्षण में कुछ भिन्नता दिखाई पड़ती है। इन्होंने संभाव्यधर्म एवं उसके उत्कर्ष की कल्पना को अतिशयोक्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कहा है। यहां लोकातिक्रान्त-गोचरता को गौण एवं संभाव्य की कल्पना
अधिक बल या प्राधान्य सिद्ध करते हुए नवीन विचार प्रस्तुत किया गया है

मम्मट—अतिशयोक्ति के स्वरूप विकास में मम्मट का महत्त्वपूर्ण यो
है। इन्होंने इसे सर्वातिशायित्व एवं सर्वत्र व्यापकत्व से हटाकर निश्चि
सीमा में निबद्ध किया। इनके अनुसार उपमान द्वारा उपमेय के निगर
प्रस्तुत के अन्य रूप से वर्णन, तथा यदि के समानार्थक शब्द लगा
कल्पना करने और कार्यकारण के पौर्वापर्य-विपर्यय में अतिशयोक्ति होती है
यद्यपि इन्होंने अतिशयोक्ति का कोई सामान्य लक्षण नहीं दिया तथापि इ
चार तत्त्वों का निरूपण कर इसके विकास में नया मोड़ ला दिया। मम्मट द्व
'निगीर्याध्यवसान' का प्रयोग नवीन भावधारा या परिवर्त्तन का सूचक
यहां अध्यवसाय की भावना में अतिशयोक्ति की सादृश्यमूलकता सिद्ध की ग
है पर कालान्तर में अध्यवसाय का क्षेत्र उपमानोपमेय की सीमा से हट
एक वस्तु के द्वारा अन्य वस्तु के निगरण के रूप में स्थिर हुआ।

(१) रूपकातिशयोक्ति, (२) भेदकातिशयोक्ति, (३) संबंधातिशयो
(४) असंबंधातिशयोक्ति, (५) अक्रमातिशयोक्ति, (६) चपलातिशयो
तथा (७) अत्यन्तातिशयोक्ति।

१—रूपकातिशयोक्ति—जहां उपमान के द्वारा उपमेय का ज्ञान हो
रूपकातिशयोक्ति होती है। यहां उपमान उपमेय का निगरण कर उ
साथ अभेद स्थापित करता है। यहां पाठकों को उपमान के आधार पर
उपमेय की कल्पना करनी पड़ती है। इस अलंकार में कवि काव्यशास्त्रीय
कविसमय सम्बन्धी विभिन्न परम्पराओं के आधार पर विषय का वर्णन क
है। रूपकातिशयोक्ति में वस्तुविशेष के प्रति कवि की सौन्दर्य-भावना का
उन्मेष एवं उपमान के प्रति अथवा अप्रस्तुतविधान के प्रति उसकी स
अनुभूति एवं तीव्रानुराग का पता चलता है जिसमें उसकी भावना उपमा
केन्द्रित होकर उपमेय की ओर पूर्णतः ओझल हो जाती है।

उदाहरण—

बांधा था विधु को किसने, इन काली जंजीरों से।
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से॥ 'प्रसाद'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ मोतियों से भरी हुई प्रिया की मांग का कवि ने वर्णन किया है। विधु या चन्द्र से मुख का एवं काली जंजीरों से केश का मणिवाले फणियों से मोती भरी मांग का ज्ञान होता है।

२—भेदकातिशयोक्ति—जहाँ उपमेय में उपमान से अभेद सम्बन्ध होने पर भी भेद दिखाया जाय वहाँ भेदकातिशयोक्ति होगी। इसमें दो पदार्थों में अभिन्नता के होने पर भी कवि द्वारा भेदक तत्त्व या हेतु प्रस्तुत कर दिये जाते हैं जिससे अभेद में भी भेद दिखाई पड़ने लगता है।

उदाहरण—

अनियारे दीरघ नयनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरे कछू, जिहि वस होत सुजान॥ बिहारी।

यहाँ आँखों की विशेषता औरे 'चितवनि' कह कर बतलायी गयी है तथा औरे शब्द के द्वारा उपमेय को उपमान से भिन्न बताया गया है।

३—संबंधातिशयोक्ति—सम्बन्ध न रहने पर भी सम्बन्ध बताया जाय या अयोग्य में योग्यता दिखाई जाय तो वहां सम्बन्धातिशयोक्ति होगी। जिन पदार्थों में स्वाभाविक या सहज सम्बन्ध न हो उनमें भी सम्बन्ध दिखाकर कवि चमत्कार की सृष्टि करे तो सम्बन्धातिशयोक्ति होगी।

उदाहरण—

क—छाले परिबे के डरनि, सकै न हाथ छुवाय।
झिझकति हिय गुलाब के झँवाँ झँवावत पाय॥ बिहारी।

यहां गुलाब की झँवा से फफोले पड़ने के वर्णन में अयोग्यता में भी योग्यता प्रदर्शित की गयी है।

ख—फवि फहरैं अति उच्च निसाना। तिन महँ अटकत विबुध विमाना॥

४—असंबन्धातिशयोक्ति—जहां संबंध में असंबंध दिखाया जाय अर्थात् योग्य में अयोग्यता प्रदर्शित की जाय तो वहां असंबंधातिशयोक्ति होगी।

उदाहरण—

क—वह सजीव रचना थी युग की, पल में आकर झलकी।
नहीं समायी जड़ जंगम में, छवि उसकी जो छलकी॥
गुप्तजी—द्वापर।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

कृष्ण की छवि जड़ जंगम में समा सकती थी किन्तु उसके नहीं समाने
योग्य में अयोग्यता प्रदर्शित की गयी है।

ख—अति सुन्दर लखि सिय मुख तेरो।
आदर हम न करत ससि केरो॥

यहाँ चन्द्रमा में योग्यता होने पर भी अयोग्यता का वर्णन है।

५—अक्रमातिशयोक्ति—जहां कारण और कार्य का एक ही साथ वर्णन
किया जाय वहां अक्रमातिशयोक्ति होती है। इसमें कारण और कार्य विना क्रम
के अर्थात् एक ही साथ वर्णित होते हैं। नियमतः पहले कारण होता
तदुपरान्त कार्य की उत्पत्ति होती है, किन्तु अक्रमातिशयोक्ति में यह क्रम नहीं
होता। इसमें कारण और कार्य की पूर्णभाविता एवं परभाविता का विध्वं
देखा जाता है।

उदाहरण—

क—वानासन ते रावरे, वान विषम रघुनाथ।
दस सिर दस धड़ तें कढ़े दोऊ एक ही साथ॥

राम के धनुष से वाणों का एवं रावण के धड़ से सिरों का एक ही सा
निकलना, अक्रमातिशयोक्ति है।

ख—पृथ्वीराज उधर तुम पहुंचे, पाश इधर बढ़ आया।
तुम तो उधर बँधे पाशों में शाप इधर सिर छाया॥ 'सुधीन्द्र'।

६—चपलातिशयोक्ति—जहां कारण के ज्ञान मात्र से ही कार्य के होने
वर्णन हो तो वहाँ चपलातिशयोक्ति होगी। यहाँ कारण के देखने-सुनने से
कार्य के होने का वर्णन होता है।

उदाहरण—

क—उन हरकी हँसि कै इतै, इन सौंपी मुसुकाय।
नैन मिलत मन मिलि गए, दोऊ मिलवत गाय॥ विहारी।

नैन के मिलते ही मन के मिल जाने में यहाँ चपलातिशयोक्ति हुई।

ख—मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।
भुज-लता फँसा कर नर-तरु से झूले से झोंका खाती हूँ॥
—कामायनी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ उपचार से तुलना ज्ञान मात्र से ही कार्य होना है।

७—अत्यन्तातिशयोक्ति—जहाँ कारण के पूर्व कार्य का होना वर्णित हो वहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति होती है।

उदाहरण—

क—पिय-आगम सुनि पथिक मुख, उमग्यौ अङ्ग सनेह।
नख तें सिख लौं बाल की, भई चीकनी देह॥

यहाँ प्रिय-आगमन का समाचार पाते ही बाला के शरीर में स्नेह का उमड़ना कारण के पूर्व कार्य होने का कथन है।

ख—पहिलेई प्रभु आइ उबारयौ। पीछू गज हरिनाम पुकारयौ।

गज के हरि नाम पुकारने के पहले ही भगवान् के द्वारा उसकी रक्षा का होना, कारण से पूर्व कार्य का कथन है।

८—सापह्नवातिशयोक्ति—दीक्षित ने आठवें भेद का भी वर्णन किया है जिसमें अतिशयोक्ति अपह्नव या निषेध से युक्त हो।

रूपक और रूपकातिशयोक्ति—दोनों में समानता होने पर भी अन्तर है। दोनों ही अभेदप्रधान अलंकार हैं। इनमें अन्तर यह है कि जहां रूपक में तद्रूपता पायी जाती है वहां रूपकातिशयोक्ति में अध्यवसान होता है। रूपकातिशयोक्ति में उपमान उपमेय का निगरण कर लेता है और रूपक में उपमेय एवं उपमान दोनों का अभेद होता है। रूपक में उपमेयोपमान शब्दतः कथित होते हैं किन्तु रूपकातिशयोक्ति में केवल उपमान का ही कथन होता है, और उसके द्वारा ही उपमेय का ज्ञान होता है।

तुल्ययोगिता

जहां अनेक प्रस्तुतों (उपमेयों) अथवा अनेक अप्रस्तुतों (उपमानों) का एक ही धर्म कहा जाय वहां तुल्ययोगिता अलंकार होता है।

'तुल्ययोगिता' का अर्थ है तुल्य अर्थात् समान की योगिता या सन्बन्ध। इसका अर्थ यह हुआ कि अनेक उपमेय अथवा अनेक उपमानों में धर्मैक्य का होना। जहां उपमेय रहें वहां केवल उपमेय ही रहें, इसी प्रकार जहां उपमान हों वहाँ केवल उपमान ही रहें। इसमें समानों अर्थात् एक श्रेणी के पदार्थों का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्बन्ध दिखलाया जाता है। अतः प्रस्तुतों अथवा अप्रस्तुतों के एकधर्माभिसंबंध का दिखाया जाना ही तुल्ययोगिता अलंकार हुआ। जैसे 'संध्या होते ही कमल और सूर्य मलिन हो गए।' यहाँ कमल और सूर्य दोनों उपमान हैं। दोनों का एक ही धर्म है मलिन होना।

यह सादृश्यमूलक गम्यौपम्य आश्रय का पदार्थगत अलंकार है। इसमें एक ही वाक्य में अनेक पदार्थों का वर्णन कर कवि एकधर्माभिसम्बन्ध स्थापित करता है। ये पदार्थ या तो सभी प्रस्तुत होते हैं या सभी अप्रस्तुत तथा धर्म का केवल एक ही बार कथन किया जाता है। प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत के एक धर्म कथन करने में तुल्ययोगिता नहीं हो सकती क्योंकि वैसी स्थिति में तुल्ययोग खंडित हो जाता है।

तुल्ययोगिता और दीपक—दोनों में ही पदार्थों का एक ही धर्म कहा जाता है किन्तु दीपक में जहाँ प्रस्तुतों एवं अप्रस्तुतों का एक धर्म कहा जाता है वहाँ तुल्ययोगिता में प्रस्तुतों अथवा अप्रस्तुतों का समान धर्म। तुल्ययोगिता में या तो सभी पदार्थ प्रस्तुत होते हैं या अप्रस्तुत किन्तु दीपक में कुछ प्रस्तुत होते हैं और कुछ अप्रस्तुत। तुल्ययोगिता में तुल्यों या समानों का योग होता है पर दीपक में अतुल्यों का।

दीक्षित ने तीन भेदों का वर्णन किया—

क—प्रथम में प्रस्तुतों अथवा अप्रस्तुतों के एक धर्म का कथन होता है।

ख—द्वितीय में हिताहित या मित्र और शत्रु के प्रति समान व्यवहार का वर्णन किया जाता है। दीक्षित के पूर्व भोज ने हित और अनहित में एक ही व्यवहार के कारण तुल्ययोगिता का एक प्रकार स्वीकार किया है।

ग—तृतीय भेद में श्रेष्ठ गुण वाले पदार्थों के साथ साम्य स्थापन का वर्णन है। इस भेद का निरूपण पहले भोज ने ही किया था जिसे दीक्षित ने उनसे ही ग्रहण किया है।

इस प्रकार दीक्षित तक आकर इसके तीन भेदों की प्रतिष्ठा हुई।

१—प्रथम तुल्ययोगिता—अनेक उपमेयों अथवा अनेक उपमानों के एक धर्म-कथन करने में प्रथम तुल्ययोगिता होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क—अनेक उपमेयों की तुल्ययोगिता का उदाहरण—

अ—मानहु मुख दिखरावनी, दुलहिनि करि अनुराग।
सास सदन मन ललनहू, सौतिन दियो सुहाग ॥ विहारी।

यहाँ सास, ललन और सौतिन के लिए एक ही धर्म 'दियो' का प्रयोग किया गया है।

ब—विश्वदेव, सविता या पूषा, सोम मरुत चंचल पवमान।
वरुण आदि सब घूम रहे हैं, किसके शासन में अम्लान ॥
—कामायनी।

यहाँ विश्वदेव, सविता आदि का एक ही धर्म 'घूम रहे हैं' कथित है, अतः अनेक उपमेयों का एक धर्म कहने के कारण तुल्ययोगिता हुई।

ख—अनेक उपमानों का एक धर्म-कथन—

अ—मंद मंद जबतें भई, चंदमुखी तव चाल।
मन मलीन तबतें भये, मत्त मतंग, मराल ॥

यहाँ मतंग और मराल का एक ही धर्म 'मलीन' कहा गया है।

२—द्वितीय तुल्ययोगिता—जहाँ शत्रु और मित्र में एक ही प्रकार की वृत्ति दिखाई जाय वहां द्वितीय तुल्ययोगिता होती है।

उदाहरण—

क—इक पाषान प्रहार कर, इक सिंचन जल सेय।
धनि रसाल की रीति यह, फल दोउन को देय ॥

यहाँ रसाल द्वारा सींचने वाले तथा पत्थर मारने वाले को समान फल की प्राप्ति का वर्णन है। हित और अनहित में समान व्यवहार के कारण द्वितीय तुल्ययोगिता हुई।

ख—रामभाव अभिषेक समय जैसा रहा,
वन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा।
वर्षा हो या ग्रीष्म सिंधु रहता वही,
मर्यादा की सदा साक्षिणी है मही ॥ साकेत।

यहां वन और अभिषेक में समान भाव वर्णित है।

३—तृतीय तुल्ययोगिता—प्रस्तुत की उत्कृष्ट गुणवाले के साथ गणना करने में तृतीय तुल्ययोगिता होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण

क—कामधेनु अरु कामतरु, चिन्तामनि मन मानि।

चौथो तेरो सुजसहू, हैं मनसा के दानि ॥ अलंकारमंजरी पृ० २४७।

यहां यश को कामधेनु आदि मनोवांछित फल प्रदान करने वाली श्रेष्ठ वस्तुओं के साथ गणना कर उन्हीं के समान अभीष्ट फलदायक कहा गया है।

ख—प्रबल सुरेस रमेस महेसा।

सेस गनेसहु तुमहु नरेसा ॥ पद्माभरण पृ० ७५।

दीपक

जहां वर्ण्य (उपमेय) और अवर्ण्य (उपमान) का एक ही धर्म कथित हो वहां दीपक अलंकार होता है।

दीपक अलंकार की कल्पना 'दीपक न्याय' पर हुई है जिसका व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ है—'दीप इव दीपकम्। दीपयति प्रकाशयति इति दीपकः' अर्थात् जो प्रकाशित करे उसे दीपक कहते हैं। इसमें प्रस्तुत में स्थित साधारण धर्म अप्रस्तुत को भी प्रकाशित करता है या उसका उपकारक होता है। इसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक धर्म-संबंध दिखाया जाता है। जिस प्रकार दीपक का प्रकाश चारो ओर दिखाई पड़ता है उसी प्रकार गुण-साम्य के कारण दीपक अलंकार में भी उपमेय (प्रस्तुत) एवं उपमान (अप्रस्तुत) दोनों में धर्मैक्य का कथन होता है। जिस प्रकार प्रासाद में स्थित दीपक गली को भी प्रकाशित करता है उसी प्रकार प्रस्तुत में निविष्ट या अन्वित साधारण धर्म अप्रस्तुत के भी धर्म का बोधक होता है। यह अत्यन्त प्रसिद्ध अलंकार है जिसका विवेचन सभी आचार्यों ने किया है।

क—फल सों सोहत तीर्थ जल, जल से सोहत कूप।

रस से सोहत सुमन-दल, जल से सोहत भूप।

यहाँ भूप उपमेय तथा तीर्थ जल, कूप एवं सुमन दल उपमान हैं। सबों का एक ही धर्म है 'सोहत'। अतः उपमेय और उपमान के धर्म की एकता के वर्णन में यहां दीपक हुआ।

आवृत्ति दीपक—क्रियापदों की आवृत्ति में आवृत्ति दीपक होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसमें पद या अर्थ या दोनों की आवृत्ति होती है । इसी आधार पर इसके तीन भेद हैं—(१) पदावृत्ति (२) अर्थावृत्ति (३) पदार्थावृत्ति ।

१—पदावृत्ति—भिन्न-भिन्न अर्थ वाले पदों की आवृत्ति में पदावृत्ति दीपक होता है । इसमें एक ही क्रिया पद की आवृत्ति होती है ।

त्रिविधं दीपकावृत्तौ भवेदावृत्ति दीपकम् ॥ कुवलयानन्द ४९ ।

उदाहरण—घन बरसैं हैं री सखी, निसि बरसैं हैं देख । (अनुवाद)

२—अर्थावृत्ति—एक ही अर्थवाले भिन्न-भिन्न पदों की आवृत्ति में अर्थावृत्ति दीपक होता है ।

उदाहरण—

क—प्रान प्यारे-चित में निवास प्रान प्यारी रखै,
प्रान प्यारो बसत हिये में प्रान प्यारी के ।

यहाँ 'निवास करै' और 'बसत' दोनों का अर्थ रहना है तथा एक ही अर्थ वाले दो पदों की यहाँ आवृत्ति होने से अर्थावृत्ति हुई ।

३—पदार्थावृत्ति—पद और अर्थ दोनों की आवृत्ति में पदार्थावृत्ति दीपक होता है ।

उदाहरण—

क—भलो भलाइहिं पै लहहिं, लहहिं निचाइहिं नीच ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ॥

यहाँ 'लहहिं' और 'सराहिय' में पद और अर्थ दोनों की आवृत्ति हुई है ।

ख—तब इस घर में था तम छाया
था मातम छाया गम छाया । भ्रम छाया ॥ मधुशाला, बच्चन ।

यहाँ 'छाया' क्रिया पद की आवृत्ति है ।

कारक दीपक

जहाँ अनेक क्रियाओं का एक कारक हो वहाँ कारक दीपक होता है ।

जब अनेक कार्य का कर्त्ता एक व्यक्ति होता है तो वहाँ (इस स्थिति में) कारक दीपक होगा । इसका वर्णन मम्मट, विश्वनाथ एवं अप्पय दीक्षित ने किया है । प्रथम दो ने दीपक के भेद के रूप में एवं दीक्षित ने इसे स्वतंत्र अलंकार का रूप दिया ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

क—कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाय भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की तिया, बाँचति, धरति, समेट॥ विहारी।

प्रिय की पत्री का नायिका द्वारा चूमना, सिर चढ़ाना, हृदय से लगाना, बाँचना आदि अनेक क्रियाओं के कथन में यहाँ कारक दीपक हुआ।

ख—किन्तु शिशिर में ठंढी सासें, हाय कहाँ तक धारूँ।
तन जारूँ, मन जारूँ पर क्या मैं जीवन भी हारूँ॥ साकेत।

माला दीपक

यदि पूर्व-पूर्व पदार्थ के द्वारा उत्तरोत्तर पदार्थ का उपकार किया जाता है तो वहाँ माला दीपक अलंकार होता है।

माला दीपक के दो प्रधान तत्त्व हैं—अनेक वस्तुओं का एक ही गुण से सम्बद्ध होना तथा पूर्व वर्णित पदार्थ का उत्तर वर्णित पदार्थ का विशेषण होना।

माला दीपक में माला शब्द एक विशेष अर्थ का द्योतक होता है। इसका प्रयोग उसी अर्थ में नहीं होता जैसा कि मालोपमा या माला रूपक में होता है। यहाँ माला का अर्थ है शृङ्खला या रशना से। "प्रस्तुत अलंकार में परस्पर सापेक्ष पदार्थों का एक पदार्थ से सम्बन्ध रहता है और इनका यह सम्बन्ध एक गुण के कारण होता है।"

जिस प्रकार माला में अनेक पुष्प गुंफित होकर माला का रूप धारण करते हैं उसी प्रकार माला दीपक में भी एक गुण का अनेक पदार्थों के साथ तद्वत् सम्बन्ध होता है। जिस प्रकार एक दीपक के द्वारा अनेक पदार्थ प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार इस अलंकार में एक गुण अनेक वस्तुओं से सम्बद्ध होता है या उनके साथ गुण का सम्बन्ध कथन होता है। माला दीपक नाम की यही सार्थकता है।

एकावली और माला दीपक—दोनों में ही पूर्वस्थित पदार्थों के उत्तर स्थित पदार्थों के साथ सम्बन्ध का कथन किया जाता है। माला दीपक में पूर्व कथित पदार्थ उत्तर कथित पदार्थ का विशेषण रूप में आकर चमत्कारक होता है किन्तु एकावली का सौन्दर्य उत्तर स्थित पदार्थों का पूर्वकथित पदार्थों के विशेषण रूप में स्थित होने में होता है। पुनः माला दीपक में अनेक पदार्थों का धर्म के रूप में कथन किया जाता है जो कि एकावली में नहीं रहता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तरोत्तरस्य पूर्वं-पूर्वं प्रति उत्कर्षहेतुत्वे, एकावली। पूर्व-पूर्वस्य तु उत्तरोत्तरं प्रति उत्कर्षनिबन्धनत्वे मालादीपकम्। अलंकारसर्वस्व पृ० १५९।

उदाहरण—

क—जग की रुचि ब्रजबास, ब्रज की रुचि ब्रजचन्द हरि।
हरि रुचि बंशीदास, बंशी रुचि मन बाँधिवो॥ 'दास'।

यहाँ रुचि धर्म है जो उत्तरोत्तर अनेक पदार्थों से धर्म रूप में सम्बद्ध है।

ख—नभ में सुन्दर बिजली सी, बिजली में चपल चमक सी।
आँखों में काली पुतली, पुतली में श्याम झलक सी॥
प्रतिमा में सजीवता सी, बस गयी सुछवि आँखों में।
थी एक लकीर हृदय में, जो अलग रही लाखों में॥ 'आँसू'।

यहाँ अनेक पदार्थों का उत्तरोत्तर एक धर्म है। "वस गयी सुछवि आखों में"।

दीपक एकावलि मिलैं मालादीपक नाम।
काम-धाम तिय हिय भयौ तिय हिय को तू धाम॥

भाषाभूषण १३९।

प्रतिवस्तूपमा

जहाँ उपमेय एवं उपमान वाक्यों का एक ही साधारण धर्म भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा कथित हो तो वहाँ प्रतिवस्तूपमालंकार होगा।

प्रतिवस्तूपमा का अर्थ है प्रतिवस्तु + उपमा अर्थात् जहाँ प्रत्येक वाक्य (प्रतिवस्तु) के अर्थ में समानता या उपमा हो। इसका अभिप्राय प्रत्येक वाक्य की उपमा से है—प्रतिवस्तु प्रतिवाक्यार्थमुपमा साधारणधर्मोऽस्याम्। कुवलयानन्द पृ० ६४। तेन प्रतिवस्तुप्रतिवाक्यार्थमुपमा सामान्यं यस्यां सा प्रतिवस्तूपमा रत्नापणटीका पृ० ३१०।

यहाँ वस्तु वाक्यार्थ का वाचक है—वस्तु शब्दस्य वाक्यार्थवाचित्वे प्रतिवाक्यार्थमुपमा—अलंकारसर्वस्व पृ० ७१।

इसमें प्रत्येक वाक्य में समान धर्म पाया जाता है। प्रतिवस्तूपमा गम्यौपम्यमूलक अलंकार है। अर्थात् इसमें उपमा प्रतीयमान या व्यंग्य रूप से होती है। सादृश्य शब्दतः कथित नहीं होता। इसकी विशेषताएँ—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क—प्रतिवस्तूपमा में उपमेय एवं उपमान रूप दो वाक्य होते हैं।

ख—दोनों वाक्यों का एक ही साधारण धर्म होता है।

ग—वह साधारण धर्म भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा कथित होता है।

इस प्रकार इसमें उपमेय एवं उपमान वाक्यों के साधारण धर्म को शब्दान्तर से कथित किया जाता है।

घ—इसमें न केवल साधर्म्य के द्वारा अपितु वैधर्म्य से भी सादृश्य-निबंधन होता है।—न केवलमियं साधर्म्येण, यावद्वैधर्म्येणापि दृश्यते।

अलंकारसर्वस्व पृ० ७२।

जैसे कहा जाय कि 'नेत्र सुन्दर है, कमल मनोरम है'।

यहाँ नेत्र सुन्दर है, यह उपमेय वाक्य है तथा कमल मनोरम है यह उपमान वाक्य। दोनों वाक्यों का एक ही साधारण धर्म है सुन्दर जो शब्दान्तर से सुन्दर एवं मनोरम शब्दों द्वारा कथित है।

प्रतिवस्तूपमा अलंकार वाक्यगत अलंकार है। इसमें कवि का ध्यान मुख्यतः साधारण धर्म पर ही केन्द्रित होता है, उपमादि की भाँति उपमेय एवं उपमान या सादृश्य के विषयों पर नहीं। यहाँ साधारण धर्म का प्रकटीकरण एवं विस्तार भी होता है। इसके लिए सम्पूर्ण चित्र में सादृश्य-विधान आवश्यक है।

एक धर्म के कारण सदृश प्रतीत होने वाली वस्तुओं के वर्णन में उपमादि अलंकार होते हैं, अतः इनमें कवि का ध्यान मुख्यतः उन्हीं वस्तुओं पर टिका रहता है। प्रतिवस्तूपमा में कवि की दृष्टि साधारणधर्म पर केन्द्रित रहती है उपमेय एवं उपमान पर नहीं।

प्रतिवस्तूपमा में उपमेय वाक्य एवं उपमान वाक्यों में एक ही साधारण धर्म को पुनरुक्ति के भय से पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है। इसमें परस्पर भिन्न वाक्यों में सादृश्य का बोध होता है।

एक चित्र में साम्य एवं अन्य में वैषम्य होने पर इस अलंकार की सिद्धि सम्भव नहीं है।

प्रतिवस्तूपमा की तीन अवस्थाएँ या स्थितियाँ सूचित होती हैं—साधर्म्य के कारण, वैधर्म्य के कारण एवं मालारूप।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१—साधर्म्य की प्रतिवस्तूपमा—

उदाहरण—

क—राजत मुख मृदु बानि सों, लसत सुधा सों चन्द।
निर्झर सों नीको गिरि, मद सों भलो गयन्द॥

यहाँ 'मुख मृदु बानि सों राजत' उपमेय वाक्य है और 'लसत सुधा सों चन्द' उपमान वाक्य। दोनों का धर्म शोभना है जिसे 'लसत' एवं 'राजत' दो पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा कथित किया गया है। इसी प्रकार द्वितीय वाक्य में 'नीको' और 'भलो' साधारण धर्मों को भिन्न-भिन्न शब्दों से कहा गया है।

२—वैधर्म्य की प्रतिवस्तूपमा—

उदाहरण—

विज्ञ जनन को अमितश्रम, जानत हैं नर विज्ञ।
प्रसव वेदना दुसह सों, बाँझ न होंहिं अभिज्ञ॥

पहले वाक्य में 'जानत हैं' विधिरूप धर्म है और दूसरे वाक्य में 'अभिज्ञ' निषेधरूप। दोनों में विधि और निषेध रूप से एक ही साधारण धर्म का कथन किया गया है।

३—मालारूप—

उदाहरण—

बहत जु सर्पन को मलय, धारत काजर दीप।
चंदहु भजत कलंक कौ, राखहिं खलन महीप॥

यहाँ 'रखना' साधारण धर्म चार शब्दान्तर से कथित है, अतः यह माला रूप प्रतिवस्तूपमा का उदाहरण हुआ।

उपमा और प्रतिवस्तूपमा—दोनों ही अलंकार दो वस्तुओं के साधर्म्य पर आश्रित हैं। उपमा में साधारणधर्म का कथन एक बार ही होता है किन्तु प्रतिवस्तूपमा में दो बार। उपमा में शब्दान्तर से धर्म का कथन नहीं होता किन्तु प्रतिवस्तूपमा में शब्द-भेद से धर्म को निर्दिष्ट किया जाता है। प्रतिवस्तूपमा में दो वाक्य होते हैं और उपमा में एक वाक्य। उपमा में उपमा वाचक पदों के द्वारा सादृश्य कथित होता है पर प्रतिवस्तूपमा में वाचक शब्दों का कथन नहीं होता। अर्थात् प्रतिवस्तूपमा में इवादि वाचक पदों का उपादान नहीं होता वहाँ सादृश्य आर्थ या व्यंग्य होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दृष्टान्त

जहाँ उपमेय वाक्य एवं उपमान वाक्यों तथा उनके साधारण धर्मों में विम्बप्रतिविम्ब भाव हो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

दृष्टान्त का अर्थ है उदाहरण। इसमें किसी बात को कहकर उसकी पुष्टि के लिए तत्सदृश अन्य बात कही जाती है। इसमें दो वाक्य होते हैं—एक उपमेय वाक्य एवं दूसरा उपमान वाक्य। दोनों के साधारण धर्म भिन्न-भिन्न होते हैं, किन्तु दोनों में विम्ब-प्रतिविम्ब जान पड़ता है या एक प्रकार का सादृश्य दिखाई पड़ता है। इसमें वाचक या सादृश्यसूचक वाचक पदों का प्रयोग नहीं होता। भिन्न-भिन्न अर्थों का दो बार कथन करना विम्बप्रतिविम्ब भाव है। अर्थात् दो भिन्न-भिन्न शब्दों से साधारणधर्मों के पारस्परिक साम्य के कारण दो भिन्न पदार्थों में एकत्व या अभिन्नत्व-संस्थापन को विम्बप्रति-विम्बभाव कहते हैं।

दृष्टान्त का अर्थ निश्चय भी होता है। चूँकि इसमें वर्णनीय विषय का उदाहरण द्वारा निश्चय होता है, अतः इसे दृष्टान्त कहते हैं। प्रस्तुत वस्तु की असंदिग्ध प्रतीति को निश्चय कहते हैं—प्रस्तुतार्थस्य निःसन्देह प्रतीतिः—निश्चयः। विवरणकार।

दृष्टान्त साधर्म्य एवं वैधर्म्य दोनों ही स्थितियों में होता है। इसके दोनों ही वाक्य—उपमेय एवं उपमान वाक्य निरपेक्ष होते हैं। इसमें सादृश्य गम्य या व्यंग्य होता है, शाब्द नहीं।

क—सुखदुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन।
फिर घन में ओझल हो शशि, फिर शशि में ओझल हो घन॥ पंत।

यहाँ सुख-दुख एवं शशि और घन में विम्बप्रतिविम्ब भाव है।

ख—सुख, केवल सुख का वह संग्रह केन्द्रीभूत हुआ इतना।
छायापथ में नव तुषार का सघन मिलन होता जितना॥ कामायनी।

सुख का केन्द्रीभूत होना प्रथम उपमेय वाक्य है एवं आकाश में नव तुषार का सघन मिलन उपमान वाक्य। दोनों में औपम्य या सादृश्य का संस्थापन विना किसी सादृश्यसूचक पद के द्वारा होने से यहाँ दृष्टान्त अलंकार हुआ। यहाँ साधर्म्य का दृष्टान्त है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—वैधर्म्य का—जहाँ विम्बप्रतिविम्बभाव में वैधर्म्य हो वहाँ वैधर्म्यमूलक दृष्टान्त होता है।

प्रगट करहिं जिय प्रीति को, जे नर सुजन सुधार।
नहिं कबहूँ कुचला जु ह्वै, ताप मिटावन हार॥

यहाँ पूर्वार्द्ध वाक्य विधि रूप और उत्तरार्द्ध वाक्य निषेध-सूचक है।

प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त—प्रतिवस्तूपमा में शब्दान्तर से दोनों वाक्यों में एक ही साधारण धर्म का उपादान होता है; दृष्टान्त में साधारण धर्म दो होते हैं और परस्पर विम्बप्रतिविम्बभाव रहता है। प्रतिवस्तूपमा में धर्मों में समता होती है किन्तु दृष्टान्त में दोनों वाक्यों के धर्म भिन्न होते हैं। दृष्टान्त में बिम्बप्रतिबिम्बभाव की प्रधानता होती है और प्रतिवस्तूपमा में वस्तुप्रतिवस्तुभाव की।

दोनों ही अलंकारों में दो स्वतंत्र वाक्यों के विधान तथा साम्य का गम्य या व्यंग्य होना समान रूप से पाया जाता है पर इनमें उपर्युक्त कारणों से विभेदता दिखाई पड़ती है।

पंडितराज ने दोनों को ही एक ही अलंकार का भेद माना है। इनके अनुसार ये भिन्न अलंकार नहीं हैं।

यदि तु न तेषां दाक्षिण्यं तदैकस्यैवालङ्कारस्य द्वौ भेदौ प्रतिवस्तूपमा दृष्टान्तश्च। यच्चानयोः किञ्चिद्वैलक्षण्यं तत्प्रभेदताया एव साधकम्, नालङ्कारताया इति सुवचनम्॥ रसगंगाधर पृ० ४५५।

उदाहरण

दृष्टान्त से मिलता-जुलता 'उदाहरण' नामक अलंकार है, पर दोनों में सूक्ष्म अन्तर है। उदाहरण में कोई बात कह कर उसको स्पष्ट करने के लिए उसी प्रकार की कोई दूसरी बात कही जाती है। इसमें वाचक शब्द ज्यों, जैसे, इव आदि का प्रयोग होता है।

दृष्टान्त में 'वाचक शब्दों' का अभाव होता है, किन्तु उदाहरण में 'वाचक पद' होते हैं। दृष्टान्त अलंकार में कवि का मुख्य ध्यान उपमान वाक्य पर होता है किन्तु उदाहरण में उपमेय वाक्य पर।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

क—जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
　　ज्यों आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाहिं॥ विहारी।

यहाँ पूर्वार्द्ध में सामान्य कथन की योजना कर उत्तरार्द्ध में उसको स्पष्ट करने के लिए विशेष किया गया है। जिस भगवान् ने इस संसार का रहस्य बताया उस भगवान् को लोगों ने वैसे ही नहीं जाना जिस प्रकार आंखों से सभी पदार्थों को देखा जाता है किन्तु स्वयं आंखें नहीं देखी जातीं। 'ज्यों' वाचक पद के द्वारा उदाहरण की सिद्धि हुई है।

ख—बस गई एक बस्ती है, स्मृतियों की इसी हृदय में।
　　नक्षत्र-लोक फैला है, जैसे इस नील निलय में॥ 'आंसू'।

ग—ज्यों दिन ढलते संध्या विहग, प्रतिपल नीड़ाकुल होते।
　　वैसे ही तुम बिन ये चंचल, प्राण तृषातुर रोते॥ अंचल।

घ—ऊँचा पद पाकर भी खल नर, कभी न हो सकता गुणिवर।
　　जैसे ताल वृक्ष पर रहकर, काक न होता हंस बराबर॥
रामचरित उपाध्याय।

ङ—जीवन की अविराम साधना भर उत्साह खड़ी थी।
　　ज्यों प्रतिकूल पवन में तरणी गहरे लौट पड़ी थी॥ कामायनी।

निदर्शना

दो वाक्यों में परस्पर संभव या असंभव सम्बन्ध होने पर भी उपमा के द्वारा उनमें सम्बन्ध की कल्पना करना निदर्शना अलंकार है।

निदर्शना का अर्थ है दृष्टान्त या उदाहरण। अर्थात् उदाहरण देना ही निदर्शना है। इसके द्वारा निश्चित रूप में सादृश्य का अभिव्यंजन या प्रकटीकरण होता है। इस अलंकार में दो पदार्थों का संभव या असंभव सम्बन्ध उनमें बिम्बप्रतिबिम्बभाव की प्रतीति कराते हुए दोनों में सम्बन्ध की स्थापना करता है। निदर्शना में सर्वदा भिन्न दो वाक्यों में उदाहरण या दृष्टान्त देते हुए सादृश्य की स्थापना की जाती है। दो असंगत प्रतीत होने वाले वाक्यों में सादृश्य का नियोजन कर उनमें संगति की स्थापना करना ही निदर्शना

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अलंकार का उद्देश्य होता है। अर्थात् परस्पर असम्बद्ध पदार्थों में सादृश्य की योजना कर उनमें संगति स्थापित की जाती है।

इस अलंकार में दो ऐसे वाक्य होते हैं जिनमें सम्बन्ध या तो संभव होता है या असंभव तथा इनमें एक ही साथ दो बातें ऐसी कही जाती हैं जिनमें परस्पर संगति नहीं बैठती। अतः कवि उपमा के द्वारा उनमें सम्बन्ध की स्थापना करता हुआ उन्हें परस्पर सुसम्बद्ध बना देता है। यह गम्यौपम्यमूलक अलंकार है। इसमें औपम्य या सादृश्य वाच्य न होकर गम्य या प्रतीयमान या आर्थ होता है। इसके मूल में उपमा ही होती है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति औपम्यसूचक शब्दों द्वारा न होकर आर्थ या व्यंग्य होती है।

जैसे कहा जाय कि 'मूर्खों को कविता समझाना पृथ्वी पर सूर्य को उतारना है'। यहाँ दो वाक्य हैं—

क—मूर्खों को कविता समझाना।

ख—पृथ्वी पर सूर्य को उतारना।

यहाँ दोनों वाक्यों में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है तथा दोनों में सम्बन्ध असंभव दिखाई पड़ता है। पर उपमा के द्वारा दोनों (सादृश्य की कल्पना कर) में संगति स्थापित की जाय तो उसका व्यवधान दूर हो जायगा। ऐसी स्थिति में इस वाक्य का यह रूप होगा कि मूर्खों को कविता समझाना सूर्य को पृथ्वी पर उतारने की तरह असंभव है। यह उदाहरण निदर्शना का है।

निदर्शना के तीन भेद

१—प्रथम निदर्शना—इसके दो प्रकार होते हैं—वाक्यार्थ निबंधना एवं पदार्थ निबंधना।

उदाहरण—

क—स्वामिधर्म को छोड़कर, करहिं जे सुख की आस।
    ते नर मूरख पंख बिन, चाहत उड़न अकास॥

'स्वामिधर्म' को छोड़कर सुख की आशा करना पंख के बिना आकाश में उड़ने की तरह है। यहां दो असम्बद्ध वाक्यों में सादृश्य-स्थापन के कारण निदर्शना हुई।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—जे अस भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी॥
रामचरितमानस।

जो सहज प्राप्त होने वाली भक्ति को छोड़कर केवल ज्ञान के लिए श्रम करते हैं वे कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए अकवन (आक) की खोज करते हैं। यहां दोनों वाक्यों में कोई संगति नहीं दिखाई पड़ती किन्तु उपमा के द्वारा सादृश्य की कल्पना करने पर दोनों वाक्य परस्पर संगत हो जाते हैं। अर्थात् सर्वग्राह्य भक्ति को छोड़कर ज्ञान के लिए श्रम करना कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए आक को ढूँढ़ने की तरह व्यर्थ है।

२—द्वितीय निदर्शना—जब उपमेय के गुण को उपमान में एवं उपमान के गुण को उपमेय में स्थापित किया जाय तो वहां द्वितीय निदर्शना होगी।

उपमेय के गुण का उपमान में स्थापन—

उदाहरण—

तुव वचनन की मधुरता, रही सुधा महँ छाय।
चारुचमक चलनैन की, मीनन लई छिनाय॥

यहां नायिका के वचन की मधुरता का सुधा में एवं नेत्रों की चंचलता का मछलियों में स्थापन हुआ है।

उपमान के गुण का उपमेय में स्थापन—

उदाहरण—

रसवारे प्यारे परम, अरुनारे अति ऐन।
कमलन के गुन गहि रहे, नवनागरि तुव नैन॥

यहां कमलों के गुण को नायिका की आंखों का ग्रहण करना उपमान के गुण को उपमेय में स्थापित करना है।

३—तृतीय निदर्शना—जहां अपने सत् या असत् (अच्छे या बुरे) गुण या क्रिया द्वारा दूसरों को अच्छा या बुरा ज्ञान दिया जाय वहां तीसरी निदर्शना होती है। इसे सदसदर्थनिदर्शना भी कहते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सद्‌गुण के द्वारा दूसरों को सद्‌गुण देना—

उदाहरण—

नीचौ तरुवर ह्वै रह्यौ, यहै सिखावन देत।
चहिय बड़न में नम्रता, तब बड़पन छवि देत॥

वृक्ष का नीचा होकर बड़ों में विनम्रता की शिक्षा देने में सद्‌निदर्शना हुई।

असद्‌गुण के द्वारा असद्‌गुण का बोध—

उदाहरण—

पद कंदुक सिखवत सबहिं, सहि सहि लात अघात।
सारहीन संसार में, लातन मारे जात॥

पैर से ठोकर खाते हुए कंदुक (गेंद) यह शिक्षा देता है कि मूर्ख लोग लात से ही मारने योग्य हैं।

दृष्टान्त और निदर्शना—दोनों में ही वाक्यगत सादृश्य होता है तथा बिम्बप्रतिबिम्बभाव भी। दृष्टान्त में दो वाक्य परस्पर निरपेक्ष होते हैं, किन्तु निदर्शना में परस्पर (परतन्त्र) सापेक्ष। दृष्टान्त में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के धर्म भिन्न-भिन्न होते हैं एवं उनका उल्लेख नहीं किया जाता है पर निदर्शना में उनके धर्म एक ही होते हैं और उनका संकेत भी होता है। निदर्शना एक वाक्यगत भी होती है किन्तु दृष्टान्त में सदा दो वाक्य होते हैं। "निदर्शना में बिम्बप्रतिबिम्बभाव का बोध हो जाने पर अर्थ-बोध होता है जबकि दृष्टान्त में दोनों अर्थ पूर्णतया समझ में आ जाने के पश्चात् उनमें स्थित बिम्बप्रतिबिम्ब-भाव की प्रतीति होती है।" चन्द्रालोकसुधा पृ० ८९।

प्रतिवस्तूपमा और निदर्शना—दोनों ही गम्यौपम्यमूलक अलंकार हैं जिनमें दो वाक्यों की योजना की जाती है। दोनों में ही वाक्यार्थों के साधारण धर्म के कारण ही साम्य-स्थापन होता है।

प्रतिवस्तूपमा में वस्तुप्रतिवस्तुभाव का प्राधान्य होता है तो निदर्शना में बिम्बप्रतिबिम्बभाव का। प्रतिवस्तूपमा में साधारण धर्म एक होता है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति दो पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा होती है पर निदर्शना में बिम्बप्रतिबिम्बभाव के द्वारा सादृश्य नियोजन होता है। प्रतिवस्तूपमा में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपमेय एवं उपमान वाक्य परस्पर निरपेक्ष होते हैं अर्थात् एक दूसरे से पृथक् होकर भी वे संगत लगते हैं या उनके अर्थ में संगति दिखाई पड़ती है पर निदर्शना के दोनों ही वाक्य सापेक्ष या परतन्त्र होते हैं अर्थात् आपस में मिलने पर ही उनमें अर्थ की संगति स्थापित होती है।

व्यतिरेक

उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष-वर्णन में व्यतिरेक अलंकार होता है।

व्यतिरेक शब्द का अर्थ है विशेष प्रकार का (वि) अतिरेक या आधिक्य। अर्थात् गुण विशेष के कारण उपमान की अपेक्षा उपमेय में अधिक उत्कर्ष दिखाना। इसमें चमत्काराधान इसी अर्थवत्ता या उपमेयाधिक्य के कारण होता है। इस अलंकार में ही उपमेय के उत्कर्ष का निरूपण किया जाता है अन्य अलंकारों में तो उपमान का प्रकृत रूप सुरक्षित रहता है। व्यतिरेकालंकार के नियोजन में कवि का उद्देश्य उपमेय को ही ऊँचा उठाना रहता है। अर्थात् वह उपमेय के उत्कर्षाधिक्य का वर्णन करता है। इसमें भी उपमा के ही समान दो तत्त्व होते हैं—भेद और अभेद या साधर्म्य और वैधर्म्य। पर इसमें उपमा से भिन्नता इस अर्थ में होती है कि उपमा में उपर्युक्त दोनों हो तत्त्व तुल्य या समान होते हैं जब कि व्यतिरेक में वैधर्म्य तत्त्व का ही प्राधान्य होता है। व्यतिरेकगम्य औपम्यमूलक भेदप्रधान अलंकार है। इसमें सादृश्य या औपम्य वाच्य न होकर आर्थ होता है तथा उपमेयोपमान में तुल्यता न होकर भेद होता है। व्यतिरेक में उपमेय के उत्कर्ष एवं उपमान के अपकर्ष-वर्णन में कारण भी उपन्यस्त किये जाते हैं। इसमें कवि उपमेय के सौन्दर्यातिशायित्व पर ही दृष्टि डालता है। उपमान में सौन्दर्याधिक्य तो स्वाभाविक है पर व्यतिरेक अलंकार में कवि उपमेयगत सौन्दर्य के प्रति अधिक आकृष्ट होकर उपमान को उसके समक्ष अपकृष्ट सिद्ध करता है। "व्यतिरेक में कवि या वक्ता सौंदर्य के आकर उपमान पदार्थ से उपमेय की रमणीयता को अधिक कहकर, उसकी अद्वितीयता की अभिव्यक्ति करना चाहता है और यही इसकी अलंकारता है।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यतिरेक के मुख्य चार प्रकार हो जाते हैं—

१—उपमेय के उत्कर्ष एवं उपमान के अपकर्ष का कारण सहित वर्णन में प्रथम व्यतिरेक होता है।

उदाहरण—

सम सुवरन सुखमाकर, सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल, कनक कठोर॥ बरवै रामायण।

यहां सीता के अंग को सोने से बढ़कर बताने में कारण भी निर्दिष्ट है। उपमेय या सीता के अंग का उत्कर्ष कारण सहित वर्णित है—कोमलता एवं उपमान अर्थात् स्वर्ण के अपकर्ष का भी हेतु कथित है—कठोरता।

२—द्वितीय व्यतिरेक—उपमेय के उत्कर्ष का कारणसहित वर्णन में द्वितीय व्यतिरेक होता है—

उदाहरण—

क—नयनन नीरज में सखी, समता सब दरसात।
बंक विलोकन दृगन मैं, यह गुन अधिक दिखात॥

यहां नेत्रों में कमलों से गुणाधिक्य अर्थात् 'बंकविलोकन' का वर्णन कारण सहित है।

ख—ज्ञान-योग से हमें हमारा यही वियोग भला है।
जिसमें आकृति, प्रकृति, रूप, गुण, नाट्य, कवित्व कला है॥ गुप्तजी।

३—उपमान के अपकर्ष का कारणसहित वर्णन में तृतीय व्यतिरेक होगा।

उदाहरण—

जनम सिंधु पुनि बंधु विष दिन मलीन सकलंक।
सिय-मुख समता पाव किमि चन्द बापुरो रंक॥ रामायण।

यहां सीता के मुख से चन्द्रमा की हीनता का कारण सहित वर्णन है—सिन्धु में जन्म का लेना, कलंकी होना आदि।

४—जहां उपमेय के उत्कर्ष एवं उपमान के अपकर्ष का कारण नहीं कहा जाय वहां चतुर्थ व्यतिरेक होता है।

उदाहरण—

जिसके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे॥ रामायण।

यश और प्रताप के समक्ष चन्द्रमा एवं सूर्य को हीन कहा गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यतिरेक और प्रतीप—प्रतीप में उपमेय और उपमान के सम्बन्ध को उलट दिया जाता है अर्थात् उपमान को उपमेय बनाकर उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन किया जाता है। किन्तु व्यतिरेक में उपमान की अपेक्षा उपमेय में गुणाधिक्य दिखलाया जाता है तथा इसमें उपमान की भर्त्सना नहीं की जाती।

व्यतिरेक के अन्य उदाहरण—

क—सुख-भोग खोजने आये सब आये तुम करने सत्य खोज।
जग की मिट्टी के पुतले जन तुम आत्मा के मन के मनोज ॥ पंत।

यहां अन्य जनों से महात्मा गांधी में अलौकिक गुणों का आधिक्य दिखलाया गया है।

ख—शुष्क करीर कुञ्ज भी ब्रज का, नन्दन वन से अधिक कहीं।
यमुना-कूल कदम्ब वृक्ष के, कभी कल्पतरु तुल्य नहीं ॥
रामचरित उपाध्याय।

ग—रूपवती यह रम्भानारी, सुरपति तक को यह अति प्यारी।
रति, धृति भी दोनों बेचारी, इसे देख मन में हैं हारी ॥
महावीर प्रसाद द्विवेदी।

घ—उनके मन की सुघराई की उपमा उचित कहां पाऊँ।
मुकुलित नवल कुसुम कलिका सम कहते फिर फिर सकुचाऊँ ॥
श्रीधर पाठक।

सहोक्ति

जहां 'सह' अर्थबोधक शब्दों के द्वारा एक ही शब्द दो अर्थों का वाचक हो वहां सहोक्ति अलंकार होता है।

सहोक्ति का अर्थ है सह + उक्ति अर्थात् एक साथ कहना। इसमें सहभाव की उक्ति या साथ होने का कथन किया जाता है। सहभावस्योक्तिः सहोक्तिः—हेमचन्द्र। इसमें सह, साथ, संग आदि शब्दों के बल से एक शब्द अनेक अर्थों का बोधक होता है। सहोक्ति में एक अर्थ प्रधान होता है और दूसरा गौण किन्तु दोनों ही अर्थ एक ही क्रिया से अन्वित होते हैं। यदि दोनों क्रियाएं प्रधान हों तो वहां दीपक अलंकार हो जायगा। इसके बीजरूप में सदा अतिशयोक्ति पायी जाती है। सहार्थ-विवक्षा में चमत्कार होने पर ही सहोक्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का अलंकारत्व फलित होता है। इसमें औपम्य गम्य होता है अतः यह गम्यौपम्याश्रय अलंकार है। कभी-कभी सहवाचक जैसे साकं, सार्द्धं, समं, सजुः आदि के अभाव में भी सहार्थ के प्रकट होने पर या सहार्थ-विवक्षा में यह अलंकार होता है। सहोक्ति अलंकार में अनेक पदार्थों के साथ एक ही सहार्थ-बोधक धर्म या क्रिया का प्रयोग होता है।

सहोक्ति की आधारशिला व्याकरणिक प्रयोग है।

पाणिनि के सूत्र सहयुक्तेऽप्रधाने—अष्टाध्यायी २।३।१९। पर ही यह अलंकार अधिष्ठित है। इसका अर्थ यह हुआ कि सहार्थ या अप्रधान अर्थ के योग में तृतीया विभक्ति होती है। किसी वाक्य में एक क्रिया के साथ दो पदार्थों का सम्बन्ध होने पर जो सह अर्थ से सम्बद्ध होगा उसमें तृतीया विभक्ति होगी और वह गौण होगा, किन्तु जिसका सम्बन्ध प्रथमा विभक्ति से होगा वह प्रधान होगा। उदाहरण के लिए कहा जाय कि 'पुत्रेण सहागतः पिता' पुत्र के साथ पिता आये। यहाँ पुत्र एवं पिता दोनों का सम्बन्ध आगतः या आगमन क्रिया से है किन्तु पिता में प्रथमा विभक्ति है और पुत्र में तृतीया। अतः प्रथमा विभक्ति होने से पिता की प्रधानता है और तृतीया के कारण पुत्र गौण या अप्रधान है। सहोक्ति अलंकार में भी यही भाव होता है। वहाँ प्रायः उपमान गौण होता है और उपमेय प्रधान। उपमान तृतीयान्त शब्द का विशेषण होता है और उपमेय प्रथमान्त का विशेष्य। "साथ ही उक्त धर्म का प्रथमान्त के साथ शाब्द (शब्दबोध्य) सम्बन्ध होता है और तृतीयान्त के साथ सहार्थ के सामर्थ्य से (अर्थगम्य) सबन्ध होता है।" सहोक्ति में दो पदार्थों में से 'सह' शब्द के प्रयोग के कारण एक गौण हो जाता है और दूसरा प्रधान। अतः इसमें गुणप्रधानभाव 'सह' शब्द पर ही आश्रित होने से शाब्द होता है, आर्थ नहीं। पंडितराज ने सहोक्ति में चमत्कारपूर्ण सहार्थ सम्बन्ध पर बल दिया है।

उदाहरण—

क—सकुच संग कुच युग उठत, कुटिल भृकुटि दृग संग।
मन्मथ संग नितंब बढ़ि, भूषित तरुनी अंग॥

यहाँ बढ़ना क्रिया का, संग शब्द की सहायता से सबमें लगना सहोक्ति है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—निज पलक मेरी विकलता साथ ही,
अवनि से, उर से, मृगेक्षणि ने उठा।
एक पल निज शस्य श्यामल दृष्टि से,
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप सी॥ पंत।

यहाँ साथ ही शब्द के द्वारा नायिका की पलकों का पृथ्वी से और नायक की विकलता का हृदय से उठने के वर्णन में सहोक्ति है।

ग—छुटत मुठी सँग ही छुटी, लोक लाज कुल-चाल।
लगे दुहुन इक बेर ही, चलचित, नैन, गुलाल॥ विहारी।

विनोक्ति

जहाँ एक वस्तु के बिना दूसरी वस्तु शोभित या अशोभित वर्णित की जाय वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है।

विनोक्ति का अर्थ है विनार्थक शब्द का कथन या 'विना' शब्द के अर्थ की उक्ति। इसमें विना, रहित, हीन आदि शब्दों का प्रयोग होता है। किसी वस्तु के विना किसी वस्तु का शोभन या अशोभन होने पर दोनों ही स्थितियों में विनोक्ति अलंकार होता है।

विनोक्ति की कल्पना सहोक्ति से ही हुई है। यह सहोक्ति का प्रतिपक्षी अलंकार है। विना शब्द के अभाव में नञ्, निर्, वि आदि विनार्थक शब्दों के योग में भी विनोक्ति होती है। उदाहरण जैसे, अशोभन की विनोक्ति—

क—ससि विनु नीक न यामिनी, रस विन वचन न सोह।
छवि विनु रूप न राजही, कवि विनु सभा न सोह॥

यहाँ चन्द्रमा के बिना रात, रस के विना वाणी, शोभा के बिना रूप ए कवि के विना सभा की अशोभनता का वर्णन होने से अशोभन की विनोक्ति हुई

ख—विना दुख के सब सुख निस्सार,
विना आँसू के जीवन भार॥ पंत।

शोभन की विनोक्ति—

क—क्रोध बिना शोभित जती, लोभ बिना महिपाल।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहां क्रोध के बिना साधु और लोभ के बिना राजा का शोभित होना वर्णित है।

ख—बिन घन निर्मल सरद नभ, राजत है निज रूप।
अरु रागादिक द्वेष बिनु, मुनि-मन विमल अनूप॥

यहां मेघ के बिना शरद् कालीन नभ और रागादि द्वेषों के बिना मुनियों के मन को शोभित बताया गया है।

शोभन और अशोभन की विनोक्ति—

क्रोध बिना सोभित जती, लोभ बिना महिपाल।
गुन विहीन सोभित नहीं, कवि-बुध जन ज्यों माल॥

विनोक्ति की माला भी दिखाई पड़ती है—

देस बिन भूपति, दिनेस बिन पंकज, फनेस-
बिन-मनि, औ निसेस बिन जामिनी।
दीप बिन नेह, और सुगेह बिन संपत,
देह बिन देही, घन मेह बिन दामिनी॥
कविता सुछंद बिन, मीन जल वृन्द बिन,
मालती मलिंद बिन होति छबि छामिनी,
दास भगवंत बिन, संत अति व्याकुल,
बसंत बिन लतिका, सुकंत बिन कामिनी॥ दास।

समासोक्ति

यदि प्रस्तुत वृत्तान्त के द्वारा अप्रस्तुत वृत्तान्त का ज्ञान हो तो संक्षिप्त उक्ति के कारण समासोक्ति अलंकार होता है।

समासोक्ति का अर्थ है संक्षिप्त कथन। अर्थात् संक्षेप में ऐसे दो अर्थों का कथन जिसमें प्रकृत एवं अप्रकृत वृत्तान्त का निबन्धन किया जाय तो वहाँ समासोक्ति अलंकार होगा। यहाँ संक्षिप्त उक्ति से अभिप्राय है प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुत की व्यंजना से। अतः संक्षेप में प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों वृत्तान्तों की व्यंजना होने के कारण इसे समासोक्ति कहा गया है। समासोक्ति में प्रकृत से अप्रकृत की व्यंजना कहीं लिंगसाम्य तथा विशेषणसाम्य के कारण होती है और कभी श्लिष्ट शब्दों के द्वारा। [कवि प्रकृत पदार्थ का वर्णन करते समय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा विशेषणों का इस प्रकार प्रयोग करता है जिससे तत्क्षण अप्रकृत पदार्थ की भी प्रतीति होने लगती है। समासोक्ति में श्लिष्ट विशेषणों का प्रयोग होता है पर विशेष्य कभी भी श्लिष्ट नहीं होते। इसमें प्रस्तुत सदा वाच्य होता है और अप्रस्तुत व्यंग्य। प्रस्तुत से अप्रस्तुत की व्यंजना समान विशेषणों के ही कारण होती है। अर्थात् समासोक्ति में ऐसे विशेषणों का प्रयोग होता है जो प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों में ही प्रतिफलित होते हैं या लग जाते हैं। समासोक्ति की कल्पना या उद्भावना में विशेषण-वैचित्र्य का महत्त्वपूर्ण योग होता है। "कविजन अपने काव्यों में ऐसे विशेषणों का प्रयोग करते हैं जिनसे अप्रस्तुत की अभिव्यंजना हुआ करती है और प्रस्तुत का सौन्दर्य और भी अधिक निखरा करता है। समासोक्ति में अप्रस्तुत अभिव्यंग्य होकर प्रस्तुत की ही विशेषता बढ़ाया करता है।"

समासोक्ति अलंकार की प्रक्रिया पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि इसमें मुख्यतः गोपन की ही भावना निहित रहती है। कवि कुछ ऐसे गोपनीय विषयों का ही वर्णन करना चाहता है जो सामाजिक रूप से ग्राह्य नहीं होते हैं, अतः वह पाठकों के समक्ष प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत पर समान रूप से घटित होनेवाले विशेषणों का प्रयोग कर पाठक को संकेत मात्र कर देता है और पाठक भी उस संकेत से अवगत होकर उल्लसित हो जाता है।

जब किसी कथन में अभीष्ट अर्थ के अतिरिक्त शब्द संघटन के कारण अन्य अर्थ भी भासित होने लगे तो वैसी स्थिति में समासोक्ति अलंकार होगा। ऐसे कथनों में प्रायः श्लिष्ट पदों का प्रयोग होने से अन्य अर्थ की प्रतीति होने लगती है क्योंकि वैसे पद कवि-कथन में वहां सायास न आकर अनायास प्रकट होते हैं। किन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि केवल श्लिष्ट पदों के द्वारा ही इस अलंकार की सिद्धि हो, अश्लिष्ट पदों से भी यह अलंकार निष्पन्न होता है।

उदाहरण के लिए कहा जाय कि यह 'लाल रंग का चन्द्रमा पूर्व दिशा के मुख का चुम्बन करता है' तो यहां यह अर्थ भी स्फुट होगा कि प्रेमी या उपनायक प्रेमिका के मुख का चुम्बन करता है। यहाँ प्रथम या प्रस्तुत अर्थ चन्द्रमा से सम्बद्ध होता है किन्तु इससे अप्रस्तुत नायक का वृत्तान्त भी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ध्वनित होता है। समासोक्ति में विशेषण का प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत में अन्वित होना आवश्यक है।

समासोक्ति में प्रस्तुत से अप्रस्तुत की व्यंजना तीन प्रकार से संभव है—

१—समान विशेषणों से जब प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का विशेषण समान हो। अर्थात् ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया जाय जो प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों में लगें।

२—समान कार्य से—जहाँ प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत के कार्य एक प्रकारके हों।

३—लिंग साम्य से—जब प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत में लिंग की समानता हो।

१—उदाहरण—(समान विशेषण)

क—पूरन चन्द प्रकास प्रिय निरखि नैन सुख दैन।
प्रगट्यौ चारु चकोर के चित्त चौगुनो चैन।

'चन्द्र का पूर्ण प्रकाश देखकर चकोर के चित्त में चौगुना चैन प्रकट हुआ'। यह प्रस्तुत अर्थ है। इससे एक अप्रस्तुत अर्थ की भी प्रतीति होती है कि कोई नायिका नायक को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई।

ख—सिंधु सेज पर धरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी सी,
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए सी, ऐंठी सी॥

कामायनी।

२—समान कार्य—

मृगनैनी कुच सुघर सों, पट हटाय हठि देत।
मलयानिल तू धन्य अति, आलिंगन सुखदेत॥ श्लोक का अनुवाद।

३—लिंग-साम्य का उदाहरण—

क—जलज दृगी सरिता सरस, तब छवि छाया धारि।
तुमहिं लखति, घनश्याम तुम, सरसावहु रसधारि॥

यहाँ सरिता का घनश्याम (काले बादल) के प्रति प्रेमपूर्वक देखने का वर्णन प्रस्तुत है। इससे अप्रस्तुत अर्थ निकलता है कि हे कृष्ण तुम्हारी ओर कमलनैनी राधा प्रेमपूर्वक देख रही है। यहाँ राधा और नदी तथा बादल और कृष्ण क्रमशः स्त्रीलिंग और पुल्लिंग हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—जग के दुःख दैन्य-शयन पर यह बैठी रुग्णा बाला ।
रे कब से जाग रही वह आंसू की नीरव माला ॥
पीली पड़ निर्बल कोमल कृश देह-लता कुम्हलाई ।
विवसना लाज में लिपटी सांसों में शून्य समाई ॥ गुन्जन ।

यहाँ लिंग-साम्य से प्रस्तुत चाँदनी में अप्रस्तुत रुग्णा बाला के रूप का समारोप है ।

४—श्लिष्ट विशेषणों के द्वारा प्रस्तुत से अप्रस्तुत की प्रतीति—

क—तुही साँच द्विजराज है, तेरी कला प्रमान ।
तो पै सिव किरपा करी, जानत सकल जहान ॥ भूषण ॥

यहाँ कवि का इच्छित अर्थ चन्द्रमा की प्रशंसा है किन्तु श्लिष्ट विशेषणों के द्वारा (द्विजराज-चन्द्रमा और ब्राह्मण)(सिव-शंकर, शिवाजी) (कला-किरण, विद्या) अप्रस्तुत अर्थ जो कवि भूषण को अभिप्रेत है, उसका भी अर्थात् शिवाजी का ज्ञान हो जाता है ।

यहाँ प्रस्तुत अर्थ चन्द्रमा के प्रति है—हे चन्द्र तू ही सच्चा चन्द्रमा है (द्विजराज) तथा तेरी ही किरणें प्रमाणित हैं । यह बात सारा संसार जानता है कि तुम्हारे ऊपर कृपा करके शिवजी ने तुझे अपने मस्तक पर रखा है। अप्रस्तुत अर्थ इस प्रकार होगा—

हे भूषण कवि ! तू ही श्रेष्ठ ब्राह्मण है तथा तेरी विद्या का प्रमाण कि तुम्हारे ऊपर शिवाजी ने कृपा कर तुम्हें अपने दरबार में रखा है ।

समासोक्ति और श्लेष—जहाँ श्लेष में दोनों ही अर्थ प्रस्तुत एवं विवक्षित होते हैं वहाँ समासोक्ति में एक अर्थ प्रस्तुत होता है और दूसरा अप्रस्तुत। श्लेष में दोनों ही अर्थ वाच्य होते हैं किन्तु समासोक्ति में प्रस्तुत वाच्य होता है और अप्रस्तुत व्यंग्य । समासोक्ति में केवल विशेषण श्लिष्ट होते हैं तथा वे प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों ही पक्ष में अन्वित होते हैं पर श्लेष में विशेषण और विशेष्य दोनों ही श्लेष होते हैं ।

समासोक्ति और रूपक—रूपक में प्रकृत में अप्रकृत के स्वरूप का आरोप होता है किन्तु समासोक्ति में प्रकृत में अप्रकृत के कार्य का आरोप किया जाता है । रूपक में जहां दोनों—प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत वाच्य होते हैं वहाँ समासोक्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में प्रस्तुत वाच्य रहता है और अप्रस्तुत व्यंग्य। समासोक्ति में अप्रस्तुत का स्पष्ट रूप से संकेत नहीं होता, उसमें लिंग-साम्य अथवा विशेषण-साम्य के द्वारा अप्रस्तुत की प्रतीति होती है।

समासोक्ति और अप्रस्तुतप्रशंसा—दोनों परस्पर विपरीत अलंकार हैं। दोनों में ही दो अर्थों की व्यंजना होती है तथा एक अर्थ वाच्य होता है एवं दूसरा व्यंग्य। यही दोनों का साम्य है। दोनों में भेद यह है कि जहाँ समासोक्ति में प्रस्तुत अर्थ वाच्य एवं अप्रस्तुत अर्थ व्यंग्य होता है तो अप्रस्तुत-प्रशंसा में अप्रस्तुत अर्थ वाच्य एवं प्रस्तुत अर्थ व्यंग्य।

परिकर

जहाँ साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया जाय वहाँ परिकर अलंकार होता है।

परिकर का अर्थ है उपकरण या उत्कर्षक वस्तु[1]। इस अलंकार में अभिप्राय युक्त विशेषणों का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है जिससे कि कथन में उत्कर्षाधान हो जाय। जिस प्रकार उपकरणों के द्वारा किसी वस्तु की रमणीयता बढ़ जाती है उसी प्रकार साभिप्राय विशेषणों के प्रयोग से कथन में सौन्दर्य आ जाता है। यह सादृश्यगर्भ के गम्यौपम्याश्रय वर्ग के अन्तर्गत विशेषण वैचित्र्य सम्बन्धी अलंकार है। साभिप्राय विशेषण से अभिप्राय ऐसे विशेषण से है जो उस (सम्बद्ध) प्रकरण के उपयुक्त हो। इसका सौन्दर्य विशेषण वैचित्र्य पर ही आश्रित है तथा विशेषणों का साभिप्राय कथन प्रस्तुत अर्थ के ही अनुरूप होता है। इसमें तर्कात्मक वृत्ति की प्रधानता दिखाई पड़ती है। कवि अपने कथन की सिद्धि के लिए तर्क का आश्रय न लेकर विशेषणों की इस प्रकार योजना करता है जिससे उसके कथ्य का तर्कसम्मत समाधान उपस्थित हो सके। इसमें विशेषणों का वैचित्र्य या विशेष्यों का अधिकाधिक परिपोषण तभी संभव है जब कवि उनके माध्यम से अपने मन के विशेष अभिप्राय को अभिव्यक्त करना चाहे। अभिप्राय-युक्त विशेषणों के प्रयोग में वस्तुतः कवि का मनोभाव ही व्यंजित होता है किन्तु उसके द्वारा वाक्यार्थ का ही उपस्कार होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस अलंकार की विशेषता आशय-युक्त विशेषणों का प्रयोग कर चमत्काराधान करना है। इसमें व्यंग्यार्थ गौण होकर दो रूपों में दिखाई पड़ता है— वाच्यार्थ का उत्कर्षक गौण व्यंग्यार्थ एवं वाच्यसिद्ध्यङ्ग गौण व्यंग्यार्थ। प्रथम गौण व्यंग्यार्थ वाच्यवाचकभाव से निष्पन्न रमणीयार्थ का उपस्कारक या उत्कर्षक होता है एवं द्वितीय गौण व्यंग्यार्थ से अर्थात् व्यंग्यार्थ को वाच्यार्थ की ओर उन्मुख कर परिकर अलंकार की सिद्धि होती है।

उदाहरण—

क—कौन सुने कासों कहौं, सुरति विसारी नाह।
वदावदी जिय लेत हैं, ए बदरा बदराह॥ विहारी।

यहाँ 'वदराह' (कुमार्गगामी) विशेषण साभिप्राय है जो वादलों के लिए आया है। प्रियतम के वियोग में नायिका को 'वदराह' वादल शर्त बाँध कर (वदावदी) व्यथित कर रहे हैं।

ख—सुक्ति-जल की वह शीतल वाढ़, जगत की ज्वाला करती शान्त।
तिमिर का हरने को दुखभार, तेज अमिताभ अलौकिक कान्त॥

ग—हे सर्वमंगले! तुम महती, सबका दुख अपने पर सहती।
कल्याणमयी वाणी कहती, तुम क्षमा-निलय में हो रहती॥
कामायनी।

परिकरांकुर

जहाँ विशेष्य का अभिप्राय-युक्त वर्णन हो वहाँ परिकरांकुर अलंकार होता है।

परिकर में साभिप्राय विशेषण का प्रयोग होता है और इसमें साभिप्राय विशेष्य का। परिकरांकुर अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन एकावलीकार जयदेव ने किया है, तत्पश्चात् विद्याधर और अप्पय दीक्षित ने इसका उल्लेख किया। अन्य आचार्य विशेषतः नागेशभट्ट एवं विश्वेश्वर पण्डित इसे परिकर अलंकार से भिन्न नहीं मानते। नागेश के अनुसार परिकर अलंकार के अन्तर्गत साभिप्राय विशेषण के वर्णन में विशेष्य भी गृहीत हो जाता है अतः इसे स्वतंत्र अलंकार नहीं माना जा सकता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

क—बाल-बेलि सूखी सुखद, इहि रूखे-रुख घाँम।
फेरि डहडही कीजिये, सुरस सींचि घनस्याम ॥ बिहारी।

यहाँ 'घनस्याम' शब्द साभिप्राय विशेष्य है जिसका अर्थ है श्रीकृष्ण। बादल सूखी लताओं को सींचकर हरी-भरी (डहडही) कर देता है। कृष्ण भी प्रेम-रस से सींच कर नायिका को प्रसन्न कर दें। अतः 'घनश्याम' शब्द का अभिप्राययुक्त होने से यहां परिकरांकुर अलंकार हुआ।

ख—नटवर तेरा नाट्यबन्ध निज शान्ति-सन्धि निर्वाहे ॥ गुप्तजी।

ग—हे घनश्याम धधकते हीतल कर शीतल का दानी ॥ हिमतरंगिनी।

अर्थश्लेष

यदि स्वाभाविक एकार्थ प्रतिपादक शब्दों के द्वारा अनेक अर्थों का कथन किया जाय तो वहाँ अर्थश्लेष होता है।

अर्थश्लेष और शब्दश्लेष में अन्तर होता है। शब्दश्लेष में अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग होता है किन्तु अर्थश्लेष में एकार्थ प्रतिपादक या एकार्थक शब्द प्रयुक्त होते हैं। अर्थश्लेष में श्लेष अर्थाश्रित होता है और शब्दश्लेष में शब्दाश्रित। अर्थश्लेष में एक ही अर्थ के प्रतिपादक शब्दों से, एक वाक्य में, अनेक अर्थ का विधान किया जाता है। इसमें शब्द परिवृत्तिसहत्व होता है किन्तु शब्दश्लेष में शब्दपरिवर्त्तन संभव नहीं होता। अर्थश्लेष एवं शब्द-शक्त्युद्भव ध्वनि से यह भेद होता है कि श्लेष में दोनों ही अर्थ वाच्य होते हैं किन्तु शब्दशक्त्युद्भव ध्वनि में एक अर्थ वाच्य होता है और दूसरा व्यंग्य।

उदाहरण—

क—रंचहि सों ऊँचो चढ़े, रंचहिं सो नमि जाय।
तुला कोटि खल दुहुँन की, यहै रीति दिखलाय ॥ (श्लोकानुवाद)

ख—सगुन सभूषण सुभ सरस, सुचरन, सुपद, सराग।
इमि कविता अरु कामिनी, लहै जु सो बड़ भाग ॥

पूर्वार्द्ध में सगुण, सभूषण, सरस आदि एकार्थवाची विशेषणों के द्वारा कविता और कामिनी दोनों का वर्णन है। यदि इनके स्थान पर इनके पर्याय-वाची शब्द कोमल आदि रख दिए जाएँ तो भी अर्थ में भेद नहीं होता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अप्रस्तुत प्रशंसा

जहाँ अप्रस्तुत वृत्तान्त के वर्णन से प्रस्तुत वृत्तान्त की प्रतीति हो वहां अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होता है।

अप्रस्तुतप्रशंसा[1] का अर्थ है अप्रस्तुत का वर्णन करना। यहाँ प्रशंसा शब्द वर्णन का ही वाचक है स्तुति का बोधक नहीं। इसमें अप्रस्तुत वृत्तान्त के वर्णन द्वारा प्रस्तुत वृत्तान्त की व्यंजना होती है। अर्थात् प्रसंगगत बात को न कह कर अप्रासंगिक बात के वर्णन द्वारा प्रसंगगत बात का बोध कराया जाता है। इसमें वाच्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ सदा दो अर्थों का ज्ञान होता है तथा वाच्यार्थ अप्रस्तुतपरक होता है एवं व्यंग्यार्थ प्रस्तुत प्रधान। अप्रस्तुत-प्रसंसा में कवि का प्रधान उद्देश्य प्रस्तुत व्यंग्य को ही प्रकट करना या महत्त्व देना होता है। इस अलंकार में कवि अप्रस्तुत को वर्णन का विषय बना कर प्रस्तुत के सौन्दर्य का बोध कराता है तथा अप्रस्तुत का उद्देश्य प्रस्तुत की सौन्दर्य-वृद्धि कराना होता है।

उदाहरण के लिए यदि कहा जाय कि ब्रह्मा ने रति का मुख बनाते समय चन्द्रमा का सारभाग ग्रहण कर लिया है तो यहां अप्रस्तुतप्रशंसा होगी। इसमें प्रस्तुत कार्य है रति का सौन्दर्य-वर्णन, किन्तु कवि उसका उल्लेख न कर चन्द्रमा के सार भाग को ग्रहण करने का वर्णन करता है—जो कारण है। यहां कारण वाच्य है जिसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है किन्तु रति की सौन्दर्य-वृद्धि का उल्लेख नहीं है वह व्यंग्य है या उसकी प्रतीति होती है। चन्द्रमा का सार भाग ग्रहण करना अप्रस्तुत कारण है क्योंकि उसे किसी ने नहीं देखा है। इस कारण के वर्णन से रति के सौन्दर्य की प्रतीति होती है जो प्रस्तुत है और व्यंग्य भी है। इससे यह अर्थ प्रतीत होता है कि रति का मुख अत्यन्त सुन्दर है और चन्द्रमा उसके समक्ष तुच्छ है, क्योंकि उसके सौन्दर्य का सार तो रति के मुख में उपन्यस्त है। यहां अप्रस्तुत कारण के द्वारा प्रस्तुत कार्य की प्रतीति करायी गयी है, अतः अप्रस्तुतप्रसंसा अलंकार हुआ।

कोउ कह जब विधि रति मुख कीन्हा।
सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार में कवि को प्रस्तुत पदार्थ के व्यवहार की समता अन्य पदार्थ के व्यवहार के साथ दिखाई पड़ती है, अतः वह प्रस्तुत पदार्थ के व्यवहार को अभिव्यक्त करने के लिए अप्रस्तुत पदार्थ के व्यवहार को आश्रय बनाता है या अपने विषय या कथ्य को उसी पर आश्रित करता है। अप्रस्तुत पदार्थ के व्यवहार के माध्यम से प्रस्तुत पदार्थ के बोध से पाठक चमत्कृत हो जाता है और यहीं अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार की सिद्धि हो जाती है। अप्रस्तुत-प्रशंसा के मूल में सादृश्य ही रहता है, किन्तु वह वाच्य न होकर गम्य होता है। अप्रस्तुत के व्यवहार से प्रस्तुत की प्रतीति में दो पदार्थों के सादृश्य का ही भाव रहता है। दो वस्तुओं में समानता के कारण ही एक के व्यवहार से दूसरे की प्रतीति होती है।

पंडितराज ने बताया कि अप्रस्तुत व्यवहार से सादृश्यादि प्रकारों में से किसी एक प्रकार के द्वारा प्रस्तुत व्यवहार का वर्णन किया जाय तो वहां अप्रस्तुतप्रशंसा होगी।

अप्रस्तुत प्रशंसा के पांच भेद कहे गए हैं—कारणनिबंधना, कार्य-निबन्धना, विशेषनिबन्धना, सामान्यनिबन्धना एवं सारूप्यनिबन्धना।

कारणनिबन्धना—जब अप्रस्तुत कारण के वर्णन से प्रस्तुत कार्य की प्रतीति या व्यंजना हो तो कारणनिबन्धना होती है।

कोउ कह जब विधि रति मुख कीन्हा।
सारभाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इन्दु उर मांहीं।
तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं॥ रामायण।

यहां प्रस्तुत कार्य है रति के सुन्दर मुख का वर्णन किन्तु कवि ने अप्रस्तुत कारण (चन्द्रमा का सार भाग निकालना)।

कार्यनिबन्धना—जहां अप्रस्तुत कार्य के वर्णन से प्रस्तुत कारण की व्यंजना हो वहां कार्यनिबन्धना होती है।

क—गोपिन के अँसुवन भरी, सदा असोस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही, बगर-बगर के बार॥ विहारी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ गोपियों का विरह-वर्णन प्रस्तुत कारण है। कवि ने अप्रस्तुत कार्य (घर-घर गली-गली में आँसुओं की नदी का प्रवाहित होना) का वर्णन किया है जिससे गोपियों के विरहरूप प्रस्तुत कारण की प्रतीति होती है।

ख—राधिका को बदन सँवारि विधि धोये हाथ,
तातें भयो चन्द कर झारे भये तारे हैं ॥

राधा के मुख का सौन्दर्य प्रसंगप्राप्त विषय है। यहां उसका वर्णन न कर ब्रह्मा द्वारा राधिका के मुख का निर्माण कर हाथ धोकर झारने पर चन्द्रमा एवं तारों की सृष्टि (कार्य) का कथन किया गया है।

विशेषनिबन्धना—अप्रस्तुत विशेष के द्वारा प्रस्तुत सामान्य की व्यंजना होने पर विशेष निबन्धना होती है।

सेस सहसफन बिस धरैं, नहिं अभिमान अतंक।
वृश्चिक एकहिं बिन्दु पै, चलत उठाये डंक ॥

यहाँ शेष और वृश्चिक के विशेप वर्णन से अर्थात् अप्रस्तुत विशेष के कथन से यह प्रस्तुत सामान्य अर्थ निकलता है कि बड़े शक्तिशाली होने पर भी अभिमान नहीं करते और छोटे थोड़ी-सी शक्ति प्राप्त कर अभिमानी बन जाते हैं।

सामान्यनिबन्धना—अप्रस्तुत सामान्य के वर्णन द्वारा प्रस्तुत विशेष का बोध होना सामान्यनिबन्धना है।

सबल पुरुष सों निबल नर, बैर करत हठ जोर।
ते अपने मुख आपही, पियत हलाहल घोर ॥

निर्बल पुरुष का सबल से वैर करना अपने मुँह में स्वयं विष डालना है। इस प्रकार के अप्रस्तुत सामान्य कथन से किसी प्रस्तुत विशेष या विशिष्ट व्यक्ति को समझाया जा रहा है जो स्वयं निर्बल होकर बलवान से शत्रुता कर रहा है।

सारूप्यनिबंधना—जब अप्रस्तुत समान या तुल्यवस्तु के द्वारा प्रस्तुत समान या तुल्य वस्तु का बोध हो तो सामान्य-निबन्धना होगी।

माली आवत देखि कै, कलियाँ करी पुकार।
फूली-फूली चुनि लिये, कालि हमारी बार ॥ कबीर ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ माली और कली के द्वारा प्रत्येक मनुष्य को काल के आमन्त्रण का संदेश है।

रीतिकालीन आचार्यों ने इसे अन्योक्ति कहा है।

पर्यायोक्ति

अभीष्ट अर्थ को प्रकारान्तर से कहना ही पर्यायोक्ति अलंकार है। अर्थात् जब विवक्षित वस्तु का भंग्यन्तर या प्रकारान्तर से कथन या प्रतिपादन हो तो वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होगा।

पर्याय और उक्ति दो शब्दों के योग से पर्यायोक्ति शब्द बना है। पर्याय का अर्थ है प्रकार। इस अलंकार में वांछितार्थ या इच्छित बात का प्रकारान्तर या व्यंजना वृत्ति से कथन किया जाता है। अर्थात् अभीष्ट बात सीधे ढंग से न कहकर घुमा-फिरा कर इस प्रकार कही जाती है कि उसका श्रोता पर अधिक प्रभाव पड़ सके। इसमें किसी वस्तु का जिस ढंग से वर्णन करना हो उसे उस प्रकार से न कह कर भिन्न ढंग से कहा जाता है। अर्थात् अभीष्टार्थ को विशेष भंगी से व्यक्त करना ही पर्यायोक्ति है। इसमें किसी बहाने से भी कार्य-सम्पादित किया जाता है।

पर्यायोक्ति का मूलाधार गोपन ही है जिसे किसी भय से अथवा उलाहना या कौतूहल उत्पन्न करने के लिए ही प्रकारान्तर से व्यक्त किया जाता है। इस अलंकार में व्यंग्य अर्थ को वाच्य अर्थ के रूप में प्रकट किया जाता है। जब व्यंग्य रूप से विवक्षित अर्थ वाच्य रूप में ही प्रतिपादित किया जाय तो वहाँ पर्यायोक्ति का सौन्दर्य दिखाई पड़ेगा। इसमें वाच्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ दो अर्थ होते हैं किन्तु दोनों ही प्रस्तुत होते हैं। जब व्यंग्य अर्थ को उससे भिन्न शैली या वाच्य अर्थ के रूप में प्रकट किया जाय तो वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होगा। इसमें किसी व्याज से भी इष्ट-साधन का वर्णन होता है।

पर्यायोक्ति में वाच्य या विवक्षित अर्थ का व्यंजना वृत्ति द्वारा कथन किया जाता है। प्रकारान्तर का अभिप्राय व्यंजना वृत्ति से ही है। इसमें व्यंग्य अर्थ अत्यन्त स्फुट या प्रकट होता है तथा वह वाच्यार्थ की भाँति चमत्कारक नहीं होता। व्यंग्यार्थ का उक्तिवैचित्र्य की भाँति चमत्कारक न होने के कारण इसमें चित्रकाव्य की स्थिति मानी जायगी, ध्वनि या गुणीभूतव्यंग्य की नहीं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पर्यायोक्ति के दो भेद हैं—१ विवक्षितार्थ का प्रकारान्तर से या घुमा फिरा कर कथन—२ किसी सुन्दर व्याज से अभीष्ट की सिद्धि—

विवक्षितार्थ का प्रकारान्तर से कथन—

टुनहाई सब टोल में रही जु सौति कहाय।
सु त्यौं ऐंचि प्यौ आपु त्यों, करौ अदोखिल आय ॥ बिहारी।

यहाँ सखी द्वारा नायिका के सौन्दर्याधिक्य का वर्णन है। वह बता रही है कि तुम अपनी सौत से अधिक सुन्दर हो। इसी बात को सीधे ढंग से न कह कर प्रकारान्तर से कहा गया है। इस टोले में तुम्हारी सौत टोना (जादू) करने वाली (टुनहाई) मानी जाती थी। अधिक सुन्दर होने के कारण वह सभी लोगों को अपनी ओर आसक्त कर लेती थी पर तूने (अपने) प्रिय को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे दोषमुक्त कर दिया। यहां कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि तुम्हारी सौत ने सौन्दर्याधिक्य के कारण तुम्हारे पति को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था किन्तु तूने अपने प्रिय को वशवर्ती बनाकर उस पर विजय प्राप्त कर ली। तुम उससे अधिक सुन्दर हो यही कवि का विवक्षितार्थ है, किन्तु उसे वह प्रकारान्तर से कहता है कि तूने टोना करने वाली अपनी सौत को कलंक-मुक्त (अदोखिल) कर दिया। यहाँ प्रकारान्तर के कथन में अधिक चमत्कार है।

किसी बहाने या व्याज से इच्छित कार्य को सिद्ध करने या साधने में पर्यायोक्ति का दूसरा भेद होता है—

क—फेरि कछुक करि पौंरिते, फिरि चितई मुसुक्याय।
आई जामन लेन तिय, नेहै गई जमाय ॥

जामन लेने के बहाने प्रेम उत्पन्न कर नायिका का चली जाना—बहाने से कार्य की सिद्धि है।

ख—नाथ ! लखन पुर देखन चहहीं। प्रभु सँकोच उर प्रकट न कहहीं।
जो राउर अनुसासन पाऊँ। नगर दिखाय तुरत लै आऊँ ॥ रामायण।

यहां रामचन्द्र जी जनकपुर देखने की अपनी इच्छा को लक्ष्मण के बहाने प्रकट कर रहे हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पर्यायोक्ति और अप्रस्तुत प्रशंसा—पर्यायोक्ति में वाच्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ दोनों ही प्रस्तुत होते हैं किन्तु अप्रस्तुत प्रशंसा में वाच्य अर्थ प्रस्तुत होता है और व्यंग्य अर्थ अप्रस्तुत होता है।

चन्द्रिकाकार ने पर्यायोक्ति के दो में से कोई एक भेद में भी इसका सामान्य लक्षण माना है।

व्याजस्तुति

यदि स्तुति के वहाने निन्दा और निन्दा के वहाने स्तुति प्रकट हो तो व्याजस्तुति अलंकार होता है।

व्याजस्तुति का अर्थ है वहाने से प्रशंसा करना। इसमें व्याज का अर्थ है वहाना या छल एवं स्तुति प्रशंसा का वोधक है। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ छल पूर्वक या वहाने से स्तुति। इसमें निन्दा के वहाने स्तुति की जाती है अतः इसे व्याजस्तुति कहते हैं। व्याजस्तुति अलंकार में स्तुति के वहाने निन्दा एवं निन्दा के वहाने स्तुति होती है। इसके दो तत्त्व हैं—स्तुतिपर्यवसायिनी निन्दा एवं निन्दा मुखेन स्तुति। व्याजस्तुति अलंकार में आपाततः निन्दा का भाव व्यक्त होता है किन्तु उसका पर्यवसान होता है स्तुति में। 'निन्दा' तथा स्तुति के बहाने तद्विपरीत का प्रतिपादन करने के कारण व्याजस्तुति विशेष चमत्कारक होती है।' इसमें दो अर्थ होते हैं वाच्य एवं व्यंग्य। यदि वाच्यार्थ स्तुतिपरक हुआ तो व्यंग्यार्थ निन्दापरक होगा और व्यंग्यार्थ के निन्दापरक होने पर वाच्यार्थ स्तुति पर्यवासायी होगा। अर्थात् शब्दों की अभिधायक शक्ति द्वारा निन्दा का ज्ञान हो किन्तु पदार्थ-पर्यालोचन के वाद उसका अर्थ स्तुतिपरक प्रकट होता है।

इस अलंकार में एक प्रश्न विचारणीय है कि निन्दा में स्तुति की समाप्ति तो उचित है किन्तु जब स्तुति निन्दा में समाप्त हो जाय तो वहां व्याजस्तुति का अलंकारत्व नहीं होना चाहिए; क्योंकि स्तुति का अर्थ तो प्रशंसा होता है, निन्दा नहीं। पर इसका समाधान यह है कि जिस प्रकार अप्रस्तुत प्रशंसा में प्रशंसा शब्द वर्णन का वाचक होता है उसी प्रकार व्याज स्तुति में भी स्तुति वर्णन या कथन मात्र का बोधक है; स्तुति या प्रशंसा का नहीं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस अलंकार के प्रयोग में कवि का बुद्धि-कौशल एवं चातुर्य व्यक्त होता है। कवि निन्दा के बहाने स्तुति अथवा स्तुति के बहाने निन्दा करते हुए स्वयं भी आनन्दित होता है और प्रयोक्ता या पात्र में भी आनन्दोन्मेष करता है।

व्याजस्तुति अलंकार का व्यावहारिक पक्ष बड़ा प्रबल है। जीवन या समाज में किसी को बुद्धू बनाने के लिए निन्दामुखेन स्तुति एवं स्तुति पर्यवसायिनी निन्दा का सहारा लिया जाता है। इसमें श्लिष्ट शब्दों के कारण अधिक चमत्कार उत्पन्न होता है।

व्याजस्तुति एवं लक्षणामूलाध्वनि में भी भ्रम हो जाता है, इसका समाधान विमर्शिनीकार जयरथ ने किया। इनका कहना है कि व्याजस्तुति में वाच्यार्थ का बाध होने पर अन्य अर्थ अर्थात् व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है किन्तु ध्वनि में वाच्यार्थ का विना बाध हुए ही व्यंग्यार्थ की व्यंजना होती है।

भेद—व्याजस्तुति अलंकार के मुख्यतः दो भेद किये गए हैं—

स्तुतिः पर्यवसायिनी निन्दा एवं निन्दापर्यवसायिनी स्तुतिः।

निन्दापर्यवसायिनी स्तुति—जहां निन्दा से स्तुति का बोध हो।

क—लाल तिहारे रूप की, कहौ रूप यह कौन।
जासों लागै पलक दृग, लागत पलक पलौ न ॥ विहारी।

यहां रूप की बाहरी निन्दा में प्रशंसा का भाव है। प्रिय की आंखें जिस पर लग जाती हैं उसे चैन नहीं, रात भर उसकी आंखें लगती ही नहीं।

स्तुति पर्यवसायिनी निन्दा—स्तुति के बहाने निन्दा की व्यंजना।

क—हनुमत जारी लंक सब, अंगद रोपी लात।
धरि धीरज देखत रहे, धनि रावन क्या बात ॥

ऊपर में रावण की प्रशंसा है कि तुम हनुमान द्वारा लंका जलाने एवं अंगद के पैर रोप देने पर भी सहनशील बने रहे। यह तुम्हारी धीरता सराहनीय है। किन्तु इससे उसकी निन्दा ही प्रकट होती है कि तुम अत्यन्त निर्बल हो, तुम्हारी सेना में ऐसा कोई भी वीर नहीं है जो हनुमान और अंगद की बराबरी कर सके।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—नारद सन सिव-गन कहत, धन्य रावरो रूप।
राजकुँवरि के जोग वर को अस और अनूप॥

यहां स्तुति के बहाने नारद के रूप की निन्दा की गयी है।

आक्षेप

जब विवक्षित (अभीष्ट) वस्तु की विशेषता प्रतिपादन करने के लिए निषेध-सा किया जाय वहां आक्षेप अलंकार होता है।

आक्षेप का अर्थ है—निषेध करना या बाधा डालना। अर्थात् अभीष्ट वस्तु को बिना पूरा किये ही बीच में छोड़ देना। इस प्रकार बीच में ही जो सहसा बाधा पड़ जाती है उससे कथन में चमत्कार आ जाता है। ऐसी स्थिति में जो निषेध किया जाता है वह वास्तविक निषेध न होकर उसका आभास मात्र होता है। इस अलंकार में कवि कथन को विशेष आकर्षक बनाने के लिए ही बीच में उसका निषेध करता है। अतः आकस्मिक विरति या ठहराव के कारण उसके वक्तव्य में अत्यधिक चारुता आ जाती है। आक्षेप अलंकार में अभीष्ट या ईप्सित कथन को अधिक प्रभावशाली या प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उसका निषेध किया जाता है तथा वह निषेध वास्तविक निषेध न होकर निषेधाभास होता है। वक्ता जो बात कहता है उसका वह बीच ही में निषेध कर देता है। वह अपने कथन का इस लिए निषेध करता है कि श्रोता के ऊपर उसका प्रभाव अधिक पड़ सके। इसमें वक्ता के निषेध का सम्बन्ध या तो उक्त विषय से होता है या वक्ष्यमाण विषय से अथवा दोनों के अतिरिक्त वह वर्ण्य विषय से सम्बद्ध किसी अन्य वस्तु से भी संपृक्त रहता है। उक्त विषय का अर्थ है वह विषय जो पूर्णतः कहा जा चुका है तथा वक्ष्यमाण विषय का अभिप्राय है उस कथन से जिसका कि पूरा कहना अभी शेष है। इसमें निषेध वास्तविक नहीं होता अर्थात् आपाततः निषेध की प्रतीति होती है किन्तु वहां वक्ता का अभिप्राय या आशय निषेध करने का नहीं होता तथा निषेधाभास के द्वारा वह किसी विशेष आशय या अर्थ की व्यंजना करना चाहता है। आक्षेप अलंकार में वक्ता के कथन में वाक्चातुरी का होना आवश्यक है। इसमें वक्ता जब अपनी बात कहने को होता है या कहने लगता है तब एवं वह कथ्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

को कह चुकता है तभी उसका निषेध करता है। दोनों ही स्थितियों में उसके वक्तव्य में भंगीभणिति या वाच्यवैचित्र्य होना चाहिए।

उदाहरण के लिए कोई दूती किसी वियोगिनी का संदेश उसके प्रिय से कहते समय यह कहे कि उसके संबंध में न कहना ही अच्छा है, तो इस कथन में आक्षेप अलंकार होगा।

यहां आकस्मिक व्यवधान से वक्तव्य में अधिक आकर्षण आ गया है और यह कथन श्रोता या प्रिय के लिए उत्सुकता उत्पन्न करने वाला हो जाता है। श्रोता सोचने लगता है कि उसको प्रिया के संबंध में कौन-सी ऐसी बात है जो कहने योग्य नहीं है। इससे वक्ता का अभीष्ट सिद्ध हो जाता है और वह अपनें कथ्य का निषेध कर अपने कार्य की सिद्धि कर लेता है। इससे यह अर्थ निकलता है कि तुम इतने निष्ठुर हो कि तुम्हारे समक्ष तुम्हारी प्रिया की वियोग-व्यथा कहना व्यर्थ है।

आक्षेप के मुख्य तीन भेद होते हैं—उक्ताक्षेप, व्यक्ताक्षेप एवं निषेधाक्षेप।

उक्ताक्षेप—जहां पहले वक्तव्यवस्तु को कह कर पीछे उसका निषेध किया जाय वहां उक्ताक्षेप होता है—अर्थात् आक्षेप की वस्तु को कह कर बाद में उसका निषेध करना।

क—सह्यौ न जात वियोग सखि, कछु करि करिय उपाय।
अथवा मरिहै आजु ही, ससि सरूप दिखराय॥

यहाँ नायिका के विरहाधिक्य का वर्णन है।

वह सखी से कहती है कि मुझसे वियोग नहीं सहा जाता, इसलिए तुम ऐसा उपाय करो कि मैं मर जाऊँ। इस पर बीच में ही वह अपनी बात काट कर कहती है कि उपाय खोजना क्या है। चन्द्रमा अपना स्वरूप दिखलाकर तो आज ही मार डालेगा। यहां पहले वियोग का कथन कर बाद में उसका निषेध है।

ख—तव वियोग दुख सों भई, बाल विकल बेहाल।
कस 'रसाल' कहिये अधिक, भयो जु वाको हाल॥

यहाँ दूती नायक से नायिका की विरह-जनित पीड़ा का वर्णन करते हुए बीच में ही निषेध कर देती है। उसका हाल क्या कहा जाय के द्वारा वक्तव्य का निषेध है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यक्ताक्षेप—जब विषय के कथन के पूर्व ही निषेध कर दिया जाय तो व्यक्ताक्षेप होता है।

क—रे खल ! तेरे चरित ये, कहिहौं सबहिं सुनाय।
अथवा कहिबो हत कथा, उचित न मोहि जनाय॥

यहाँ दुष्ट के चरित को कहने के पूर्व ही निषेध कर दिया गया है। कहने का अभिप्राय यह है कि खलों के चरित को कहने में भी पाप होता है।

ख—खिली देखि नव मालती, विरह-विकल वह बाल।
अथवा कहिबो में कथा, कहा लाभ इहि काल॥

दूती नायक से नायिका का विरह-निवेदन कर रही है। उसे कहना यह है कि नायिका तुम्हारे वियोग में जीवित नहीं रह सकती; किन्तु ऐसी बात न कह कर नायिका की विरहजन्य वर्णनातीत व्यथा को सूचित करने के लिए (वह) निषेध कर देती है।

निषेधाक्षेप—जहाँ विधि में ही निषेध छिपा हो अर्थात् स्वीकृति में ही अस्वीकृति का भाव रहे।

क—सुख सों पीय सिधारिए पग-पग हो कल्यान।
हौं हू जनमौंगी तहाँ, तुव जेहि देस पयान॥

पहले तो नायिका नायक को सुखपूर्वक विदेश जाने की आज्ञा देती है किन्तु उस स्वीकृति में भी अस्वीकृति का भाव है। नायिका ने कहा कि जहाँ आप जायेंगे मैं वहीं जन्म धारण करूँगी। कहने का अभिप्राय यह है कि आप विदेश मत जाइये। आप के बिना मैं जीवित न रह सकूँगी।

ख—हौं न कहत हरि जाव जिन, जाव भलैं सुख सुच्छ।
तुम बिन गोपिन ग्राम गृह, गिरि, वन, ब्रज, सब तुच्छ॥

यहाँ ऊपर से जाने की स्वीकृति है किन्तु भाव निषेध का है। नायिका यह कह कर कि आप के बिना गोपियों के ग्राम, नगर, घर, वन सभी व्यर्थ हो जायेंगे, विदेश-गमन का निषेध करती है।

ग—प्रानपति प्रात-ही पयान करौ चाहैं 'देव',
सेवा करिबे को संग प्रानिनि पठाऊँगी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विरोध या विरोधाभास

जहाँ वास्तविक विरोध न होकर विरोध का आभास मात्र हो तो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।

विरोधाभास का अर्थ है विरोध की झलक। इसमें यथार्थ विरोध न होकर विरोध की केवल छाया दिखाई पड़ती है। अर्थात् आपाततः विरोध की प्रतीति होती है, वास्तविक विरोध नहीं होता। आभास मात्र होने पर विरोध का परिहार या शमन हो जाता है। यह श्लेष पर भी आश्रित होता है किन्तु उसका होना आवश्यक नहीं है। प्रकृत वाक्यार्थ में विरोध की प्रतीति होने से ही विरोधाभास अलंकार होता है व्यंग्य अर्थों में विरोध के होने पर विरोधालंकार ध्वनि होगी। इसका वाचक चिह्न अपि या भी है किन्तु विरोधालंकार में इसकी उपस्थिति आवश्यक नहीं है। इसमें दो विरोधी पदार्थ एक ही आश्रय में वर्णित होते हैं। इस अलंकार में प्रथमतः विरोध की प्रतीति होती है किन्तु ज्योंही प्रसंगप्राप्त अर्थ की स्पष्टता होती है त्योंही विरोध हट जाता है। इस अलंकार में दो पदार्थों की असामान्य स्थिति का उल्लेख रहता है किन्तु उनमें इसके परिहार की भी संभावना बनी रहती है। अर्थात् विरोधाभास में विरोध की स्थिति परिलक्षित होती है किन्तु अर्थ-बोध के अनन्तर विरोध उपशमित हो जाता है और सामान्य स्थिति बनी रह जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसमें विरोध शब्दाश्रित रहता है, अर्थाश्रित नहीं और अर्थ की प्रतीति होने पर वह नष्ट हो जाता है। इस अलंकार के माध्यम से कवि दो पदार्थों के बाह्यवैषम्य का प्रदर्शन करते हुए पाठकों के मन में आश्चर्य या कौतूहल का भाव उत्पन्न करता है। पहले दो पदार्थों में प्रदर्शित होता हुआ विरोध वास्तविक या यथार्थ प्रतीत होता है किन्तु विषय-बोध के अनन्तर वह विरोध शान्त हो जाता है। अर्थात् इसका विरोध किसी परिस्थिति में वास्तविक न होने पर परिहार के द्वारा तिरोहित हो जाता है। कुछ आचार्यों के अनुसार इसमें अर्थगर्भता भी होती है अर्थात् किसी विशेष अभिप्राय से ही कवि विरोध का नियोजन करता है।

विरोधाभास अलंकार के लिए यह आवश्यक है कि विरोध के नियोजन में उसके परिहार के लिए भी स्थान रहे, अन्यथा वहाँ अलंकारत्व संभव न हो सकेगा। अर्थात् इसमें विरोध-शमन की पूरी छूट होनी चाहिए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क—या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रँग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय ॥ विहारी।

काले रंग में डूबने से उज्ज्वलता का आना विरोध है। काले रंग में कोई जितनी ही डुबकी लगावे वह काला ही होगा, न कि उज्ज्वल। इस कथन में यहाँ विरोध है, किन्तु यह विरोध वास्तविक नहीं है और इसका परिहार हो जाता है कि भगवान् कृष्ण (स्याम रँग) के प्रति अनुराग रखने से हृदय कृष्णमय हो जाता है या सात्त्विक या उज्ज्वल हो जाता है।

ख—वा मुख की मधुराई कहा कहौं, मीठी लगै अँखियान लुनाई।

ग—आग हूँ जिसके ढुलकते बिन्दु हिमजल के।
शून्य हूँ जिसमें बिछे हैं पाँवड़े पल के ॥ महादेवी।

यहाँ द्रव्य और क्रिया में विरोध है।

घ—शीतल ज्वाला जलती है, इंधन होता दृग-जल का।
यह व्यर्थ श्वास चल-चल कर करता है काम अनिल का ॥ आँसू।

ङ—पर अथाह पानी रखता है, यह सूखा सा गात ॥ यशोधरा।

यहाँ सूखे शरीर में अथाह पानी रखना विरोध का सूचक है किन्तु वियोगावस्था में अश्रुप्रवाहित होने से विरोध का परिहार हो जाता है।

विरोधाभास तथा विभावना—दोनों में ही विरोध के दर्शन होते हैं जिसका परिहार किया जाता है। विरोधाभास के विरोध का क्षेत्र विस्तृत होता है किन्तु विभावना में केवल कार्य-कारणपरक विरोध होने से उसकी परिधि संकुचित हो जाती है। अर्थात् कार्य-कारणगत विरोध के अतिरिक्त विरोधाभास में सभी प्रकार के विरोधों का समावेश हो जाता है। विरोधाभास में जहाँ वास्तविक विरोध न होकर उसके आभास का वर्णन होता है वहाँ विभावना में कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति का उल्लेख होता है। विभावना में कार्यकारणमूलक विरोध का प्राधान्य होता है तो विरोधाभास में द्रव्य, गुण, क्रिया एवं जातिगत विरोध दिखाई पड़ता है।

विरोधाभास और असंगति—असंगति एवं विरोधाभास दोनों में ही विरोध की स्थिति होती है। असंगति में एक स्थान पर रहने वाली वस्तु की भिन्न-भिन्न स्थानों में अवस्थिति दिखलाई जाती है जब कि विरोधाभास में भिन्न-भिन्न स्थानों में रहनेवाली वस्तु को एक स्थान पर स्थित दिखाया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जाता है या वर्णित किया जाता है। असंगति में कार्य-कारणगत विरोध होता है अर्थात् दोनों का अन्यत्र अवस्थान दिखलाया जाता है, अतः इसका क्षेत्र सीमित होता है। पर विरोधाभास में कार्य-कारण के अतिरिक्त सभी प्रकार के विरोध आ जाते हैं, अतः इसका क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। असंगति का विरोध अपवाद के रूप में होता है। विरोध में कार्य की उत्पत्ति का विचार नहीं हो पाता कि विरोध का आभास होने लगता है। असंगति में कार्य के उद्भव का विचार करने के पश्चात् विरोध की प्रतीति होती है।

चन्द्रालोक सुधा पृ० १४२।

विरोधाभास एवं विषम—विरोधाभास में ऊपर-ऊपर से विरोधी प्रतीत होनेवाली वस्तुओं का सम्बन्ध बताया जाता है; पर विषम में 'अनमेल' सम्बन्धों का परस्पर सम्बन्ध दिखलाया जाता है। विरोधाभास का विरोध अर्थ-प्रतीति के बाद हट जाता है किन्तु विषम का विरोध वास्तविक होने के कारण बना रहता है। विरोधाभास में विरोध वास्तविक न होकर ऊपर-ऊपर से होता है, किन्तु विषम का विरोध वास्तविक होता है, वह अलंकार में निरंतर विद्यमान रहता है।

विभावना

प्रसिद्ध कारण के बिना भी कार्योत्पत्ति के वर्णन में विभावना अलंकार होता है।

विभावना का अर्थ है विशेष (वि) प्रकार की कल्पना (भावना)। इस अलंकार में कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति का वर्णन होने से विशेष प्रकार की कल्पना की जाती है। इसकी विशेषता कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति के वर्णन में है। चूँकि कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति का वर्णन विशेष प्रकार की कल्पना से ही होता है, अतः इसी विशिष्टता के कारण, चमत्कार उत्पन्न होने पर, विभावना होती है। कारणाभाव में कार्योत्पत्ति का वर्णन वास्तविक न होकर कवि-कल्पित होना चाहिए। इसे कवि कभी तो यथार्थ कारण का वर्णन करता है और कभी नहीं भी। इस प्रकार प्रसिद्ध कारण के अभाव में भी कार्योत्पत्ति का वर्णन होता है, ऐसी स्थिति में प्रसिद्ध कारण के निषेध में भी उस कार्य रूप फल का कथन या अभिव्यक्ति ही विभावना हुई।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कारण के विना कार्य का सम्पन्न होना एक असामान्य कथन है और इसमें विरोध का भाव रहता है। विभावना में इसी असामान्य कथन के द्वारा कवि चमत्कार उत्पन्न करता है। सामान्य कथन के अनुसार कारण के सद्भाव में ही कार्य की उत्पत्ति का वर्णन होना चाहिए। पर विभावना में इसका अभाव दिखा कर कवि विशिष्ट कल्पना का भावन करते हुए सौन्दर्याभिव्यक्ति करता है। इस अलंकार में लौकिक नियम के प्रतिकूल कथ्य प्रकट किया जाता है, पर कवि प्रसिद्ध कारण के अभाव में भी अप्रसिद्ध कारण की योजना कर विरोध का शमन कर देता है। कारणाभाव में कार्य-सद्भाव के वर्णन से सहृदय के मन में तनाव एवं आश्चर्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है किन्तु कवि कारणान्तर की योजना कर उस स्थिति का परिहार कर देता है और पाठक या सहृदय की मानसिक स्थिति तनाव-रहित हो जाती है।

उदाहरण के लिए कहा जाय कि 'नायिका के चरण बिना जावक दिये ही लाल दिखाई पड़ते हैं'।

विनुजावक दीनैं चरन अरुन लखैहैं आजु॥ भाषाभूषण, ११०।

यहाँ जावक के विना चरणों का लाल होना संभव नहीं है। इसमें कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति का कथन किया गया है। पर नायिका के चरणों की स्वाभाविक सुन्दरता एवं लालिमा के कारण इस विरोध का शमन हो जाता है।

प्रथम विभावना—जहाँ बिना कारण के ही कार्योत्पत्ति का वर्णन किया जाय वहाँ प्रथम विभावना होती है।

क—विन सुगंध लावत लली, आवत अंग सुबास।
विना पान अधरान पै, लाल जु लहत प्रकास॥

नायिका के शरीर में सुगंध के अभाव में भी सुवास का निकलना एवं पान के विना भी होठों में लाली प्रकाशित होना कारण के अभाव में कार्य का होना वर्णित है।

द्वितीय विभावना—अपूर्ण कारण से भी कार्य की उत्पत्ति होने में द्वितीय विभावना होती है।

ख—काम कुसुम धनु सायक लीन्हें। सकल भुवन अपने बस कीन्हें।

ग—बारौ वलि तो दृगन पै, अलि, खंजन, मृग मीन।
आधी दीठि चितौनि जित, किये लाल आधीन॥ विहारी॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ आधी दृष्टि से ही प्रियतम को आधीन कर लेना इस अपूर्ण कारण का वर्णन है।

तृतीय विभावना—यदि प्रतिबंधक के रहते हुए भी कार्योत्पत्ति का वर्णन हो तो तृतीय विभावना होगी।

नैना नैकु न मानहीं, कितै कहौं समुझाय।
ये मुँहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जायँ॥ बिहारी।

रोकने पर भी नैनों के नहीं मानने में रुकावट होने पर भी कार्य होने का वर्णन है।

चतुर्थ विभावना—अहेतु (अकारण) से कार्य की उत्पत्ति होने में चतुर्थ विभावना होती है।

हँसत वाल के वदन में, यों छवि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि तें, झरत चमेली फूल॥ विहारी।

चंपा की बेली से चमेली के फूल का झरना अकारण से कार्य का होना है।

पंचम विभावना—जहाँ विरुद्ध कारण से कार्योत्पत्ति का वर्णन हो वहाँ पंचम विभावना होती है।

क—विरह निवारन को सखी, कौन कहौं अब बात।
सीतल चन्दन चन्दहू, लगे जरावन गात॥

यहाँ चन्दन और चन्द्रमा से शरीर का जलना वर्णित है।

ख—पौन सों जागत आँख सुनी ही पै, पानी सों लागत आजु मैं देखी॥

षष्ठ विभावना—जहाँ कार्य से ही कारण की उत्पत्ति हो जाय तो वहाँ षष्ठ विभावना होती है।

क—चन्द तें लजात जलजात जग जानत है।
आज जलजात तें लजात चन्द देखौ मैं॥

यहाँ जलजात (कमल) से चन्द्रमा के लज्जित होने में कार्य (जलजात) से कारण (चन्द्रमा) की उत्पत्ति का वर्णन है। भाव यह कि नायक के नेत्र कमल से नायिका का मुख-चन्द लज्जित हो रहा है।

ख—नैन-मीन तें देखियहि, सरिता वहति अनूप।

नेत्र-मीन (मछली) से अनुपम नदी के बहने का वर्णन है। मछली

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

से नदी निकलने में कार्य से कारण की उत्पत्ति का वर्णन होने में छठी विभावना हुई।

ग—कहत 'बिहारी' उन लोल-लोल लोचन सों,
पानी के प्रवाह महि-मण्डल मिलत जात।
सागर में देखिए सरोज ही ढिलत यहाँ,
देखिए सरोजन में सागर ढिलत जात॥

असंगति और विभावना—दोनों ही अलंकारों में विरोध का भाव प्रबल होता है तथा इनके विरोध का परिहार भी होता है। असंगति में एक स्थल पर स्थित कार्य-कारण को भिन्न स्थान में स्थापित किया जाता है पर विभावना में प्रसिद्ध कारण के बिना भी कार्य की उत्पत्ति का उल्लेख होता है।

विशेषोक्ति और विभावना—दोनों में ही कार्य-कारणगत विरोध का वर्णन होता है। दोनों ही कार्य-कारण संबंधी विरोध गर्भ अलंकार हैं। विशेषोक्ति में परिपूर्ण कारण के होने पर भी कार्यानुत्पत्ति या कार्याभाव का वर्णन होता है तो विभावना में प्रसिद्ध कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति का वर्णन। विशेषोक्ति का चमत्कार कार्याभाव वाले अंश पर होता है तो विभावना का प्रभावशाली अंश कारणाभाव वाला होता है।

विशेषोक्ति

पर्याप्त अथवा पूर्ण कारण के होते हुए भी कार्योत्पत्ति का होना विशेषोक्ति अलंकार है।

विशेषोक्ति का अर्थ है विशेष प्रकार की उक्ति। इसमें विशेष बात के प्रतिपादनार्थ उक्ति होती है या नवीन प्रकार की उक्ति प्रस्तुत की जाती है। चूंकि यह उक्ति सामान्य कथन से विचित्र या विशेष प्रकार की होती है अतः इसे विशेषोक्ति कहते हैं। इसमें किसी विशेष अर्थ का प्रतिपादन होता है अथवा किसी भङ्गि या अर्थविशेष की अभिव्यक्ति के लिए इसका प्रयोग होता है। परमानन्द चक्रवर्त्ती ने काव्य-प्रकाश-विस्तारिका में बताया कि रागातिशय आदि विशेष पदार्थों के कथन में विशेषोक्ति होती है। अन्ततः विशेषोक्ति में कारण सामग्र्य अथवा कारण सामर्थ्य के विद्यमान रहने पर भी कार्याभाव रूप विशेष की उक्ति में अलंकारत्व माना गया। इस अलंकार में सामान्य या

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लौकिक कथ्य के विपरीत भाव देखा जाता है। सामान्य कथन यह है कि कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है पर विशेषोक्ति में इसके विपरीत कारण के होते हुए भी कार्य के न होने में विशेष प्रकार का कथन किया जाता है। इसमें कारण सद्भाव में भी कार्याभाव कथन कर कवि सहज नियम को भंग कर विशेष कौशल की सिद्धि करता है। वह अपने कथन में अधिक चमत्कार उत्पन्न करने के लिए ही या अभिप्रायगर्भित विशेष कथन के द्वारा उक्ति को प्रभावोत्पादक वना देता है। यह अलंकार विभावना का विलोम है। विभावना में कारण के बिना भी कार्योत्पत्ति का वर्णन होता है किन्तु विशेषोक्ति में कारण के रहते हुए भी कार्याभाव या कार्यानुत्पत्ति का उल्लेख किया जाता है।

विशेषोक्ति में कार्यानुत्पत्ति या प्रतिबंधक का कारण कहीं उक्त, कहीं अनुक्त एवं कहीं अचिन्त्य होता है, और इसी आधार पर इसके तीन भेद किये जाते हैं।

विशेषोक्ति के भेद—कारण के सद्भाव में कार्याभाव-निरूपण में कारण की उक्ति, अनुक्ति एवं अचिन्त्यता के आधार पर इसके तीन भेद किये गए हैं।

उक्तनिमित्ता—जहाँ कार्यानुत्पत्ति कारण या निमित्त कथित होता है वहाँ उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति होती है। इसके पूर्ण कारण के रहते हुए भी कार्य के नहीं होने का हेतु कथित रहता है।

नेह न नैननि को कछू, उपजी बड़ी वलाय।
नीर भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय॥ बिहारी।

जल से भरी रहने पर भी आँखों की प्यास न बुझने में कारण के होते हुए भी कार्य का न होना वर्णित है। यहाँ कार्य की अनुत्पत्ति का कारण वर्णित है वड़ी वलाय या रोग का होना। रोग के होने पर यह स्थिति संभव है।

अनुक्त निमित्ता—जहां कार्य की अनुत्पत्ति (न होने) का कारण न कहा जाय वहाँ अनुक्त निमित्ता होती है। इसमें स्पष्ट रूप से पर्याप्त कारण के होते हुए भी कार्य के न होने का हेतु कथित नहीं होता।

क—सोवत जागत सपन बस, रसरिस चैन कुचैन।
सुरति स्याम घन की सुरति, बिसराये बिसरै न॥ बिहारी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

कृष्ण की सुरति (याद) को भुला देने पर भी न भूलने में कारण के रहते हुए भी कार्य का न होना वर्णित है।

यहाँ न बिसराने का कारण कथित नहीं है।

ख—लिखन बैठि जाकी सविहिं, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥ विहारी।

चतुर चित्रकार (चितेरे) होने पर भी चित्र का न बनना कारण होने पर भी कार्य का न होना है। यहाँ कारण उक्त नहीं है।

अचिन्त्य निमित्ता—कार्य की उत्पत्ति न होने का कारण यदि अचिन्त्य अर्थात् अज्ञात हो तो अचिन्त्य निमित्ता होती है।

जदपि चवायनि चीकनो, चलति चहूँ दिसि सैन।
तऊ न छोड़त दुहुन के, हँसी हँसीले नैन॥ विहारी।

यहां नेत्रों की संलग्नता का कारण अज्ञात है, यद्यपि व्याघात भी उपस्थित है।

असंभव अलंकार

जहां किसी कार्य की सिद्धि के विषय में असंभवता का वर्णन किया जाय वहां असंभव अलंकार होता है।

क—जोग सिखावन को हमको बहुरयौ तुम से उठि धावन ऐहैं।
ऊधो नहीं हम जानती थीं, मनमोहन कूवरी हाथ विकैहैं॥

ख—यह को जानत हो जु कपि, जैहै लंका जारि।

असंगति

जहां कारण और कार्य की भिन्न-भिन्न स्थलों में अवस्थिति दिखलायी जाय वहां असंगति अलंकार होता है।

असंगति का अर्थ है संगति (साथ) का विरोध या संगति का न होना। इस अलंकार में कारण और कार्य की संगति नहीं दिखाई पड़ती, अतः इसे असंगति कहते हैं। यह अलंकार संगति का विरोधी है। इसमें कारण और कार्य के नियत या निश्चित सम्बन्ध का परित्याग दिखाया जाता है तथा उसमें विरोध का भी अंश या आभास रहता है। नियम यह है कि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जहां कारण रहता है वहीं कार्य की भी उत्पत्ति होती है पर इस अलंकार में कारण-कार्य के इस स्वाभाविक सम्बन्ध की संगति टूट जाती है। असंगति में कारण और कार्य की स्वाभाविक संगति नहीं रहती और वे पृथक्-पृथक् स्थित दिखाये जाते हैं। उदाहरण के लिए कहा जाय कि 'सीता को चुरा कर रावण ले गया किन्तु बाँधा गया बेचारा समुद्र।' व्यावहारिक जगत् में जो चोरी करता है वही बाँधा जाता है अर्थात् उसे ही दण्ड मिलना चाहिए। किन्तु यहां कार्य कोई करता है (रावण) और उसका फल कोई भोगता है (समुद्र)। यहां कारण और कार्य की भिन्न-देशता है। असंगति अलंकार के मूल में विरोध का ही भाव रहता है। कवि कारण और कार्यविषयक स्वाभाविक संगति का हनन कर चमत्कार उत्पन्न करता है। इस अलंकार में कारण और कार्य की अन्यत्र स्थिति का चमत्कारपूर्ण वर्णन होना चाहिए। कारण और कार्य की भिन्नदेशता स्वतः एक विचित्र एवं आश्चर्यजनक तथ्य है उसमें वाग्विदग्धता या उक्तिवैचित्र्य के समावेश से और भी अधिक चमत्कार जुड़ जाता है। इस अलंकार की तीन स्थितियां होती हैं—प्रथमतः कारण और कार्य पृथक्-पृथक् या भिन्न स्थलों में दिखाये जाते हैं। दूसरे में अन्यत्र किये जाने वाले कर्त्तव्य कर्म का अन्यत्र किया जाना वर्णित होता है तथा तृतीय स्थिति में प्रवृत्ति के विपरीत क्रिया करने का वर्णन होता है। तीनों ही स्थितियां असामान्य हैं और तीनों के माध्यम से कवि कल्पना विचित्र विच्छित्ति उत्पन्न करती है।

असंगति के भेद—असंगति के तीन भेद माने गए हैं—

प्रथम असंगति—जहाँ कारण और कार्य की अन्यत्र स्थिति हो अर्थात् कारण कहीं और कार्य कहीं वर्णित हो तो प्रथम असंगति होगी।

क—लागत जौ कंटक तिहारे पाँइ प्यारे हाइ,
आइ पहिले-हीं हिय बेधत हँमारे हैं॥

काँटा लगता है नायक के पैर में पर दर्द होता है नायिका के हृदय में जिसके पैर में काँटा गड़े उसी को दर्द भी होना चाहिए किन्तु यहाँ कारण (काँटा गड़ना) एवं कार्य (दर्द होना) की भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थिति दिखाई गयी है, अतः प्रथम असंगति हुई।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—मेरे जीवन की उलझन, बिखरी थीं उनकी अलकें।
पीली मधु मदिरा किसने थीं बन्द हमारी पलकें॥ प्रसाद।

अलकें किसी (नायिका) की बिखरीं थीं और नायक के जीवन में उलझन हो गयी थी या खतरा आ गया था। दूसरे ने शराब पीली थी किन्तु पलकें बन्द थीं किसी और की।

विहारी का निम्नांकित दोहा असंगति का सुन्दर उदाहरण है।

ग—दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥

यहाँ प्रेम-सम्बन्धी जीवन की असंगति का वर्णन है।

द्वितीय असंगति—जो कार्य जहाँ करना हो उसे वहाँ न कर अन्यत्र करने में द्वितीय असंगति अलंकार होता है।

क—पलनि पीक, अंजन अधर, धरे महावर भाल।
आजु मिले तो भली करी, भले बने हो लाल॥ बिहारी।

परस्त्री-मिलन (संभोग) के चिह्नों को प्रिय के शरीर पर लगा देखकर नायिका की उसके प्रति व्यंग्योक्ति है।

यहाँ पलकों पर पान की पीक, अधर पर अंजन एवं महावर को ललाट पर प्रदर्शित किया गया है। अतः यहाँ द्वितीय असंगति हुई।

ख—पायन की सुधि भूलि गयी अकुलाइ महावर आखिन दीनी॥

महावर को पैर में न लगाकर आँखों में लगाने के वर्णन में द्वितीय असंगति हुई।

तृतीय असंगति—जिस कार्य को करने में प्रवृत्त हो यदि उसके विरुद्ध कार्य करने लगे तो तृतीय असंगति होगी।

क—मोह मिटावन हेतु प्रभु, लीन्हों तुम अवतार।
उलटो मोहन रूप धरि, मोही सब ब्रज नार॥

यहाँ जिस कार्य को दूर करने के लिए कृष्ण का अवतार हुआ वे उसके प्रतिकूल कार्य करने लगे—मोह न मिटा कर स्वयं सुन्दरियों को सुन्दर रूप से मोहने या आकृष्ट करने लगे। अतः इस उदाहरण में तृतीय असंगति हुई।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—यह उलटा कासों कहौं, निपट सुनाइ कहै न ।
आये जीवन दैन घन, लगे सुजीवन लैन ॥ बिहारी ।

बादलों का जीवन (जल) देने के लिए आकर जीवन (जान या प्राण) लेने लगने के वर्णन में तृतीय असंगति हुई । बादल जीवन देने आये थे किन्तु वे उसके विरुद्ध कार्य करने लगे । मारने लगे या विरहाग्नि भड़काने लगे ।

विशेषोक्ति और असंगति—दोनों ही विरोधमूलक अलंकार हैं तथा दोनों में ही विरोध का परिहार या शमन होता है । असंगति में कार्य और कारण का भिन्नदेशत्व वर्णित किया जाता है जबकि विशेषोक्ति में कारण के रहते हुए भी कार्याभाव प्रदर्शित होता है । असङ्गति का सौन्दर्य कारण और कार्य के वैयधिकरण्य में होता है तो विशेषोक्ति का सौन्दर्य कारण के होने पर भी कार्याभाव में निहित रहता है ।

विषम

दो विरूप या बेमेल पदार्थों का परस्पर सबन्ध वर्णन ही विषम अलंकार है ।

विषम का अर्थ है सम का न होना अर्थात् विसदृश या अननुरूप होना । इस अलंकार में ऐसे पदार्थों का सम्बन्ध संघटित होता है जो विरूप या बेमेल अथवा असदृश होते हैं । विषम विरोधमूलक अलंकार है । इसमें दो विरोधी या विसदृश पदार्थों के साथ होने में ही कवि सौन्दर्य का सर्जन करता है । इस अलंकार में तीन बातें मुख्य हैं—

क—दो विरूप पदार्थों का सम्बन्ध ।

ख—कारण और कार्य के गुण तथा क्रियाओं का परस्पर विरुद्ध होना—

ग—कर्त्ता को अभीष्ट की प्राप्ति न होकर अनिष्ट घटित होना ।

विषम अलंकार में विरोधी या प्रतिकूल पदार्थों के संघटन में ही कवि चमत्कार उत्पन्न करता है । इसमें स्वाभाविक विषम या विरुद्ध पदार्थों के संघटन का वर्णन न होकर कविकल्पित या कविप्रौढोक्तिसिद्ध कथन होना चाहिए ।

विषम के तीन प्रकार माने गए हैं—

प्रथम विषम—जहां अनुरूपता-रहित दो पदार्थों में परस्पर संबंध संघटित किया जाय वहाँ प्रथम विषम होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क—कहँ गुलाब, कंटक कहाँ, पंकहु कहाँ सरोज।
चतुरानन की चूक है, मृदु उर कठिन उरोज॥

यहाँ कवि ब्रह्मा की चूक का वर्णन करते हुए कहता है कि उसने गुलाब में काँटा, कीचड़ में कमल एवं नायिका के कोमल हृदय पर कठिन स्तनों की स्थापना कर बेमेल पदार्थों का संघटन किया है।

ख—कहां मेघ औ हंस ? किन्तु तुम भेज चुके संदेश अजान।
तुड़ा मरालों से मंदर धनु जुड़ा चुके तुम अगणित प्राण॥ पंत।

ग—मेल मिलायौ है भलो, तुम ऊधव इक ठाम।
कहाँ कुरूपा कूबरी, कहां कृष्ण छबि धाम॥

यहाँ शोभा के भंडार कृष्ण और कूबड़ युक्त कुबजा के पारस्परिक सम्बन्ध में दो अनमिल पदार्थों की संघटना का कथन है।

द्वितीय विषम—जहां कारण और कार्य के गुण एवं क्रिया एक दूसरे के विरुद्ध हों वहाँ द्वितीय विषम होता है।

क्रिया-वैषम्य—

क—रावन तू सीता समक्ष, आदि सक्ति विख्यात।
याहि हरें से वदन तुव, पीरौ परत दिखात॥

यहां सीता को हर लेने से रावण के मुख का पीला पड़ना—हरे वदन से पीला वदन होने की क्रिया में विपरीतता दिखाई पड़ती है।

गुणवैषम्य—

ख—स्याम गौर दुइ मूरति लछिमन राम।
इनते भइ सित कीरति अति अभिराम॥

राम और लक्ष्मण के श्याम और गोरे शरीर के द्वारा उज्ज्वल कीर्त्ति का उत्पन्न होना कारण और कार्य की पारस्परिक विषमता का द्योतक है।

तृतीय विषम—जहां कर्त्ता को अभीष्ट फल की प्राप्ति न होकर अनिष्ट लाभ हो वहां तृतीय विषम होता है।

क—लोने मुख दीठी न लगै, यों कहि दीन्हों ईठि।
दूनो ह्वै लागन लगी, दियो दिठौना दीठि॥ विहारी।

नायिका ने सुन्दर मुख में नजर नहीं लगने के भय से ललाट पर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'दिठौना' लगा दिया; किन्तु उससे उसके सौन्दर्य में वृद्धि हो जाने के कारण देखने वालों की संख्या बढ़ गयी। यहां अभीष्ट कार्य करने में अनिष्ट की प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

ख—छिरकत नीर गुलाब को हुव तन ताप उदोत।

सम

जहां दो अनुरूप पदार्थों के परस्पर योग्य सम्बन्ध का वर्णन हो वहां समालंकार होता है।

सम की व्युत्पत्ति है—सहतुल्यतामीयते इति समम्—समानता के कारण दो पदार्थों में सम्बन्ध-स्थापन।

यह विषम का उलटा है। सम का अर्थ है समान। इसमें समानों (एक प्रकार के पदार्थों) के यथायोग्य सम्बन्ध का वर्णन होता है। इसमें सम्बन्धों की संगति का सौन्दर्यांकन किया जाता है तो विषम में विरूप सम्बन्ध या सम्बन्धों की असंगति का। विषम की भांति इसकी भी तीन स्थितियाँ दिखाई पड़ती हैं। सम में दो उत्तम अथवा अधम पदार्थों के यथा योग्य सम्बन्ध का वर्णन होता है।

सम के भेद—समालंकार के तीन भेद किये गए हैं—

प्रथम सम—अनुरूप वस्तुओं के यथायोग्य सम्बन्ध-वर्णन में प्रथम सम होता है। यह उत्तम एवं अनुत्तम वस्तुओं के यथायोग्य सम्बन्ध-वर्णन में दो प्रकार का होता है—

सत् योग में—

क—चिरजीवो जोरी जुरे, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥ विहारी।

यहाँ राधाकृष्ण की योग्य जोड़ी का वर्णन है।

ख—सोहत संग समान को, इहै कहत सब लोग।
पान पीक ओठन बनै, काजर नैनन जोग॥

यहाँ पान की पीक का अधर एवं 'काजर' का नैनों के साथ परस्पर योग्य सम्बन्ध का वर्णन है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वितीय सम—जहाँ कारण और कार्य में अनुरूपता हो अर्थात् कारण के अनुकूल कार्य का वर्णन किया जाय तो वहाँ द्वितीय सम होगा।

क—करत लाल मनुहारि पै, तू न लखत इहि ओर।
ऐसो उर जु कठोर तौ, उचित ही उरज कठोर ॥

यहाँ उरज (स्तनों) के कठोर होने से हृदय का कठिन होना वर्णित है।

तृतीय सम—विना अनिष्ट के अभीष्ट की प्राप्ति में तृतीय सम होता है।

ख—जाहि मिलन सिय सजि चली, मिल्यौ सु आपहिं आय ॥

यहाँ राम से मिलने के लिए सीता का शृङ्गार कर चलने पर स्वयं राम का आकर मिलना निर्विघ्न इष्ट प्राप्ति का वर्णन है।

विचित्र

इष्ट फल की प्राप्ति के लिए उसके विरुद्ध कार्य करने को विचित्र अलंकार कहते हैं।

विचित्र शब्द का अर्थ स्पष्ट है। इस अलंकार में विरुद्ध फल की प्राप्ति के लिए किये गए उद्योग का वर्णन किया जाता है। यह विरोधगर्भ अलंकार है। इस अलंकार के माध्यम से कवि मानव-प्रकृति की विचित्रता का वर्णन करते हुए चमत्कार का सर्जन करता है। इस अलंकार में फल-प्राप्ति के लिए किये गए प्रयत्न में विरोध का भाव रहता है तथा यही आश्चर्य-प्रतीति का हेतु भी है। अभीष्टसिद्धि के लिए उसके प्रतिकूल क्रिया के अनुष्ठान में विचित्र का अलंकारत्व निहित रहता है। जैसे कहा जाय कि अमर बनने के लिए महान व्यक्ति युद्ध में मर जाते हैं, तो यहाँ अमर होने के लिए मृत्यु का वरण एक विचित्र कथ्य है तथा इसमें अभीष्टप्राप्ति के लिए किये गए उद्यम में विपरीतता दिखाई पड़ती है। कवि ऐसे ही वक्तव्य के द्वारा विचित्र अलंकार का वर्णन करते हुए जीवन की विचित्रता का उल्लेख करता है।

उदाहरण—

क—अमर होन हित समर में जूझत पुरुष पुनीत ॥

ख—मरिबो कै साहस ककै, बढ़े विरह की पीर।
दौरति है समुहैं ससी, सरसिज सुरभि समीर ॥ बिहारी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ विरहिणी नायिका द्वारा मरने के लिए चन्द्र, कमल एवं सुगंधित वायु की ओर दौड़ने में मृत्यु के विपरीत प्रयत्न का वर्णन है।

अधिक

आधार और आधेय में से किसी एक की अधिकता का वर्णन करना अधिक अलंकार है।

अधिक का अर्थ स्पष्ट है। इस अलंकार में आधाराधेय में से किसी एक के आधिक्य का वर्णन किया जाता है। जिस वस्तु पर कोई वस्तु आश्रित होती है उसे आधार एवं जो वस्तु रखी जाती है उसे आधेय कहते हैं। आधार को आश्रय एवं आधेय को आश्रित भी कहा जाता है। इसमें कहीं तो आधार की अपेक्षा आधेय को बड़ा दिखलाया जाता है और कहीं आधेय से आधार के आधिक्य का वर्णन होता है। अधिक में आधिक्य का वास्तविक वर्णन न होकर कविकल्पनाप्रसूत या चमत्कारपूर्ण होता है। यह विरोधमूलक अलंकार है जिसमें आधाराधेय के आधिक्य-वर्णन में विरोध का भाव रहता है।

अधिक अलंकार के दो भेद हैं—प्रथम अधिक एवं द्वितीय अधिक।

प्रथम अधिक—जहाँ आधेय से आधार को बड़ा बताया जाय वहाँ प्रथम अधिक होता है।

क—तीन पेंड जाके अहो, त्रिभुवन में न समाहिं।
धनि राधे राखति तिन्हें, लोयँन कोयँन माँहिं॥

यहाँ राधा आधार हैं और श्रीकृष्ण आधेय। जिस श्रीकृष्ण के तीन पग त्रिभुवन में नहीं समाते उन्हीं कृष्ण को राधिका आँखों के कोने में रखती है। यहाँ आधेय (श्रीकृष्ण) की अपेक्षा आधार (राधिका के नेत्र) की अधिकता का वर्णन है।

ख—इतना सुख जो नहीं समाता, अंतरिक्ष जल-थल में।
मुट्ठी में तुम ले बैठे, आश्वासन देकर छल में॥ प्रसाद।

अंतरिक्ष में नहीं समाने वाले सुख को मुट्ठी में रखना आधेय की अपेक्षा आधार का आधिक्य है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

ग—नारी का वह हृदय! हृदयमें, सुधा-सिन्धु लहरें लेता॥ कामायनी

द्वितीय अधिक—जहाँ आधार से आधेय को बड़ा बनाया जाय वहाँ द्वितीय अधिक होता है

क—सात दीप नव खंड में कीरति नाहिं समात।

सातो द्वीपों और नवो खंडों में राजा की कीर्ति के नहीं समाने में आधेय (कीर्ति) के आधिक्य का वर्णन है।

ख—तीन लोक चौदह भुवन, जो ब्रह्मांड लखात।
तामें तुव पद पद्म की प्रभु महिमा न समात॥

भगवान् के चरण की महिमा के तीन लोक और चौदहों भुवन में नहीं समाने के वर्णन में आधार की अपेक्षा (तीन लोक चौदहो भुवन) आधेय (पादपद्म की महिमा) के आधिक्य का कथन है।

अधिक और विरोध-दोनों ही अलंकारों में विरोध रहता है, दोनों ही विरोधमूलक अलंकार हैं। दोनों का ही विरोध वास्तविक न होकर आपाततः होता है जिसका परिहार किया जाता है। अधिक में आधाराधेय के आधिक्य का वर्णन करते हुए सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है पर विरोध में विरोधी पदार्थों को एक साथ रखकर उनमें संबंध स्थापित किया जाता है। अधिक में विरोध का क्षेत्र सीमित होता है किन्तु विरोध में विस्तृत। अधिक अपवाद होता है और विरोध नियम।

अल्प

अत्यधिक छोटे आधेय की अपेक्षा उससे भी छोटे आधार का वर्णन करना अल्प अलंकार है।

यह अधिक अलंकार का उलटा है। इसमें अल्प आधेय से आधार की अल्पता का वर्णन होता है।

उदाहरण—

क—तू पूछत कहि मुद्रिके मौन होत या नाम।
कंकन की पदवी दई तुम बिनु या कहँ राम॥ रामचन्द्रिका।

यहाँ हाथ की मुद्रिका को कंकन बनाने का वर्णन है। मुद्रिका आधेय और कर आधार है। छोटे आधेय से भी आधार की सूक्ष्मता का वर्णन होने से यहाँ अल्पालंकार हुआ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—अव जीवन कै आस न है कपि कोइ।
कनगुरिया कै सुदरी, काँगन होइ ।। वरवै रामायण।

अन्योन्य

दो वस्तुओं के द्वारा एक ही क्रिया करने के वर्णन में अन्योन्य अलंकार होता है।

अन्योन्य का अर्थ है परस्पर। इसमें दो पदार्थ एक ही क्रिया को सम्पन्न करते हैं, अतः इसे अन्योन्य कहा जाता है। इसके दो प्रधान तत्त्व हैं—दो पदार्थों का एक दूसरे को प्रभावित करना तथा दोनों की एक क्रिया का होना। इस अलंकार में दो पदार्थ एक दूसरे को प्रभावित करते हैं या परस्पर उपकारक होते हैं। अन्योन्य अलंकार में पारस्परिक सहयोग का भाव दिखाई पड़ता है जिसमें लौकिक व्यावहारिकता का औचित्य है। यह अलंकार सामाजिक प्रवृत्ति के अत्यन्त निकट है तथा इसमें सामाजिकता का भाव प्रबल है। समाज में कोई किसी का उपकार करता है तो वह भी उसका उपकार करता है। इस प्रकार का पारस्परिक सहयोग ही अन्योन्य के चमत्कार का कारण होता है। इसमें पारस्परिक सहयोग का चमत्कारपूर्ण वर्णन होना चाहिए।

उदाहरण के लिए कहा जाय कि रात्रि चन्द्रमा से सुशोभित होती है और चन्द्रमा रात्रि से, तो यहाँ पारस्परिक सहयोग की भावना के कारण अन्योन्य अलंकार होगा। यह विरोधगर्भ अलंकार है।

उदाहरण।

क—अँगुरिन उचि अरु भीति दै, उलमि चितै चख लोल।
रुचि सौं दुहूँ दुहूँन के चूमे चारु कपोल ।। विहारी।

यहाँ नायक और नायिका का एक ही चुम्बन रूप क्रिया से परस्पर सम्बद्ध होना वताया गया है।

ख—रामचन्द्र विनु सिय दुखी सिय विनु उत रघुनाथ ।।

विशेष

यदि प्रसिद्ध आधार के विना ही आधेय की स्थिति का वर्णन किया जाय तो विशेष अलंकार होगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विशेष शब्द का अर्थ है असाधारण या विलक्षण। इस अलंकार में आधार के बिना आधेय के वर्णन में असामान्य स्थिति या विलक्षणता का वर्णन किया जाता है, अतः इसे विशेष कहते हैं। इस प्रकार का वर्णन असम्भव एवं प्रकृति विरुद्ध होता है, किन्तु कवि ऐसे विषयों के निरूपण में चमत्कार उत्पन्न करते हुए विशेषालंकार की सिद्धि करता है। इसकी तीन स्थितियाँ दिखाई पड़ती हैं—

क—प्रसिद्ध आधार के बिना आधेय का वर्णन—

ख—एक पदार्थ की एक ही स्वभाव से, एक ही समय में, अनेक स्थानों पर स्थिति—

ग—एक कार्य को करते हुए किसी अन्य अशक्य कार्य की सिद्धि का होना—

विशेषालंकार में लौकिक आधाराधेय का कथन न होकर लोकसीमातिक्रान्तकारी एवं कविकल्पनाप्रसूत आधाराधेय होते हैं। आचार्यों ने इसीलिए इसके मूल में अतिशयोक्ति की कल्पना की है।

विशेष के भेदों का विवरण—पहले ही कहा जा चुका है कि विशेषालंकार के तीन प्रकार होते हैं।

प्रथम विशेष—प्रसिद्ध आधार के अभाव में भी आधेय की स्थिति का वर्णन होने पर प्रथम विशेष होता है।

क—वन्दनीय केहि के नहीं, ये कविन्द मतिमान।
स्वरग गये हूँ काव्य रस, जिनको जगत जहान॥ श्लोक का अनुवाद।

ख—चलौ लाल वाकी दसा, लखौ कही नहिं जाय।
हियरै है सुधि रावरी, हियरो गयो हिराय॥ मतिराम।

दूती का नायिका के प्रति कथन है। हृदय के अभाव अर्थात् आधार के बिना सुधि या आधेय का वर्णन किया गया है।

द्वितीय विशेष—एक ही समय में एक ही रीति से एक पदार्थ की अनेक स्थलों में स्थिति का होना द्वितीय विशेष हुआ।

क—गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रस रास।
लहाछेह अति गतिन की, सबहिं लखे सब पास॥ बिहारी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ श्रीकृष्ण की एक ही समय में अनेक स्थलों पर स्थिति का वर्णन होने से द्वितीय विशेष हुआ।

ख—तेरी आभा का कण तम को देता अगणित दीपक दान।
दिन को कनक राशि पहनाता, विधु को चाँदी का परिधान॥
महादेवी।

यहाँ एक आभा का ताराओं में, दिन के प्रकाश में एवं चन्द्रमा की उज्ज्वलता में होना वर्णित है।

तृतीय विशेष—एक कार्य को करते हुए दूसरे किसी अशक्य कार्य की भी सिद्धि का हो जाना तृतीय विशेष है।

क—तिय तुव तरल कटाक्ष सर, सहैं धीर उर धारि।
सही मानियो तिन सहे, तुपक, तीर, तरवारि॥ दास।

कटाक्ष सह कर तीर, तलवार आदि का सहना—एक कार्य को कर अन्य अशक्य कार्य को भी सम्पन्न करना है।

ख—प्रभु पद धोकर भक्त आप भी धो गया।
कर चरणामृत पान अमर वह हो गया॥ साकेत।

रामचन्द्रजी के चरण को धोकर भक्त का स्वयं धुल जाना एवं चरणामृत पीकर अमर हो जाना अशक्य कार्य की सिद्धि का द्योतक है।

विशेष और विरोध—विशेष के तीनों प्रकारों में विरोध का भाव विद्यमान रहता है। आधार के अभाव में आधेय का वर्णन विरोध ही है। विरोध की सीमा अति विस्तृत है किन्तु विशेष को तीन स्थितियों में परिमित कर दिया गया है। अतः विरोध नियम है और विशेष अपवाद। विशेष में भी विरोध की भाँति वास्तविक विरोध नहीं होता और उसका परिहार संभव होता है। विरोधालंकार में दो भिन्न पदार्थों को एक साथ रखने में चमत्कार होता है किन्तु विशेष में विना आधार के ही आधेय की स्थिति में सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है।

व्याघात

किसी व्यक्ति द्वारा सिद्ध किये गए कार्य को यदि दूसरा उसी साधन से उसे अन्यथा या विपरीत कर दे तो वहाँ व्याघात अलंकार होगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्याघात का अर्थ है विशेष (वि) प्रकार का आघात (चोट या प्रहार) अर्थात् विशेष प्रकार का प्रहार इसमें अन्य व्यक्ति द्वारा सम्पादित कार्य को अन्य व्यक्ति द्वारा उलट दिया जाता या उस पर प्रहार कर उसे अन्यथा या विपरीत स्थिति में मोड़ दिया जाता है। व्याघात विरोधमूलक अलंकार है। इसमें कवि दो विरोधी साधनों का वर्णन करता है। अर्थात् एक क्रिया के दो प्रतिकूल साधन वर्णित होते हैं। इस अलंकार में दो विरोधी साधनों का कथन करते हुए चमत्कार की सृष्टि करता है।।

व्याघात अलंकार की विशेषताएँ—

क—इस अलंकार में किसी कार्य विशेष को सम्पादित करने के लिये दो व्यक्ति होते हैं जो परस्पर विरोधी विचार के होते हैं या एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी होते हैं।

ख—इनमें से एक जिस साधन के द्वारा किसी कार्य को सम्पन्न करता है दूसरा उसके विपरीत कार्य करते हुए उसकी सिद्धि को निष्फल कर देता है।

ग—दोनों व्यक्तियों में से प्रथम दुर्बल होता है एवं द्वितीय सबल। सबल व्यक्ति का उद्देश्य निर्बल या प्रथम व्यक्ति द्वारा सिद्ध किये गए कार्य को निष्फल बनाकर उसे नीचा दिखाना होता है।

घ—इस अलंकार में व्याघात या अन्यथासिद्धि का चमत्कारपूर्ण वर्णन होना चाहिए।

ङ—किसी व्यक्ति द्वारा किसी कार्य को सुगमतापूर्वक अन्यथासिद्ध कर देने में भी इस अलंकार का दूसरा प्रकार होता है।

व्याघात के दो भेद माने गए हैं—प्रथम व्याघात एवं द्वितीय व्याघात।

प्रथम व्याघात—इसमें किसी व्यक्ति द्वारा सिद्ध किये गए कार्य को दूसरे द्वारा उसी साधन से अन्यथा करने का वर्णन होता है।

क—बिथुर्‍यौ जावक सौति-पग निरखि हँसी गहि गाँस।
सलज हँसौहीं लखि लियो, आधी हँसी उसाँस॥ बिहारी।

सौत के पैर में इधर-उधर बिखरे हुए महावर को देखकर नायिका हँसती है कि उसे महावर लगाने भी नहीं आता किन्तु उसकी सौत भी सलज्ज हँसी से मुस्कुरा जाती है कि इसमें उसकी अयोग्यता नहीं अपितु नायक की कला

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। इस पर वह नायिका दुखी होकर आहें भरने लगी। यहाँ जिस कारण से पहले हँसी आई थी अब उसी के कारण उसास निकलने में व्याघात अलंकार हुआ।

द्वितीय व्याघात—इसमें किसी व्यक्ति द्वारा सुगमतापूर्वक कार्य को उलट देने का वर्णन रहता है।

ख—दुख दारिद के संक सों लोभी स्वधन न देत।
दातहु ताही संक सों, सरबस देत सहेत॥

व्याघात के मूल में कतिपय आचार्यों ने व्यतिरेक की स्थिति मानी है। इनके अनुसार व्याघात में जिस साधनविशेष से जो क्रिया की जाती है उसी साधन से दूसरे द्वारा अन्य कार्य कर देने के वर्णन में एक की श्रेष्ठता सिद्ध होती है। व्यतिरेक में भी उपमान की अपेक्षा उपमेय की श्रेष्ठता या उत्कर्ष का वर्णन होता है। रुय्यक, जयरथ एवं पंडितराज को व्याघात की प्रक्रिया में व्यतिरेक का प्रभाव मान्य है। जयरथ का तो यहाँ तक कहना है कि व्यतिरेक के विना व्याघात की स्थिति संभव नहीं है।

कारणमाला

जहाँ पूर्व-पूर्व में कहे गए पदार्थ उत्तरोत्तर कथित पदार्थों के कारण स्वरूप वर्णित होते जाएँ तो वहाँ कारणमाला अलंकार होगा।

कारणमाला में कारण की माला (श्रृंखला) होती है। इस अलंकार में माला की तरह अनेक कारण एकत्र होते हैं या गुंफित होते हैं। कारणमाला अलंकार में पूर्वकथित पदार्थ आगे कहे जाने वाले पदार्थों के कारण बनते चले जाते हैं। इस प्रकार वहाँ कारणों की माला तैयार हो जाती है। यह श्रृंखलामूलक अलंकार है। इस अलंकार में माला शब्द समूह का बोधक न होकर श्रृंखला का प्रत्यायक है। इसके मूल में कार्यकारण का अनुक्रम रहता है तथा कवि कार्य-कारण की श्रृंखला का निर्माण कर चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ होता है। इस अलंकार में कवि का अभिप्रेत कारण होता है अर्थात् उसका ध्यान कारण पर ही केन्द्रित होता है, अतः प्राधान्य के कारण इसकी अभिधा कारणमाला होती है। यद्यपि कारण की माला के साथ ही साथ कार्यों की भी माला या श्रृंखला बनती चली जाती है पर प्रधानता कारणों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की ही होती है। एक कार्य के लिए एक कारण की योजना में जो सौन्दर्य उत्पन्न नहीं होता उससे अधिक सौन्दर्य कारणों की परम्परा प्रदर्शित करने में होता है। कवि कार्य-कारण की श्रृंखला को तब तक सँजोता जाता है जब तक कि पद्य की अन्तिम कड़ी समाप्त न हो जाय और श्रोता या पाठक भी कवि-कौशल को उत्सुकतापूर्वक अन्त—अन्त तक परखते हुए अपूर्व आह्लाद प्राप्त करता रहे। इस अलंकार में कारण कार्य में परस्पर संगति का होना आवश्यक है तथा उत्तरोत्तर उन्हीं शब्दों का प्रयोग होना चाहिए जिनका कि प्रयोग प्रारंभ में किया गया हो। कवि किसी वस्तुविशेष के महत्त्व को स्थापित करने के लिए ही कारणों की माला गुंफित करता है यहाँ कार्य-कारण का गुंफन अभिप्राय गर्भ होता है।

प्रथम कारणमाला—पूर्व-पूर्व के पदों का पर-पर के पदों के कारण स्वरूप वर्णित होने में प्रथम भेद होता है।

विद्या ते उपजै विनै, विनय जगत-वस होत।
जगत भए वस धन मिलै, धन ते धरम उदोत॥

यहाँ विद्या के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। विद्या विनय का, विनय जगत के 'वस' का तथा जग का 'वस' में आना धन का एवं धन धर्म का कारण कहा गया है।

द्वितीय कारणमाला—उत्तर-उत्तर के पदों का पूर्व-पूर्व के पदों का कारण होना।

"वेदन को मूल ज्ञान, ज्ञान मूल तरबो त्यों,
तरबे को मूल नाम भानुनंदिनी को है।"

एकावली

जहाँ पूर्व-पूर्व में कथित वस्तु के प्रति उत्तरोत्तर कथित वस्तु का विशेषण भाव से स्थापन (ग्रहण) अथवा निषेध (त्याग) हो तो वहाँ एकावली अलंकार होता है।

एकावली का अर्थ है एक लड़ की माला। जिस प्रकार कई मोतियों को आपस में पिरोकर एक माला तैयार की जाती है उसी प्रकार एकावली अलंकार में कई विशेषणों की लड़ी पिरोयी जाती है। इसमें कहीं तो विशेष्य-विशेषण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्वन्ध की स्थापना और कहीं निषेध का वर्णन होता है। विशेष्य-विशेषण की माला के कारण ही इसे एकावली कहते हैं। यह शृङ्खलामूलक अलंकार है। इसमें पूर्व-पूर्व में कथित पद उत्तरोत्तर पद के या तो विशेषण होते हैं या विशेष्य तथा विशेषणों का मुख्य उद्देश्य विशेष्य की उत्कृष्टता प्रदर्शित करना होता है। शृङ्खला का सौन्दर्य ही इस अलंकार के चमत्कार का कारण होता है। एकावली में विशेष्य-विशेषणों की माला साधारण न होकर उक्ति-वैचित्र्यपूर्ण एवं किसी भाव विशेष को वल देने वाली होती है। इसमें प्रत्येक विशेषण का प्रयोग प्रसंगानुकूल, अभीष्ट की पुष्टि करने वाला एवं सार्थक होना चाहिए। विशेष्य-विशेषण भाव की स्थापना एवं निषेध के आधार पर इसके दो भेद किये गए हैं।

कलावंत कैसो कहिय, जैसो सुधा प्रमान।
कैसो सुधा-प्रमान है, जैसो रस अधरान॥

यहां 'कलावंत' विशेष्य है और 'सुधाप्रमान' उसका विशेषण। आगे चल कर 'सुधाप्रमाण' विशेष्य हो जाता है और रस अधरान विशेषण। इस प्रकार पूर्व में कथित विशेष्यों का उत्तरोत्तर विशेषण वनने में स्थापन भाव की एकावली हुई।

सो नहिं सर जित सरसिज नाहीं।
सरसिज नहिं जेहि अलि न लोभाहीं॥
अलि नहिं जो कल गुञ्जन हीना।
गुञ्जन नहिं जु न मन हरि लीना॥

यहां विशेषणों के द्वारा निषेध की एकावली है।

एकावली में यह कोई आवश्यक नहीं कि विशेष्य-विशेषण भाव ही रहे। विशेष्य-विशेषण भाव के अभाव में भी केवल गृहीत मुक्तरीति से शृङ्खला के वन जाने से भी एकावली होती है।

जैसे—

क—कान्ह कहा अधरान में तिय मुख लाग्यो ठीक।
तिय मुख में लागे पलक पलकनि लागी पीक॥ पद्माभरण १७७।

यहां विशेष्य-विशेषण-भाव के विना एकावली का अलंकारत्व है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—यह माला रूप में भी देखी जाती है—

आज वन में पिक, पिक में गान,
विटप में कलि, कलि में सुविकास,
कुसुम में रज, रज में मधुप्राण !
सलिल में लहर, लहर में लास ! गुंजन ।

एकावली और कारणमाला—दोनों ही शृङ्खलामूलक अलंकार हैं तथा दोनों में पूर्व-पूर्व पद का उत्तर-उत्तर पद के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। दोनों में अन्तर यह है कि जहां एकावली में विशेष्य-विशेषण भाव की शृङ्खला होती है वहां कारणमाला में कार्य-कारण-भाव की । शृङ्खला के ही कारण दोनों में चमत्कार होता है ।

सार

जहां वस्तुओं का उत्तरोत्तर उत्कर्ष अन्तिम सीमा तक पहुँच जाय तो वहां सार अलंकार होता है ।

सार का अर्थ है तत्त्व या उत्कर्ष । इस अलंकार में पूर्व-पूर्व में कथित पदार्थों से उत्तरोत्तर कथित पदार्थों का अधिक उत्कर्ष बतलाया जाता है । अर्थात् पहले जो बात कही गयी है उससे आगे कही जाने वाली बात अधिक उत्कृष्ट रूप में कही जाय । कहीं-कहीं वस्तुओं के उत्तरोत्तर अपकर्ष वर्णन में भी सार अलंकार होता है । यह भी श्रृंखलामूलक अलंकार है । इसमें क्रमशः एक दूसरे से उत्कृष्ट पदार्थों का वर्णन रहता है तथा यह उत्कर्ष कहीं तो पदार्थों का और कहीं उनके धर्म का होता है ।

सार अलंकार में वर्णनीय विषय का उत्कर्ष अथवा अपकर्ष चरमसीमा तक दिखलाया जाता है । किसी विषय के उत्कर्ष का प्रतिपादन किसी अभिप्राय विशेष के ही कारण होता है । अतः इस अलंकार में दो मुख्य तथ्य दिखाई पड़ते हैं—श्रृंखला और अभिप्रायगर्भत्व । कवि किसी पदार्थ को उत्कृष्ट सिद्ध करने के लिए उसकी उच्चता को श्रृंखला या अनुक्रम के माध्यम से परावधि या चरमोत्कर्ष पर पहुंचा देता है । इसी प्रकार की स्थिति वस्तु के उत्तरोत्तर अपकर्ष वर्णन में भी होती है । यहाँ कवि वर्ण्य विषय (वस्तु) की निकृष्टता सिद्ध करने के लिए चरमसीमा तक श्रृंखला का विधान करता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। वस्तु की उत्तरोत्तर उत्कृष्टता एवं हीनता के प्रदर्शन में विषय की सूक्ष्मता प्रदर्शित होती है। उसके साथ ही साथ कवि के रचनाकौशल एवं कल्पना शक्ति का भी पता चलता है। कवि किसी विषय की उत्कृष्टता या अपकर्ष का चरम सीमा तक वर्णन करते हुए पाठक के मन में औत्सुक्य भरता चला जाता है और पाठक भी उसकी प्रतिभा के वैचित्र्य का अवलोकन कर अपूर्व आनन्द प्राप्त करता है।

भेद—वस्तुओं की उत्तरोत्तर उत्कृष्टता एवं अपकृष्टता के आधार पर इसके दो भेद किये गए हैं।

प्रथम सार—पदार्थों का उत्तरोत्तर उत्कर्ष वर्णनः—

क—तिय तें सुरतिय सुन्दरी, तिनतें रति सु अनूप।
रति तें अतिराजत रुचिर, श्रीराधे तव रूप॥

यहाँ स्त्रियों की अपेक्षा देवांगनाएँ एवं देवांगनाओं की अपेक्षा रति की सुन्दरता का वर्णन है एवं रति से भी अधिक सौन्दर्य राधिका का वर्णित है।

ख—मखमल तें कोमल महा कदलि गरभ को पात।
ताहू तें कोमल अधिक, प्यारी तेरो गात॥

द्वितीय सार—उत्तरोत्तर अपकर्ष का वर्णन—

तृन ते लघु है तूल, तूलहु ते लघु मांगनो॥

यथासंख्य

जहाँ पूर्वकथित पदार्थों का उसी क्रम से अन्त तक निर्वाह किया जाय वहाँ यथासंख्य अलंकार होता है।

यथासंख्य का अर्थ है संख्यानुसार। इस अलंकार में जिस क्रम से जो बात पहले कही जाती है उसका पुनः उसी क्रम से अन्त तक निर्वाह किया जाता है। इस अलंकार में पूर्वकथित पदार्थों एवं पश्चात् कथित पदार्थों के क्रमिक संबंध का स्थापन कर कवि चमत्कार की सृष्टि करता है। कुछ आचार्य इसे क्रमालंकार भी कहते हैं। पूर्व उपनिबद्ध पदार्थों का उसी क्रम से निबन्धन में ही यथासंख्य का अलंकारत्व होता है। "यथासंख्य को अलंकार इसी लिये माना गया है क्योंकि यहाँ पहले पीछे वर्णन किये गए पदार्थों के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यथाक्रम में एक वैचित्र्य प्रतीत हुआ करता है। वैसे वहाँ कवि प्रतिभा का कोई हाथ नहीं, यहाँ जो कुछ भी है वह केवल एक बाह्य वैचित्र्य का अनुभव है जो कि रचना-कौशल का परिणाम है। यहाँ पदार्थों में किसी प्रकार का उपमानोपमेयभाव विवक्षित नहीं।" यथासंख्य के क्रम-निर्वाह में औचित्य एवं संगति दिखाई पड़ती है।

क—अमिय, हलाहल, मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जिअत, मरत, झुकि झुकि परत जेहि चितवत इकबार॥ रसलीन।

कवि ने नायिका के नेत्र का वर्णन करते हुए बतलाया है कि आँखों में उजले, काले और लाल रंग क्रमशः अमृत, विष और शराब से युक्त हैं जिनको देखते ही मनुष्य जी जाता है, मर जाता है और पागल हो जाता है। यहाँ प्रथम पंक्ति में जिस क्रम से अमृत (अमिय), हलाहल (विष) और मद (शराब) कहे गए हैं, द्वितीय पंक्ति में भी उन्हें उसी क्रम से रखा गया है—सेत स्याम, रतनार। पुनः प्रथम और द्वितीय पंक्ति के क्रम को अन्त तक निवाहा गया है।

ख—निसर्ग ने, सौरभ ने, पराग ने,
प्रदान की थी अतिकान्त भाव से।
वसुन्धरा को, पिक को, मिलिन्द को,
मनोज्ञता, मादकता, मदान्धता॥ प्रियप्रवास।

यहाँ निसर्ग, सौरभ एवं पराग के क्रम को वसुन्धरा, पिक एवं मिलिन्द (भौंरे) के साथ निवाहा गया है। पुनः इनके विशेषण भी उसी क्रम से हैं।

१—निसर्ग ने वसुन्धरा को मनोज्ञता प्रदान की थी—
२—सौरभ ने पिक को मादकता प्रदान की थी—
३—पराग ने मिलिन्द को मदान्धता प्रदान की थी—

पर्याय

एक वस्तु की क्रम से अनेक स्थानों में स्थिति हो या अन्य के द्वारा की जाय तो वहाँ पर्याय अलंकार होता है।

पर्याय शब्द का अर्थ है क्रम—पर्यायोऽवसरेक्रमे। इस अलंकार में एक वस्तु की या एक आधेय की क्रमशः अनेक आधारों में स्वतः स्थिति होती है

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

या दूसरे के द्वारा की जाती है। इसमें वस्तु का वर्णन क्रमशः या एक के बाद दूसरे का होता है तथा एक साथ न होकर काल-भेद से होता है। पर्याय अलंकार में आधार, आधेय तथा क्रम तीनों का ही वर्णन चमत्कारपूर्ण या कविकल्पना प्रसूत होना चाहिए। इसकी दो स्थितियाँ होती हैं जिसके आधार पर इसके दो प्रकार माने जाते हैं।

क—एक वस्तु की अनेक स्थानों में स्वतः स्थिति हो या अन्य व्यक्ति द्वारा करायी जाय।

ख—अनेक वस्तुओं की एक स्थान में स्वतः स्थिति हो या अन्य के द्वारा की जाय।

यह वाक्यन्यायमूलक अलंकार है। इसके मूल में दो तत्व हैं वस्तु का विस्तार एवं औचित्य। कवि किसी वस्तु का अनेक स्थानों में अवस्थिति का वर्णन कर उस वस्तु का विस्तार प्रदर्शित करते हुए उसका महत्व प्रतिपादित करता है। एक पदार्थ को अनेक स्थलों पर दिखलाने में औचित्य का भी भाव होता है तथा पाठक के मन में कौतूहल या विस्मय के भाव का उदय होता है। पर्याय अलंकार में एक वस्तु की अनेक स्थानों पर स्थिति होने में आरोह या अवरोह रूप से वर्णन होना चाहिए। इसकी स्थिति वहाँ होती है जहाँ वस्तु अपने प्रथम आश्रय को त्याग कर दूसरे पर स्थित रहे। विशेषालंकार एवं पर्याय में अन्तर होता है। विशेषालंकार में भी एक ही पदार्थ की एक ही समय में अनेक स्थानों में स्थिति होती है पर पर्याय में काल-भेद से अर्थात् भिन्न समय में एक वस्तु को अनेक आधारों में स्थित दिखलाया जाता है। पर्याय में समयान्तर की प्रधानता है किन्तु विशेष में समयान्तर का अभाव। पर्याय में एक ही कार्य को समय-भेद से क्रमानुसार अनेक स्थलों पर दिखाया जाता है।

परवर्ती आचार्यों में शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ ने रुय्यक के ही आधार पर पर्याय अलंकार का विवेचन किया।

विश्वनाथ ने रुय्यक से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी अपनी भेद-विधा सर्वथा पृथक् रखी है इन्होंने पर्याय के चार प्रकारों का उल्लेख किया है।

क—एक वस्तु के अनेक स्थान पर क्रमशः अवस्थान का वर्णन।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—अनेक वस्तुओं के एकत्र क्रमशः अवस्थान-वर्णन ।

ग—एक वस्तु के अनेक स्थान पर क्रमशः संपादन अथवा विधान-वर्णन ।

घ—अनेक वस्तुओं के एकत्र संपादन अथवा विधान-वर्णन ।

इन्होंने पर्याय एवं विशेष तथा परिवृत्ति अलंकार के अन्तर को स्थापित करते हुए बताया कि पर्याय में एक वस्तु की अनेक वस्तुओं में स्थिति का वर्णन क्रम से होता है, एक ही समय में नहीं किन्तु द्वितीय विशेष में एक ही साथ एक ही समय में अनेक वस्तुओं की एक में स्थिति होती है। इसी प्रकार परिवृत्ति में इससे भिन्नता दिखाई पड़ती है। पर्याय में जहाँ एक वस्तु की अनेक स्थानों में क्रमशः स्थिति का वर्णन होता है उसमें विनिमय का भाव नहीं होता, परिवृत्ति अलंकार में परस्पर विनिमय का भाव रहता है।

प्रथम पर्याय—एक वस्तु की क्रम से अनेक स्थानों में स्थिति का वर्णन किया जाय, वहाँ प्रथम पर्याय होता है।

यहाँ एक ही पदार्थ राग की ओठ और हृदय दोनों में स्थिति का वर्णन होने से पर्याय अलंकार हुआ।

क—तुव अधरहिं में हे सखी हुतो जो पूरब राग।
अब तुव हिय में भी अहै, लख्यौ परत बड़ भाग॥

यहाँ राग की अधर एवं हृदय दोनों में स्थिति है।

ख—तेरी आभा का कण नभ को, देता अगणित दीपक-दान।
दिन को कनक-राशि पहनाता, विधु को चाँदी का परिधान॥

महादेवी।

यहाँ आभा की स्थिति का (एक पदार्थ का) ताराओं, दिन के प्रकाश एवं चन्द्रमा की उज्ज्वलता में वर्णन है।

द्वितीय पर्याय—जहाँ अनेक पदार्थों की एक आधार में स्थिति का वर्णन हो वहाँ द्वितीय पर्याय होता है।

क—उसी देह में लरिकई पुनि तरुनाई जोर।
बिरधाई आई अजहुं भजि ले नन्द किशोर॥

यहाँ एक देह का अनेक आधारों—लरिकाई, तरुनाई एवं बिरधाई में स्थिति का वर्णन होने से द्वितीय पर्याय हुआ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—जिस रथ पर थे प्रसून झड़ते।
उस पर थे आज अश्रु पड़ते॥ साकेत।

ग—अलि कहाँ संदेश भेजूँ मैं किसे संदेश भेजूँ।
नयन-पथ से स्वप्न में मिल प्यास में घुल, साध में खिल।
प्रिय मुझी में खो गया अब दूत को किस देश भेजूँ॥

यामा : महादेवी।

यहां अनेक आधारों में एक ही आधेय का वर्णन किया गया है।

परिवृत्ति

सम अथवा असम पदार्थों के परस्पर विनिमय को परिवृत्ति अलंकार कहते हैं।

परिवृत्ति का अर्थ है—परिवर्त्तन या लेना-देना या अदल-बदल करना। किसी पदार्थ का अन्य पदार्थ के साथ परिवर्त्तन या बदलना ही परिवृत्ति है—कस्यचिद् वस्तुनो वस्त्वन्तरेण परिवर्तनं परिवृत्तिः लघुवृत्ति पृ० ६९. इन्दुराज। इस अलंकार में एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ से विनिमय का वर्णन होता है। इस प्रकार का विनिमय सम का अधिक के साथ अथवा अधिक का न्यून के साथ होता है। इसमें आदान-प्रदान का वर्णन वास्तविक न होकर कवि-कल्पित या चमत्कारपूर्ण होना चाहिए अन्यथा वहां अलंकारत्व नहीं होगा। सम और विषम पदार्थों के आदान-प्रदान के कारण इसके चार प्रकार हैं।

क—सम का सम के साथ विनिमय।

ख—विषम वस्तु का विषम के साथ विनिमय।

ग—न्यून का अधिक के साथ विनिमय।

घ—अधिक का न्यून के साथ आदान-प्रदान।

परिवृत्ति या विनिमय एक सामाजिक तत्त्व है। समाज में पारस्परिक लेन-देन या आदान-प्रदान का व्यवहार प्रचलित रहता है। यही व्यवहार जब कवि कल्पना प्रसूत होकर काव्य का अंग बनता है तो अपनी चमत्कारिता या उक्तिवैचित्र्य के कारण अलंकार का रूप ग्रहण करता है। इस अलंकार के मूल में औचित्य और वैषम्य दो तत्त्व प्रधान हैं। सम का सम के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

साथ विनिमय में औचित्य का भाव होता है तो सम का विषम के साथ विनिमय में इसकी वैषम्यमूलकता प्रतिलक्षित होती है। दोनों ही स्थितियों में चमत्काराधान होता है और इसी पर परिवृत्ति अलंकार की अट्टालिका स्थित है।

भेद—परिवृत्ति अलंकार के चार भेद होते हैं—

प्रथम परिवृत्ति—उत्कृष्ट पदार्थ का उत्कृष्ट पदार्थ के साथ विनिमय—

बेलि कुसुम कहँ पवन यह, सीख नटन की देत।
भेंट मौंहि तिनतें बहुरि, अति सुगंध लै लेत॥

यहाँ नृत्य की शिक्षा देकर सुगंध का लेना उत्कृष्ट वस्तु का विनिमय है।

द्वितीय परिवृत्ति—न्यून पदार्थ का न्यून पदार्थ के साथ विनिमय।

गंगे! कीन्हौं कौन तुम, मो पै बड़ उपकार।
लै मन को सब मैल अब, तन को दीन्ही छार॥

यहाँ 'मैल' लेकर 'छार' देना निकृष्ट वस्तु लेकर निकृष्ट वस्तु देने का वर्णन है।

तृतीय परिवृत्ति—उत्कृष्ट वस्तु लेकर निकृष्ट वस्तु देना—

क—कासों कहिये आपनी, यह अयान जदुराइ।
मन मानिक दीन्हों तुमहिं, लीन्हीं विरह-बलाइ॥

'माणिक्य' देकर 'विरह-बलाइ' लेना उत्कृष्ट वस्तु के बदले निकृष्ट वस्तु का विनिमय है।

ख—तुम कौंन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

चतुर्थ परिवृत्ति—निकृष्ट वस्तु देकर उत्कृष्ट वस्तु लेना—

क—दई पराजय अरिन कहँ, लीन्हीं कित्ति अमान।
लै सिंगार तिन तियन को, दीन्हों दुख को दान॥

शत्रु को हरा कर अपरिमित यश प्राप्त करना, निकृष्ट वस्तु देकर उत्कृष्ट वस्तु के लेने का वर्णन है।

ख—इक धतूर फल दै सिवहिं, लिये अमोघ फल चार॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिसंख्या

किसी पदार्थ का एक स्थान से निषेध कर अन्यत्र स्थापित किया जाय तो वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है।

परिसंख्या का अर्थ है छोड़कर वर्णन करना। परि (वर्जन-छोड़कर) संख्या (वर्णनीय की गणना) अर्थात् जहाँ दूसरों की भी गणना की जा सकती थी किन्तु उन्हें छोड़कर एक की गणना करना। इसमें एक वस्तु की स्थिति अनेक स्थलों पर संभव होने पर भी उसे उन स्थलों से हटा कर (निषेध कर) एक स्थान में स्थापित कर दिया जाता है। अर्थात् एक वस्तु की अनेक स्थलों पर सिद्धि (स्थिति) संभव होने पर भी अन्यत्र निषेध कर एक स्थान पर स्थापित कर देना। इसकी रूपरेखा मीमांसा के ही आधार पर निर्धारित की गयी है। मीमांसा में 'परिसंख्याविधि' का वर्णन होता है। मीमांसा-दर्शन में विधि का अर्थ है आदेश या अवरोध जिसके तीन प्रकार कहे गए हैं—अपूर्व विधि, नियम विधि एवं परिसंख्या विधि। परिसंख्या विधि में दो पदार्थों की युगपतू प्राप्ति होने पर उनमें मे एक के निषेध का वर्णन होता है। अर्थात् एक साथ दो पत्तों में स्थित कार्य में से एक को स्वीकार किया जाता है एवं दूसरे का वर्जन या निषेध। उदाहरण के लिए कहा जाय कि 'पञ्च-पञ्च नखाभक्ष्याः' अर्थात् पाँच-पाँच नखों वाले पशुओं का मांस भक्षण करना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि केवल पाँच नखों वाले पशुओं के ही मांस भक्षण का विधान करना चाहिये पंचेतर नखों वालों का नहीं।

परिसंख्या विधि में जहाँ दो पक्षों को स्वीकार करने का भाव हो उनमें से एक का निषेध कर अन्य का विधान किया जाता है।

परिसंख्या अलंकार में निषेध का वर्णन कवि कल्पना प्रसूत होना चाहिए—यत्र कविप्रतिभानिर्मिता इतर व्यावृत्तिस्तत्रालंकारता-झलकीकर-बालबोधिनी पृ० ७०४॥ इस प्रकार 'मीमांसाशास्त्र' का परिसंख्या शब्द साहित्यशास्त्र में ग्रहण किया गया है। इस अलंकार में किसी वस्तु का अन्यत्र वर्जन करने का उद्देश्य एक स्थान में उसका नियंत्रण करना ही होता है। इसमें एक वस्तु को अन्य स्थानों से हटा कर एक स्थान पर नियन्त्रित या सीमित कर देते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसकी विशेषताएँ—

क—परिसंख्या अलंकार में एक वस्तु की अन्य स्थानों में स्थिति संभव होने पर भी उसका वहाँ से निषेध कर अन्य स्थान पर स्थापन होता है।

ख—इसका आधार मीमांसा शास्त्र के अन्तर्गत परिसंख्या विधि है जिसमें 'प्रतिपाद्य के वर्जन और उससे भिन्न के संख्यान' का कथन किया जाता है।

ग—परिसंख्यालंकार में निषेध का वर्णन कविप्रतिभाप्रधान होता है और वहाँ कवि का उद्देश्य चमत्कार उत्पन्न करना होता है न कि शास्त्र-सम्पादन।

घ—परिसंख्या श्लेषयुक्त एवं श्लेषरहित दोनों प्रकार की हो सकती है किन्तु श्लेषयुक्त होने पर उसका चमत्कार अधिक बढ़ जाता है।

ङ—इसका चमत्कार निषेध में ही निहित रहता है।

च—यह प्रश्नपूर्वक या बिना प्रश्न के भी होती है। अर्थात् इसमें किसी प्रश्न के रूप में या शुद्ध रूप में उक्ति होती है।

छ—यह वाक्यन्यायमूलक अलंकार है "क्योंकि एक स्थान पर निषेध या अन्य स्थान पर स्थापन की इस क्रिया में एकवाक्यगत संगति होती है।"

ज—इसकी चार स्थितियाँ हैं—

(१) प्रश्नपूर्वक प्रतीयमान निषेध, (२) प्रश्नपूर्वक वाच्य, शब्द द्वारा कथन निषेध, (३) प्रश्नरहित प्रतीयमान व्यंग्य निषेध, (४) प्रश्न-रहित वाच्य निषेध ॥

उदाहरण के रूप में यह कहा जाय कि 'रामचन्द्र के राज्य में केवल तिथियों का क्षय होता था।' तो यहाँ परिसंख्या हो जायगी। रामचन्द्र के राज्य में अन्य वस्तुओं का भी नाश संभव था किन्तु अन्य स्थान से उसका निषेध या अभाव दिखा कर केवल तिथियों में नियंत्रित कर दिया गया है। यहाँ कवि के कथन का अभिप्राय यह है कि राम-राज्य में सभी सुखी थे।

उदाहरण—

क—कवि कुल को ही श्रीफलन, उर अभिलाष समाज।
तिथियन को छय होत है, रामचन्द्र के राज ॥ "रामचन्द्रिका"।

रामचन्द्र के राज्य में श्रीफल (बिल्व, लक्ष्मी) की आवश्यकता केवल

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कवियों को ही होती थी; क्योंकि वे नायिकाओं के स्तनों की उपमा श्रीफल से ही देते थे। यहां कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि राम-राज्य में सभी सुखी सम्पन्न थे किसी को भी लक्ष्मी या धन की चाह न थी। किसी के हृदय में किसी प्रकार की इच्छा न थी केवल समाज को एकत्र करने की अभिलाषा थी। वहां क्षय तिथियों का ही होता था अन्य किसी वस्तु का नहीं। दोहे में श्रीफल, अभिलाषा और क्षय की स्थिति अन्य जगहों में भी संभव थी किन्तु उन्हें वहां से हटा कर केवल कविकुल, समाज एवं तिथियों में नियन्त्रित कर दिया गया है।

ख—पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्योई रहत, आनन ओप उजास॥ विहारी।

सखी नायिका के सुखकी प्रशंसा करती हुई कहती है कि उसके (नायिका) घर के पास पत्रा में ही तिथि मिलती है, क्योंकि उसके मुख की चमक और प्रकाश से वहां नित्य ही पूर्णमासी की छटा छिटकती रहती है। तिथि की स्थिति या विद्यमानता अन्य स्थानों में भी सम्भव थी किन्तु उसका वहाँ से निषेध कर पत्रा में ही नियंत्रित कर देने से परिसंख्या अलंकार हुआ।

ग—प्रश्नपूर्वक परिसंख्या—

सेव्य कहा? तट सुर सरित, कहा ध्येय? हरि-पाद।
करन उचित कह? धर्म नित, चित तजि सकल विषाद।

अन्य वस्तुयें भी सेवा के योग्य, ध्यान के योग्य तथा करने योग्य थीं किन्तु उनका निषेध कर तटसुरसरित, हरि–पाद एवं धर्म का स्थापन किया गया है।

घ—देह में पुलक, उरों में भार,
भ्रुवों में भंग, दृगों में वाण।
अधर में अमृत, हृदय में प्यार,
गिरा में लाज, प्रणय में मान॥ पंत॥

यहाँ पर पुलक, भार, भंग, वाण, अमृत, प्यार, लाज तथा मान का अन्य स्थानों में निषेध कर देह, उर, भ्रुव, दृग, अधर, हृदय, गिरा एवं प्रणय में स्थापित किया गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विकल्प

तुल्य बल वाले परस्पर विरोधी पदार्थों की एक ही समय में एकत्र स्थिति दिखाई जाय तो वहाँ विकल्प अलंकार होता है।

विकल्प का अर्थ है यह या वह अर्थात् दो में से एक। इसमें समान बल वाली दो वस्तुओं के परस्पर विरोध का वर्णन होता है तथा दो में से एक की स्थिति का रहना दिखाया जाता है। विकल्प अलंकार में कवि-चातुरी का प्रदर्शन आवश्यक है अन्यथा कोरे विकल्प में अलंकार होने लगेगा। इसमें चमत्कारपूर्ण या कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध विकल्प का कथन होना चाहिए। विकल्प समुच्चय अलंकार का विपरीत या विलोम है। इसमें औपम्यगर्भता के ही कारण चमत्काराधान होता है। औपम्यगर्भत्व के अभाव में 'गृह्णाति न गृह्णाति' ऐसे कथनों में भी विकल्प के विद्यमान होने पर भी अलंकारत्व संभव नहीं है। यह वाक्यन्यायमूलक अलंकार है किन्तु अनिश्चितता की प्रधानता के कारण इसे विरोधगर्भ अलंकार भी माना जा सकता है।

इसकी विशेषतायें—

क—विकल्प' में दो पदार्थों का वर्णन होता है जो समतुल्य या तुल्य-कोटिक होते हैं—

ख—दोनों में परस्पर विरोध का होना आवश्यक है।

ग—दोनों में से एक की स्थिति या अस्तित्व का वर्णन किया जाता है तथा दोनों की एक ही समय एवं एकत्र स्थिति में परस्पर विरोध होता है।

घ—चमत्कारपूर्ण विकल्प के कथन में ही अलंकारत्व होता है तथा इसकी औपम्यगर्भता आवश्यक मानी गयी है।

ङ—यह समुच्चय अलंकार का विलोम अलंकार होता है।

उदाहरण—

क—दिसि-दिसि कूजहि कोकिला, फूले रुचिर रसाल।
दूरि करेगा विरह दुःख कै गोपाल कै काल॥

यहां विरह दुःख का दूर होना गोपाल (प्रिय) अथवा काल पर निर्भर है।

ख—जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरौं संभु न तु रहौं कुमारी॥

रामायण।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ग—दोषी हूँ पर प्रेम-अन्ध हूं, या तो मुझे क्षमा दो ।
या यह लो तलवार खून के बदले खून बहा दो ॥ नूरजहां ।

यहां जहांगीर की नूरजहां के प्रति उक्ति है । क्षमा करना तथा खून बहाने में विकल्प है ।

समुच्चय

किसी कार्य को करने के लिए एक साधक के होने पर भी साधकान्तर का कथन किया जाय तो वहाँ समुच्चय अलंकार होता है ।

समुच्चय का अर्थ है समूह या एक साथ इकट्ठा होना । इस अलंकार में किसी कार्य की सिद्धि के लिए एक साधक के होने पर भी दूसरे साधक की चर्चा की जाती है । यह विकल्पालंकार का प्रतिपक्षी है । इसमें तीन प्रकार के साधक संभव हैं—कहीं सत्, कहीं असत् और कहीं सत् तथा असत् दोनों का एकीकरण हो जाता है । अतः यह तीन प्रकार का होता है—सद्योग में असद्योग में तथा सदसद्योग में । संस्कृत आलंकारिकों ने समुच्चयालंकार के निरूपण में 'खले कपोतिकान्याय' का उल्लेख किया है । इस अलंकार में खलिहान में आ जाने वाले अनेक कबूतरों की भाँति अनेक साधकों के अप्रत्याशित रूप से या अहमहमिकया जुट जाने का वर्णन किया जाता है । जिस प्रकार एक खलिहान में एक कबूतर के आ जाने पर बहुत से कबूतर स्वतः या अपने-आप आ पहुँचते हैं, उसी प्रकार समुच्चय अलंकार में भी एक साधक के होते हुए भी अन्य अनेक साधक जुट जाते हैं । इस अलंकार में यह दिखलाया जाता है कि जहाँ किसी कार्य की उत्पत्ति एक कारण या साधन से संभव हो किन्तु कवि अन्य साधनों का इस प्रकार वर्णन करे कि परस्पर प्राथमिकता का भाव प्रदर्शित करते हुए उस कार्य की सिद्धि के रूप में प्रस्तुत हो जाएँ ।

समुच्चय अलंकार समूह या समुदाय का बोधक होता है । एक कार्य के लिए अनेक साधकों के एकत्र हो जाने के वर्णन में इस अलंकार में सामाजिकता परिदर्शित होती है । एक कार्य की सिद्धि में अनेक हेतुओं का उपन्यास होना अथवा एक साथ कई भावों का उदय होना या कई कारणों से एक ही कार्य सिद्ध होने में समुच्चय अलंकार होता है । इसमें तुल्यबल वाले अनेक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

साधकों या पदार्थों का कथन होने से समुच्चय नाम की सार्थकता सिद्ध हो जाती है।

समुच्चय के भेद :—

प्रथम-समुच्चय—जहां एक कार्य की सिद्धि में एक साधक के होते हुए भी अन्य साधक का कथन किया जाय।

प्रथम समुच्चय के तीन प्रकार हैं अर्थात् साधन तीन प्रकार के होते हैं—सद्योग, असद्योग एवं सदसद्योग।

सद्योग में—जहां सभी उत्तम साधनों का वर्णन किया जाय—

भृकुटी मटकनि, पीतपट चटक, लटकती चाल।
चख चल चितवनि, चोरि चित लियो विहारीलाल॥

यहां गोपियों के रिझाने वाले बहुत से साधकों (साधनों) का वर्णन किया गया है—कृष्ण की भृकुटी का मटकना, पीताम्बर की चमक तथा मदमाती चाल और चंचल नेत्रों का चलाना। इनमें से एक भी गोपियों को रिझाने में पर्याप्त है किन्तु यहां इस कार्य के लिए अनेक साधक प्रस्तुत हैं।

यहाँ सभी उत्तम साधकों का वर्णन है।

असद्योग—जहां अनुत्तम या बुरे साधकों का वर्णन किया जाय।

ग्रह गृहीत पुनि बातवस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पिआइय बारुनी, कहो कौन उपचार॥

ग्रह का प्रभाव, बाई का होना, बिच्छू का मारना तथा शराब का पिला देना—यहां एक-से-एक बुरे साधक हैं।

सदसद्योग का समुच्चय—जहां सत् तथा असत् अच्छे या बुरे साधनों का समुच्चय हो।

दिन को दुतिमंद सु चंद सरोवर को अरबिन्द विहीन लखावै।
खल राज सभा गत सातहु ये लखि कंटक लौं हिय में चुभि जावै॥

यहां चन्द आदि शोभन तथा खल आदि अशोभन पदार्थों का एक ही साथ वर्णन किया गया है।

द्वितीय समुच्चय—जहां अनेक गुण या क्रियाओं अथवा गुण और क्रियाओं का एक साथ वर्णन किया जाय वहां द्वितीय समुच्चय होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वितीय प्रकार के भी तीन भेद होते हैं—गुण समुच्चय, क्रिया समुच्चय एवं गुण-क्रिया समुच्चय।

गुण समुच्चय—जहां अनेक गुणों का एक साथ वर्णन किया जाय।

पावस के आवत भये, स्याम मलिन नभ-थान।
रक्त भये पथिकन हृदय पीत कपोल तियान॥

यहां श्याम, रक्त और पीले गुणों के एक ही साथ वर्णन में गुणों का समुच्चय हुआ।

क्रिया समुच्चय—जहां अनेक क्रियाओं का वर्णन किया जाय।

हँसि-हँसि हेरति नवल तिय, मद के मद उमदाति।
बलकि-बलकि बोलति बचन, ललकि ललकि लपटाति॥

यहाँ हेरति, उमदाति, बोलति, बकति आदि अनेक क्रियाओं का समुच्चय है।

गुण-क्रिया समुच्चय—जहाँ गुणों एवं क्रियाओं दोनों का समुच्चय हो—

सित पंकज-दल छबिमयी, कोप भरे तुव नैन।
सत्रु दलन पर परतु हैं, और कलुष दुख दैन॥

यहाँ कलुष, गुण एवं परतु क्रिया दोनों का समुच्चय है।

अन्य उदाहरण—अनेक गुणों का—

क—आली तू ही बता दे इस विजन बिना मैं कहां आज जाऊं।
दीना, हीना, अदीना ठहर कर जहां शान्ति दूं और पाऊं॥ साकेत।

ख—पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी।
अधर भी हूँ और स्मित की चांदनी भी॥ यामा।

ग—तुम सुन्दर सुषमामयी कान्त कमनीया।
तुम रुचिर चारु बन गयी प्रकृति में माया॥ सुधीन्द्र।

द्वितीय समुच्चय और कारक दीपक—दोनों में अनेक क्रियाओं का एक ही साथ वर्णन होता है। दोनों का अन्तर यह है कि समुच्चय में सभी क्रियाओं का एक साथ वर्णन होता है तो कारक दीपक में क्रियाओं का क्रमशः वर्णन किया जाता है। कारक दीपक के मूल में अतिशयोक्ति नहीं होती किन्तु समुच्चय के मूल में अतिशयोक्ति रहती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एते हि गुणक्रिया यौगपद्ये समुच्चय प्रकारा नियमेन कार्यकारणकालनियम-विपर्ययरूपातिशयोक्तिमूलाः। दीपकस्य चातिशयोक्तिमूलत्वाभावः।

साहित्य-दर्पण पृ० २२१, १०।८५ विमला।

समाधि

आकस्मिक कारणान्तर के योग से कार्य का सुगमतापूर्वक सिद्ध हो जाना समाधि अलंकार है।

समाधि का अर्थ है अच्छी तरह से सिद्धि या कार्य का सुगमतापूर्वक या शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न हो जाना—

सम्यक् आधिः, आधानम् उत्पादनं समाधिः'

वालवोधिनी पृ० ७१६।

सम्यक् आधिः समाधि—गोविन्द ठक्कुर, प्रदीप पृ० ५५४।

अर्थात् बिना किसी प्रयास के कार्य का अनायास सम्पादन। इस अलंकार में कारणान्तर या अन्य कारण के अनायास आ पड़ने से कार्य का सुगमता-पूर्वक सम्पन्न होना वर्णित होता है। अतः आकस्मिक कारणान्तर के योग से कर्त्ता को कार्य की अनायास सिद्धि का होना समाधि अलंकार है। यह कार्य 'काकतालीयन्याय' से सम्पन्न होता है। कौवे के तालवृत्त पर बैठने से अकस्मात् ताल वृत्त के गिर जाने के समान किसी घटना की अचानक उपस्थिति को 'काकतालीयन्याय' कहते हैं। समाधि अलंकार में कारण 'काकतालीय-न्याय' से अनायास उपस्थित हो जाता है जिससे कार्य सुगमतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है। समाधि में दो कारण होते हैं—एक तो पहले ही वर्त्तमान रहता है, दूसरा आने वाला होता है। इसका सौन्दर्य या चमत्कार अनायास उपस्थित होने वाले कारण के द्वारा कार्य की सिद्धि में निहित रहता है। यह वाक्यन्यायमूलक अलंकार है। समाधि अलंकार में सहसा इच्छित या अभीष्ट फल की प्राप्ति से उत्पन्न होनेवाले आनन्द की भांति तोष का भाव होता है। समाधि अलंकार में कार्य की सम्पन्नता का श्रेय मूल कारण या प्रथम कारण को न होकर अचानक उपस्थित होने वाले कारणान्तर को ही होता है और उसी कारण पर इसका अलंकारत्व आश्रित रहता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रुय्यक—रुय्यक ने 'काकतालीयन्याय' का समावेश कर इस अलंकार के विवेचन में नवीन विचार का सन्निवेश किया तथा विषय को अधिक स्पष्टता प्रदान की। कारणान्तर के योग से कार्य की सुगमतापूर्वक सिद्धि ही समाधि है।

मम्मट एवं रुय्यक के पश्चात् इस अलंकार के स्वरूप-विकास में किसी प्रकार की नवीनता न आ सकी और इसका रूप व्यवस्थित हो गया। परवर्ती आचार्यों में शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ एवं दीक्षित ने मम्मट एवं रुय्यक के ही मत का अनुमोदन किया। विश्वनाथ ने दण्डी की भांति 'दैवयोग' का आश्रय ग्रहण किया। इन्होंने बताया कि 'दैवयोग' से किसी वस्तु के आ जाने पर प्रस्तुत कार्य का सुगमतापूर्वक सम्पन्न हो जाना ही समाधि है। अन्य आचार्यों के लक्षण भी अत्यन्त स्पष्ट हैं।

अप्पय दीक्षित—दीक्षित ने जयदेव के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है। उनका कहना है कि किसी व्यक्ति के द्वारा किसी कार्य को प्रारम्भ करने की इच्छा करने पर यदि अन्य कारण के आ जाने पर उस कार्य में सौकर्य आ जाय तो वहाँ समाधि अलंकार होगा। उन्होंने बताया कि यह अलंकार द्वितीय अलंकार का प्रतिपक्षी है तथा इसमें 'काकतालीयन्याय' से कारणान्तर की अनायास प्राप्ति होती है।

पंडितराज जगन्नाथ—पंडितराज[7] के अनुसार एक कारण से उत्पन्न होने वाले कार्य में अकस्मात् दूसरे कारण के आ जाने से जो सौकर्य होता है उसे समाधि अलंकार कहते हैं। इन्होंने इस सम्बन्ध में एक नवीन तथ्य यह प्रस्तुत किया है कि कारणान्तर के उपस्थित हो जाने में कार्य-सौकर्य कहीं तो अनायास सिद्धि में और कहीं सांग-सिद्धि में देखा जाता है। सांग-सिद्धि से इनका अभिप्राय अभीष्ट से अधिक की सिद्धि से है। 'सांगता' का उदाहरण देते हुए इन्होंने बताया है कि जब नतांगी ने प्रिय के नवसमागम को लोभ से ज्योंही स्वीकार किया कि उसी समय उसके ढीले आलिंगन को बादलों ने गम्भीर गर्जना के द्वारा अकस्मात् दृढ़ कर दिया।

नवप्रसंगं दयितस्य लोभादङ्गी करोतिस्म यदा नताङ्गी।
श्लथं तदालिङ्गनमम्बुवाहो निनादैर्घनता निनाय॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ बादलों की गुरुगर्जना से आलिङ्गन की 'सांगता' सिद्ध हो गयी है।

विश्वेश्वर पण्डित—विश्वेश्वर[1] पण्डित का समाधि विवेचन मम्मट से प्रभावित है।

उदाहरण—

क—प्रानप्रिया लखि पिय-गमन, कहै न कछु सकुचाय।
औचक ही घन गगन में, गरजे बरसे आय॥

प्रिय के विदेश-गमन पर नायिका संकोच वश कुछ नहीं कहती है किन्तु उसी समय अकस्मात् आकाश में बादल छाकर जोर से बरसने लगते हैं और नायक की यात्रा रुक जाती है। यहां बादल के अनायास बरसने में नायक की यात्रा का रुक जाना ही कारणान्तर के अनायास आ जाने से कार्य की सिद्धि में समाधि है।

ख—हरि चाह्यौ पग परन को, मानवती लखि बाम।
भई तड़ित घनस्याम में, निरखि तड़ित घनस्याम॥

ग—निरखन को तिय वदन छबि, पठई डीठि मुरारि।
उत ह्यां चपल समीर ने, घूँघट दियो उघारि॥

प्रत्यनीक

शत्रु का तिरस्कार करने में असमर्थ होने के कारण उसके सम्बन्धी का तिरस्कार करना प्रत्यनीक अलंकार है।

'प्रत्यनीक' शब्द प्रति + अनीक के योग से बना है जिसका अर्थ है सेना के प्रति या सेना का प्रतिनिधि। यहाँ लक्षणा से इसका अर्थ शत्रु का प्रतिनिधि हो जायगा। प्रति का अर्थ प्रतिनिधि एवं अनीक का अभिप्राय शत्रु से है। यदि कोई अशक्य व्यक्ति शत्रु को हानि पहुँचाने में असमर्थ होकर उसके निकट संबंन्धी को तिरस्कृत करे या हानि पहुंचाये तो ऐसी स्थिति में प्रत्यनीक अलंकार होगा। इसमें तिरस्कार का वास्तविक वर्णन न होकर कविकल्पना-प्रसूत होना चाहिए। यह श्लिष्ट अथवा अश्लिष्ट दोनों प्रकार का हो सकता है किन्तु श्लेष-युक्त होने से इसमें अधिक चमत्कार होता है। प्रत्यनीक में शत्रु के सम्बन्धी दो प्रकार के होते हैं—साक्षात् सम्बन्ध से एवं परम्परागत सम्बन्ध

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

से। जब शत्रु के साथ प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखने वाले का तिरस्कार किया जाय तो साक्षात् सम्बन्ध एवं शत्रु के सम्बन्धी के साथ सम्बन्ध रखने वाले का तिरस्कार करने में परम्परागत सम्बन्ध होगा। प्रत्यनीक में दो परस्पर विरोधी पदार्थों या व्यक्तियों का वर्णन किया जाता है जिनमें एक सबल होता है एवं दूसरा निर्बल। इसमें सबल या बलवान् पदार्थ निर्बल का तिरस्कार या पराभव कर देता है जिससे तिरस्कृत व्यक्ति उसका प्रतिकार या बदला चुकाना चाहता है। चूंकि निर्बल व्यक्ति के लिए बलवत्तर व्यक्ति या पदार्थ का पराभव सम्भव नहीं होता अतः वह उसके निकट सम्बन्धी या उसके प्रतिनिधि का तिरस्कार कर मनःतोष प्राप्त करता है। इस प्रकार पराजित व्यक्ति यह समझने लगता है कि शत्रु के सम्बन्धी का तिरस्कार कर मैंने वस्तुतः शत्रु का ही अहित किया है।

इस अलंकार के मूल में मनोविज्ञान की 'हीनभावना' या 'इनफेरियोरिटी कम्प्लेक्स' होती है। सबल शत्रु से पराजित व्यक्ति उसके पक्ष वालों को दबाने का प्रयास करता हुआ अपनी हीन मनोवृत्ति की तृप्ति करता है तथा वह निर्बल व्यक्तियों को पीड़ित कर अपनी मानसिक अशान्ति की परितृप्ति में समर्थ होता है।

क—साक्षात् सम्बन्ध—

मारि-मारि दृगवान, जीत्यौ कामहिं स्याम तुम।
तातें वह दुख मान, तव राधा को देत दुख॥

कृष्ण के कटाक्ष से पराजित हो जाने पर कामदेव कृष्ण से बदला लेने में असमर्थ है अतः वह कृष्ण की प्रेमिका राधा को दुखित कर रहा है। यहां राधा और कृष्ण के साक्षात् सम्बन्ध का तिरस्कार वर्णन है।

ख—परंपरागत सम्बन्ध—

तो मुख छवि सों हारि जग, भयो कलंक समेत।
सरद इंदु अरविंद मुखि! अरविंदनि दुख देत॥

नायिका के मुख-कमल से हार कर चन्द्रमा उसका तिरस्कार करने में असमर्थ होकर उसके समान (नायिका के समान) कमलों को दुख दे रहा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। नायिका के मुख-कमल के साथ कमलों को दुख देना समानता के कारण परम्परागत सम्बन्ध का कथन हुआ।

ग—कहीं-कहीं नाम सम्बन्ध में भी प्रत्यनीक अलंकार देखा जाता है—

तेज मंद रबि ने कियो, बसन चल्यो तेहि संग।
दुहुन नाम एकै समुझि, जारत दीप पतंग॥

अर्थापत्ति

दण्डापूपिकान्याय से अन्य अर्थ की सिद्धि होने पर अर्थापत्ति अलंकार होता है।

अर्थापत्ति का अर्थ है अर्थ का आ जाना (आपत्ति) इसमें 'दण्डापूपिका न्याय' से अन्य अर्थ का ज्ञान होता है। डंडे में खोंस कर पूआ रखा गया जिसे चूहे ने खा लिया। दूसरे दिन पूछने पर रखने वाले ने कह दिया कि चूहा डंडा खा गया। जब चूहे ने डंडा खा लिया तब वह पूआ भी खा गया होगा; क्योंकि चूहे के द्वारा डंडा खाने की संभावना कम है। यदि उसके लिए डंडा खाना संभव था तो अनायास ही यह कल्पना की जा सकती है कि वह पूआ भी खा गया होगा। इस प्रकार एक प्रधान अर्थ की सिद्धि से दूसरे अर्थ की भी सिद्धि हो जाने में अर्थापत्ति अलंकार होता है।

अर्थापत्ति[१२] अलंकार की कल्पना मीमांसा-दर्शन के अन्तर्गत 'अर्थापत्ति' प्रमाण के आधार पर की गयी है। अर्थापत्ति प्रमाण में अनुपपद्यमान अर्थ को देखकर उसके उपपादक अर्थ की कल्पना की जाती है। जैसे 'पीनोदेवदत्तो दिवा न भुंक्ते' अर्थात् मोटा देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता। यहाँ मोटा देखकर देवदत्त के रात्रि-भोजन की अनायास कल्पना कर ली जाती है। क्योंकि दिन में न खाने वाले का मोटा होना रात्रि-भोजन के बिना संभव नहीं है। उसी प्रकार अर्थापत्ति अलंकार में भी एक अर्थ के सिद्ध होने पर दूसरा अर्थ भी अनायास सिद्ध हो जाता है। इस अलंकार में वास्तविक अर्थापत्ति न होकर कविकल्पना-प्रसूत चमत्कार का होना आवश्यक है। उक्ति में सौन्दर्य होने पर ही इसे अलंकार माना जा सकता है। श्लिष्ट पदों के प्रयोग से इसमें अधिक चमत्कार होता है। इस अलंकार के निर्माण में 'कैमुतिकन्याय' का भी आधार ग्रहण किया गया है। कैमुतिक या कैमुत्यन्याय में इस प्रका

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का वर्णन होता है कि जब किसी ने उतना बड़ा काम या दुष्कर कार्य कर दिया तो उसके लिए यह सुगम या छोटा कार्य क्या है ? इस अलंकार में यह दिखाया जाता है कि जब किसी ने प्रधान कार्य या कठिन कार्य को सिद्ध कर लिया तो उसके लिए सुगम या गौण कार्य की सिद्धि अनायास हो जाती है।

उदाहरण—

क—जीत्यौ जब चंदहिं अमंद मुख तेरो,
तब 'चिन्तामनि' मुकुर, सरोज सनमाने को ॥

जब नायिका के मुख ने चन्द्रमा को जीत लिया तब चिन्तामणि आईना और कमल की बात क्या ?

अर्थात चन्द्रमा को जीत लेने पर इनके जीते जाने की बात अनायास सिद्ध हो जाती है।

ख—सहजहिं पान कियो प्रभू दावानल कौ आप।
नाथ कठिन कह मेटिबौ, सेवक कौ संताप ॥

जिसने दावानल को आसानी से पी लिया है उसके लिए भक्तों का ताप दूर करना और भी सहज है।

ग—उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ?
जन कर जननी भी जान न पाई जिसको। साकेत ॥

यहां यह दिखलाया गया है कि भरत को जन्म देने वाली उसकी जननी भी जब उसका आशय नहीं जान सकी तब अन्य कैसे जान सकेंगे। यहां अर्थ स्वतः सिद्ध हो जाता है कि अन्य व्यक्ति भरत की थाह नहीं पा सकते।

काव्यलिंग

जहां वाक्यार्थ या पदार्थ किसी कथन का कारण हो तो वहां काव्यलिङ्ग अलंकार होता है।

काव्यलिङ्ग में काव्य और लिङ्ग दो शब्द हैं—लिङ्ग का अर्थ है कारण या हेतु। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ काव्य का कारण। 'काव्य के कारण' से आशय यह है कि इस प्रकार के कारण का उपयोग केवल काव्य में किया जाता है। तर्कशास्त्र में कार्य और कारण का वर्णन होता है किन्तु उसी कार्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

और कारण में चमत्काराधिक्य के कारण (उक्तिवैचित्र्य के समावेश से) काव्यलिङ्ग अलंकार होता है। इस अलंकार में जिस बात को सिद्ध करना होता है उसका कारण वाक्य के अर्थ में अथवा पद के अर्थ में दे दिया जाता है। इस प्रकार इसके दो प्रकार होते हैं—वाक्यार्थगत काव्यलिंग एवं पदार्थगत काव्यलिङ्ग। वाक्यार्थगत वहां होता है जहां पूरे वाक्य का अर्थ किसी कथन का कारण हो तथा पदार्थगत काव्यलिंग में एक पद के अर्थ में कारण कहा जाता है।

यह तर्कन्यायमूलक अलंकार है। इसमें कवि वर्णित विषय को पुष्ट करने के लिए वाक्य या पद का कारण के रूप में वर्णन करता है। काव्यलिङ्ग में कवि-कल्पना के द्वारा ऐसे कारण का वर्णन किया जाता है जो तर्क के हेतु से भिन्न होता है।

काव्यलिङ्ग का अर्थ काव्याभिमतलिङ्गम् है। अर्थात् काव्यशास्त्र में अभिमत लिंग या हेतु। इस अलंकार में कवि-कल्पनासंभूत अर्थ की सिद्धि के लिए हेतु का कथन किया जाता है। काव्यलिंग का हेतु लौकिक या तर्कशास्त्र के हेतु से सर्वथा पृथक् एवं चमत्कारपूर्ण होता है। लौकिक या तार्किक हेतु में चमत्काराभाव होता है। काव्यलिङ्ग में यद्यपि कि शास्त्रीय लिङ्ग का आश्रय ग्रहण किया जाता है किन्तु इसमें चमत्कार का हाथ होने से रमणीयता का समावेश होता है। कवि अपने कथन की पुष्टि के लिए तर्क का आश्रय ग्रहण कर उसका (अपने कथन का) समर्थन करता है।

काव्यलिङ्ग के मूल में अपने काव्य का समुचित तर्क द्वारा समर्थन निहित रहता है। इसमें कवि किसी कथन की सिद्धि के लिए उसका कारण उपस्थित करता है जो चमत्कारपूर्ण एवं कविकल्पित होता है।

क—हठ न हठीली करि सकै यह पावस ऋतु पाय।
आन गाँठ घुटि जाय ज्यों मान गाँठ छुटि जाय॥ बिहारी।

मानिनी के प्रति सखी की उक्ति है—वर्षा ऋतु में अन्य वस्तुओं की गाँठ कड़ी हो जाती है (घुट जाती है) किन्तु मान की गाँठ छूट जाती है।

यहाँ पहले वाक्य में जो बात कही गई है—'वर्षा ऋतु में मानिनी मान नहीं कर सकती ?' उसका कारण नीचे के पूरे वाक्य में दिया गया है—इस ऋतु में अन्य गाँठें कड़ी हो जाती हैं किन्तु मान की गाँठ ढीली पड़ जाती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—और भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से जहाँ
झूमते गज से विचरते हो, वहीं
आह है, उन्माद है, उत्ताप है । ग्रन्थि—पंत ।

प्रेम को वेदना के हाथों से निर्मित सिद्ध करने के लिए चतुर्थ पंक्ति में कारण कथित है । जहाँ प्रेम होगा वहाँ आह, उन्माद और उत्ताप भी होंगे ।

ग—क्षमा करो इस भाँति न तुम तज दो मुझे,
स्वर्ण नहीं हे राम ! चरणरज दो मुझे ।
जड़ भी चेतन मूर्त्ति हुई पाकर जिसे,
उसे छोड़ पाषाण भला भावे किसे ॥ साकेत ।

यहाँ सोने को छोड़कर पदरज मांगने में तृतीय पंक्ति में इसका कारण कथित है ।

पदार्थगत—

उदाहरण—

क—जनि कछु और उपाय करु, रहु 'रसाल' निरसंक ।
हिय-तम नासन को धरो, राधा-वदन-सयंक ॥

यहाँ राधा के मुख-चन्द्र को हृदय के अंधकार को नष्ट करने का कारण वतलाया गया है । 'राधा-वदन' एक समस्त पद है । अतः एक पद के अर्थ में कारण के निहित रहने से यहाँ पदार्थगत काव्यलिंग हुआ ।

ख—हिय-वियोग-तम टारिहै, बिधु-वदनी यह नारि ।
यहाँ बिधु-वदनी' शब्द में अलंकार है ।

हृदय में छाये हुए विरह के अंधकार को वह चन्द्रमुखी नायिका ही दूर कर सकती है । यहाँ पूर्वार्द्ध के कथन का कारण उत्तरार्द्ध के 'बिधु-वदनी' पद में उपन्यस्त है ।

काव्यलिंग और अर्थान्तरन्यास—काव्यलिंग एवं अर्थान्तरन्यास दोनों में ही समर्थ्य समर्थक भाव होता है । काव्यलिंग अलंकार में किसी कथन का समर्थन किसी विशेष कारण के द्वारा होता है जबकि अर्थान्तरन्यास में सामान्य का विशेष के साथ एवं विशेष का सामान्य के साथ समर्थन होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सामान्य का विशेष के साथ एवं विशेष का सामान्य के साथ समर्थन होता है। काव्यलिंग में कार्य-कारण भाव की प्रधानता होती है तो अर्थान्तरन्यास में सामान्य-विशेष भाव की। काव्यलिङ्ग में दोनों ही वाक्य प्रस्तुत होते हैं जबकि अर्थान्तरन्यास का एक वाक्य प्रस्तुत एवं दूसरा अप्रस्तुत होता है। इनका दूसरा अन्तर यह है कि काव्यलिङ्ग में बिना कारण दिये वाक्य के अर्थ की सिद्धि नहीं होती जबकि अर्थान्तरन्यास के दोनों ही वाक्य स्वतन्त्र तथा अपने में पूर्ण होते हैं किन्तु काव्यलिङ्ग के दोनों ही वाक्य परतन्त्र होते हैं और एक के बिना दूसरे का अर्थ नहीं जाना जाता।

काव्यलिङ्ग और हेतु—हेतु अलंकार में कारण और कार्य में भेद नहीं रहता है किन्तु काव्यलिङ्ग में बिना कारण के वाक्यार्थ की सिद्धि नहीं होती।

काव्यलिङ्ग और अनुमान—अनुमान में ज्ञापक होता है और काव्यलिङ्ग में निष्पादक हेतु। दोनों में ही किसी अर्थ की सिद्धि के लिए कारण का निर्देश होता है किन्तु काव्यलिंग में कार्य-कारण व्यंग्यरूप में उपस्थित होते हैं और अनुमान में साध्य और साधन वाच्य रूप से उपन्यस्त किये जाते हैं।

काव्यलिङ्ग और परिकर—परिकर अलंकार में पहले पदार्थ या वाक्यार्थ का ज्ञान होता है इसके बाद वाच्य रूप से पदार्थ या वाक्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है; किन्तु काव्यलिङ्ग में पदार्थ और वाक्यार्थ स्वयं समर्थनीय वाक्यों के कारणस्वरूप उपस्थित होते हैं।

अर्थान्तरन्यास

जहाँ सामान्य का विशेष के साथ अथवा विशेष का सामान्य के साथ समर्थन किया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है।

अर्थान्तरन्यास का अर्थ है अर्थान्तर अर्थात् अन्य अर्थ का न्यास या रखना। इसमें प्रस्तुत अर्थ के समर्थन या पुष्टि के लिए अन्य अर्थ या अर्थान्तर का न्यास किया जाता है, या किसी कथ्य की पुष्टि के लिए अन्य कथन को रखा जाता है। इसमें दो बातें होती हैं—सामान्य और विशेष। सामान्य का अर्थ है बहुदेशव्यापी अर्थात् जिसका विस्तार बहुत बड़ा हो या जिसका क्षेत्र विस्तृत हो और विशेष का अर्थ अल्पदेशव्यापी होता है अर्थात् जिसका क्षेत्र छोटा हो। इस अलङ्कार में सामान्य बात कह कर उसका समर्थन विशेष बात

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

से एवं विशेष बात का समर्थन सामान्य कथन से किया जाता है। किसी कथन की पुष्टि के लिए दूसरी बात उपस्थित की जाती है। जहाँ सामान्य का सामान्य से एवं विशेष का विशेष से समर्थन हो वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार न हो सकेगा। इसमें सामान्य बात की पुष्टि के लिए विशेष बात का होना आवश्यक है तथा इसे दो प्रकार से उपस्थित किया जाता है—साधर्म्य के द्वारा और वैधर्म्य से। यह सादृश्यगर्भ अलङ्कारों के अन्तर्गत गम्यौपम्याश्रय वर्ग का अलङ्कार है। इसमें दो स्वतन्त्र वाक्य होते हैं किन्तु दोनों में समर्थन के द्वारा सादृश्य-स्थापन होता है। सामान्य वाक्य एवं विशेष वाक्य परस्पर निरपेक्ष होते हैं किन्तु एक दूसरे की पुष्टि कर उनमें समानता स्थापित की जाती है। यह सादृश्य शाब्द न होकर आर्थ होता है अर्थात् इसमें समानता सूचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता किन्तु अर्थ-बल से ही साम्य-स्थापन होता है। अर्थान्तरन्यास में प्रथम वाक्य की पुष्टि के लिए ही द्वितीय वाक्य की योजना की जाती है तथा द्वितीय वाक्य प्रथम वाक्य की प्रामाणिकता का समर्थन कर उसकी दृढ़ प्रतीति कराता है और उसकी प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं रहने देता।

सामान्य और विशेष के समर्थन के लिए कवि सामान्य और विशेष रूप दो वाक्यों की योजना करता है जो परस्पर स्वतन्त्र होते हैं किन्तु एक दूसरे के समर्थन के द्वारा इसमें सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इस अलङ्कार के प्रयोग में कवि की सफलता उसके व्यापक अनुभवगम्य ज्ञान पर निर्भर करती है। उसका लोकानुभव जितना ही सूक्ष्म और व्यापक होगा वह उतना ही अधिक चमत्कार उत्पन्न करने में सक्षम होगा।

अर्थान्तरन्यास के मूल तत्त्व—

क—एक पदार्थ के द्वारा अन्य पदार्थ का समर्थन—

ख—इसमें दो अर्थ होते हैं किन्तु दोनों परस्पर भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं।

ग—प्रथम पदार्थ द्वितीय से भिन्न होता है किन्तु, द्वितीय की सङ्गति प्रथम से हो जाती है।

घ—इसमें समर्थनीय वाक्य की पुष्टि के लिए कारण निर्देश सहित 'हि' शब्द का वैकल्पिक प्रयोग वांछनीय होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ङ—यह गम्यौपम्यसादृश्यमूलक अलङ्कार है। अर्थात् इसके मूल में सादृश्य होता है किन्तु वह शाब्द न होकर आर्थ या व्यंग्य होता है।

च—इसमें सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन साधर्म्येण अथवा वैधर्म्येण दोनों ही स्थितियों में होता है।

छ—यह कविकल्पना पर आश्रित न होकर कवि के अनुभवजन्य लोक-ज्ञान एवं जीवनानुशीलन पर स्थित रहता है।

इस अलंकार के द्वारा कवि जीवन के सत्य का उद्घाटन कर चमत्कार का प्रस्फुटन करता है।

अर्थान्तरन्यास की चार स्थितियाँ होती हैं—

क—सामान्य का विशेष से साधर्म्य द्वारा समर्थन—

ख—सामान्य विशेष से वैधर्म्य द्वारा समर्थन—

ग—विशेष का सामान्य से साधर्म्य द्वारा समर्थन—

घ—विशेष का सामान्य से वैधर्म्य द्वारा समर्थन—

भेद—अर्थान्तरन्यास अलंकार के मुख्य चार प्रकार होते हैं इनका उल्लेख आरम्भ में किया जा चुका है।

प्रथम अर्थान्तरन्यास—इसमें सामान्य का विशेष से साधर्म्य द्वारा समर्थन होता है।

गुन ग्राहक के पास ही होत गुनी कौ मान।
निकट जौहरी के खुलत जौहर रतन निदान॥

यहाँ पूर्वार्द्ध में 'गुणग्राहक के पास ही गुणी का आदर होता है' सामान्य वाक्य है।

इसका समर्थन उत्तरार्द्ध के विशेष वाक्य द्वारा किया गया है—जौहरी के पास ही रत्न की वास्तविकता प्रकट होती है।

सामान्य का विशेष से वैधर्म्य द्वारा समर्थन—

कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊँचो चढ़ै, अन्त नीच को नीच॥

'कोई कोटि उपाय क्यों न करे किन्तु किसी के स्वभाव में अन्तर नहीं आ सकता'। पूर्वार्द्ध का यह वाक्य सामान्य है साथ ही निषेधात्मक भी। इसका समर्थन विशेषवाक्य नल के द्वारा किया गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विशेष का सामान्य से साधर्म्य द्वारा समर्थन—

उड़ाती है तू घर में कीच।
नीच ही होते हैं बस नीच॥ साकेत।

यहाँ मंथरा को संबोधित कर कैकेयी कह रही है। पहला चरण विशेष है और दूसरा सामान्य। यहाँ यह कहा गया है कि दुष्ट व्यक्ति नीच होते हैं। यह समर्थन साधर्म्य द्वारा किया गया है।

विशेष का सामान्य से वैधर्म्य द्वारा समर्थन—

हरि ल्यायो हरि कल्पतरु, जीति इन्द्र को ताहिं।
यह अचरज न बड़ेन को, है दुर्लभ कछु नाहिं॥

यहाँ पूर्वार्द्ध विशेष वाक्य है तथा विध्यात्मक है, इसका समर्थन उत्तरार्द्ध के निषेधात्मक वाक्य से किया गया है। निषेध है बड़ों के लिए यह आश्चर्य की बात नहीं है। उन्हें कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

विकस्वर

विशेष का सामान्य से समर्थन कर पुनः उसका विशेष द्वारा समर्थन करना विकस्वर अलंकार है।

विकस्वर का अर्थ है विकसनशील—(वि + कस् + गतौ + वरच्) इस अलंकार में विशेष अर्थ या कथन का सामान्य कथन से समर्थन कर पुनः उसका विशेष कथन द्वारा समर्थन किया जाता है। अर्थात् विशेष कथन का सामान्य अर्थ से किये गए समर्थन को असन्तोषप्रद मान कर उसके स्पष्टीकरण के लिए दूसरे विशेष अर्थ के द्वारा उसका समर्थन किया जाता है। यह समर्थन दो प्रकार से किया जाता है उपमा के द्वारा अथवा अर्थान्तर-न्यास से। इस अलंकार में तृतीय वाक्य सदा विशेष हुआ करता है और उसमें इव आदि उपमावाचक एवं हि आदि अर्थान्तरन्यासवाचक शब्दप्रयुक्त होते हैं।

विकस्वर के भेद—उपमा रीति एवं अलंकार रीति के कारण इसके दो प्रकार होते हैं—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपमा विधि—

रत्नजनक हिमवान के कहियत हिम न कलंक।
छिपत गुणन में दोष इक ज्यों ससि-किरन ससंक॥

यहाँ विशेष कथन है "वहुत से रत्न को उत्पन्न करनेवाले हिमालय में बर्फ कलङ्क का कारण नहीं बन सकता।" इसका समर्थन सामान्य कथन के द्वारा किया गया है कि वहुत से गुणों में एक दोष छिप जाता है। पुनः इस कथन का विशेष कथन से समर्थन है, जैसे चन्द्रमा की किरणों में कलंक छिप जाता है। यह कथन उपमा विधि का है।

अर्थान्तरन्यास विधि—

काक! कर्णकटु-शब्दरहित तू बैठा रह स्वच्छन्द अभी।
आम्रलता मकरन्द पान कर, पिक समझेंगे तुझे सभी॥
स्थल-प्रभाव से सभी वस्तु क्या धन्य नहीं हो जाती है।
नृप ललाट पर पंक-बिन्दु मृगमद ही जानी जाती है।

यहाँ सामान्य कथन का अर्थान्तरन्यास-रीति से विशेष कथन के द्वारा समर्थन है।

प्रौढोक्ति

जो उत्कर्षक का कारण न हो उसे उसका (उत्कर्ष) कारण कल्पित करना प्रौढोक्ति अलंकार है।

प्रौढोक्ति का अर्थ है बढ़ी हुई उक्ति। इस अलंकार में उत्कर्ष के कारण या हेतु को बढ़ा कर कहा ज़ाता है तथा जो उत्कर्ष का कारण नहीं हैं उसे भी उसका कारण मान लिया जाता है। इस अलंकार में अतिशयता का भाव रहता है तथा अयोग्य को किसी कार्य के योग्य सिद्ध किया जाता है। कवि विशेष भावस्थिति में किसी अयोग्य पदार्थ का अतिशयतापूर्ण वर्णन कर उसे किसी कार्य के योग्य सिद्ध करता है। इसमें वस्तु की योग्यता में ही अतिशयता का भाव सन्निहित रहता है।

उदाहरण—

गंगनीर विधु-रुचि झलक, मृदु मुसुकानि उदोति।
कनक भौन के दीप लौं, जगमगाति तन जोति॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ शरीर के प्रकाश का जो हेतु नहीं है उसे भी उसका हेतु मान लिया गया है।

ललित

जहाँ वर्णनीय वृत्तान्त का वर्णन न कर उसकी छाया का वर्णन किया जाय वहाँ ललित अलंकार होता है।

ललित का अर्थ है ईप्सित, इच्छित या सुन्दर। इस अलंकार में प्रस्तुत धर्मी का वर्णन न कर उसके प्रतिबिम्बभूत अप्रस्तुत धर्मी का वर्णन किया जाता है।

प्रस्तुत अर्थ का शब्दानुपादान करने पर भी यदि आर्थ अभेद हो तो वह ललित अलंकार न होकर निदर्शना ही होगी। अतः ललित का अन्तर्भाव निदर्शना में ही उचित है। ललित निदर्शना से सर्वथा भिन्न अलंकार है। इसमें प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत विषयों का वर्णन न कर उनके प्रतिबिम्ब का ही वर्णन किया जाता है या इसमें उद्दिष्ट पदार्थ की केवल झलक मिलती है। इस अलंकार के मूल में गोपन का भाव रहता है जिसे वक्ता गोपनीय होने के कारण सबके समक्ष प्रकट नहीं करता।

उदाहरण—

लिखत सुधाकर गा लिखि राहू।
विधिगति बाम सदा सब काहू॥ रामायण।

यहाँ राम के राज्याभिषेक के न होने एवं उनके वन-गमन का कथन न कर सुधाकर और राहु के लेखन में प्रस्तुतवृत्तान्त की छाया का वर्णन है।

उल्लास

एक के गुण-दोष से दूसरे को गुण और दोष की प्राप्ति का होना उल्लास अलंकार है।

उत् और लस के योग से उल्लास शब्द बना है जिसका अर्थ है प्रबल (उत्) लस (सम्बन्ध) अर्थात् प्रबल सम्बन्ध इस अलंकार में एक वस्तु के प्रबल गुणदोष से दूसरे को गुण या दोष प्राप्त होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसकी चार स्थितियों के आधार पर चार प्रकार होते हैं—

क—गुण से गुण की प्राप्ति

ख—दोष से दोष की प्राप्ति

ग—गुण से दोष की प्राप्ति

घ—दोष से गुण की प्राप्ति

भेद—उल्लास के चार भेद कथित हैं—

प्रथम उल्लास—एक के गुण से अन्य के गुण की प्राप्ति का वर्णन—

मज्जन फल देखिय ततकाला। काक होहि पिक बकहु मराला॥

रामायण।

यहाँ स्नान (मज्जन) से काक (कौवे) का कोयल एवं वक (बगुला) का मराल (हंस) होना वर्णित है। इसमें गुण से गुण की प्राप्ति का वर्णन है। रामचरित रूपी तालाब में स्नान करने पर ऐसा परिवर्त्तन होता है।

द्वितीय उल्लास—अन्य के दोष से अन्य को दोष का होना—

संगति को गुन साँच है, कहैं जु गुनी 'रसाल'।
कुटिल कूबरी संग ते, भये त्रिभंगी लाल॥

कुटिल कुब्जा के दोष से कृष्ण का त्रिभंगी होना दोष से दोष की प्राप्ति है।

तृतीय उल्लास—गुण से दोष की प्राप्ति :—

बरसे बारिद के लता, तृन तरु सब हरियात।
भाग लखो या आक को, जलहू सों जरिजात॥

बादल के बरसने पर भी आक का जलजाना गुण से दोष का होना है।

चतुर्थ उल्लास—दोष से गुण का होना—

खल परिहास होत हित मोरा॥ रामायण।

दुष्टों की हँसी से कल्याण का होना–दोष से गुण की प्राप्ति का वर्णन है।

अवज्ञा

जहाँ एक के गुण-दोष से दूसरे के गुण-दोष का होना दिखाया जाय वहाँ अवज्ञा अलंकार होता है।

अवज्ञा का अर्थ है अनादर। इस अलंकार में एक के गुण-दोष का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दूसरा अनादर या तिरस्कार करता है या उन्हें ग्रहण नहीं करता। यह उल्लास का विलोम या विरोधी है।

भेद—इसके दो भेद हैं—

प्रथम अवज्ञा—गुण से गुण का न होना—

मेरे दृग बारिद बृथा, बरसत वारि प्रवाह।
उठत न अंकुर नेह को, तौ उर ऊसर माँह॥ मतिराम।

यहाँ एक के प्रेम-भाव का दूसरे पर प्रभाव न पड़ना वर्णित है। यहां गुण से गुण का न होना कथित है।

द्वितीय अवज्ञा—दोष से दोष का न होना—

कहा भयो जो तजत है, मलिन मधुप दुख मानि।
सुबरन बरन सुबास जुत, चम्पक लहै न हानि॥

यहाँ भौंरे के त्याग से चंपा की हानि का न होना एक के दोष से अन्य के दोष का न होना है।

लेश

दोष को गुण या गुण को दोष कल्पित करना लेश अलंकार है।

लेश का अर्थ है अंश या भाग। इसमें गुण-युक्त पदार्थ के एक अंश में दोष एवं दोष-युक्त वस्तु के एक भाग में गुण दिखाया जाता है।

भेद—गुण का दोषरूप में तथा दोष का गुण रूप में कथन की दृष्टि से लेशालंकार के दो भेद होते हैं।

प्रथम लेश—गुण का दोष रूप में कथन—

कैद होत सुक सारिका, मधुरी बानि उचारि॥

मीठी वाणी बोल कर शुक (सुग्गे) और सारिका (मैना) का कैद होना गुण का दोष रूप में वर्णन है।

द्वितीय लेश—दोष का गुण रूप में कथन—

'रहिमन' विपदा हूँ भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय॥

यहाँ विपत्ति को स्वागत कर दोष का गुण रूप में वर्णन है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

मुद्रा

जहाँ प्रस्तुत अर्थ को सूचित करने वाले पदों के द्वारा एक सूचनीय अर्थ की सूचना करायी जाय तथा उसमें किसी व्यक्ति अथवा स्थान का भी नाम आ जाय तो वहाँ मुद्रालंकार होता है।

मुद्रा का अर्थ मुहर है। यहाँ मुहर से तात्पर्य नामांकित मुहर का है। जिस प्रकार मुहर किसी व्यक्ति का सम्बन्ध सूचित करती है उसी प्रकार मुद्रा अलंकार में प्रस्तुत अर्थ को सूचित करनेवाले पदों से सूचनीय अर्थ की भी सूचना मिलती है। इसमें सूचनीय अर्थ के साथ ही साथ किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु अथवा शास्त्रीय शब्दों के भी नाम आ जाते हैं।

क—कत लपटइयत मोगरे, सोनजुही निसिसैन।
जिहि चंपक बरनी किये गुल्लाला रँग नैन ॥ बिहारी।

यहाँ लपटा, मोगरा, सोनजुही, निसिसैन (रजनीगंधा), चंपा एवं गुल्लाला आदि फूलों के भी नामों की सूचना है।

ख—करुणे क्यों रोती है?
'उत्तर' में और अधिक तू रोई।
मेरी विभूति है जो
उसको 'भवभूति' क्यों कहे कोई ॥ साकेत।

यहाँ उत्तर और भवभूति शब्दों से उत्तररामचरित एवं महाकवि भवभूति की सूचना प्राप्त होती है।

ग—पीपर पाकर तार जामन फलसा आमला।
सेव कदम कचनार, पीपर रत्ती तू न तज ॥

तद्गुण

जहाँ अपने गुण का त्याग कर निकटवर्त्ती उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के गुण को ग्रहण किया जाय वहाँ तद्गुण अलंकार होता है।

तद्गुण का अर्थ है उसका गुण। इस अलंकार में एक पदार्थ अपना गुण छोड़कर अपने पास के अधिक गुणवाले दूसरे पदार्थ का गुणग्रहण कर लेता है। इस अलंकार की कल्पना लोकन्याय या लोक-सिद्ध-व्यवहार पर हुई है। लौकिक व्यवहार में प्रबल वस्तु के गुण को हीन वस्तु ग्रहण कर लेती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस अलंकार का भी यही आधार है। इसमें परस्पर प्रभावित करनेवाले दो पदार्थों का कथन किया जाता है जिनमें एक प्रबल या उत्कृष्ट गुणवाला होता है एवं दूसरा अल्पगुणशाली। इनमें से एक का गुण अन्य की अपेक्षा उत्कृष्टतर होता है। बलवत्तर पदार्थ के गुण को अल्पगुणवाला पदार्थ ग्रहण कर अपने गुण का त्याग कर देता है। इस अलंकार में वर्णनीय उभय पदार्थों के गुण, रूप एवं रंग भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। उत्कृष्टतर गुणवाले पदार्थ के संसर्ग में आने पर अल्पगुणवाला पदार्थ प्रभावित होता है अर्थात् उससे अभिभूत होकर अपने गुण का त्याग करते हुए उसका गुण ग्रहण कर लेता है। बलवत्तर पदार्थ उसके गुण को तब तक तिरोहित किये रहता है जब तक कि दूसरा पदार्थ उसका संसर्ग नहीं छोड़ता।

लै चुभकी चलि जात जित, जित जल-केलि अधीर।
कीजत केसर नीर से, तित-तित के सर नीर॥ बिहारी।

यहाँ सरोवर का अपना रंग त्यागकर नायिका के शरीर में लगे हुए केसर के रंग को ग्रहण करना तद्गुण अलंकार है।

तद्गुण और उल्लास—तद्गुण में एक वस्तु के गुण का अन्य वस्तु द्वारा ग्रहण किया जाता है किन्तु उल्लास में एक के गुण से अन्य में गुण का आधान या उत्पादन होता है। उल्लास में एक के गुण से अन्य में नवीन गुण उत्पन्न होता है।

अतद्गुण

निकटवर्ती उत्कृष्ट वस्तु के गुण को ग्रहण न करने में अतद्गुण अलंकार होता है।

यह अलंकार तद्गुण का विरोधी है। इसमें अल्पगुणवाली वस्तु उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के समीप रहकर भी उसके गुण को ग्रहण नहीं करती। यह लोकन्यायमूलक अलंकार है। अर्थात् इसकी कल्पना के मूल में लौकिक-सिद्धान्त का हाथ है।

लाल रंग गुन में गुही फटिक माल छबि देत।
तऊ न लीनी ललिमा, रही सेत की सेत॥

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्फटिक की माला लाल रंग के डोरे में गूँथी जाने पर भी उसकी लालिमा ग्रहण न कर सकी, अतः अतद्‌गुण हुआ।

मीलित

तादृश वस्तु में अन्य वस्तु के छिप जाने पर किसी प्रकार की भिन्नता का न रहना मीलित अलंकार है। मीलित का अर्थ है मिल जाना। जब सादृश्य के कारण एक वस्तु दूसरी वस्तु में मिल जाय और दोनों में किसी प्रकार का भेद लक्षित न हो सके तो वहां मीलित अलंकार होता है। इसमें मुख्य एवं गौण दो वस्तुएँ होती हैं तथा दोनों में गुण-साम्य होता है। समान गुण के कारण गौण पदार्थ मुख्य पदार्थ में मिलकर तिरोहित हो जाता है। दोनों वस्तुओं का समान धर्म या तो स्वाभाविक होता है या आगन्तुक। यह लोक-न्यायमूलक अलंकार है।

बरन बास, सुकुमारता, सब बिध रही समाय।
पँखुरी लगी गुलाब की, गाल न जानी जाय॥ विहारी।

रस, सुगंध और कोमलता की समानता से नायिका के कपोल पर लगी हुई गुलाब की पँखुरी का ज्ञान नहीं होता और वह गाल से मिल कर भेद-रहित हो जाती है।

केसरिया-पट कनक तन, कनकाभरन सिंगार।
गत केसर केदार में, जानी जात न दार॥ दास।

तद्‌गुण और मीलित—दोनों में दो पदार्थों का वर्णन होता है और मुख्य पदार्थ (बलवत्तर) गौण या निर्बल पदार्थ को अभिभूत कर लेता है। तद्‌गुण में अपने गुण का त्यागकर अन्य के गुण का ग्रहण होता है पर मीलित में उत्कृष्ट-गुणवाली वस्तु में अल्पगुणवाली वस्तु का तिरोधान होता है। मीलित में प्रभावशाली पदार्थ अपने प्रभावाधिक्य के कारण अन्य का गोपन कर लेता है अर्थात् गौण पदार्थ उसे स्वतः स्वीकार नहीं करता पर तद्‌गुण में गौण पदार्थ निकटवर्त्ती प्रभावशाली पदार्थ के गुण को अंगीकार कर लेता है। इनमें अन्य अन्तर यह होता है कि मीलित में दोनों पदार्थ तुल्य गुणवाले होते हैं पर तद्‌गुण में तिरोहित करने वाले पदार्थ का गुण भिन्न होता है। अर्थात् इसमें दो भिन्न गुणवाले पदार्थ रहते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मीलित और सामान्य—दोनों में ही दो ऐसे पदार्थों का वर्णन होता है जिनमें समान धर्म, रूप या गुण के कारण भेद की प्रतीति नहीं होती। मीलित में प्रधान या बलवत्तर पदार्थ गौण या निर्बल पदार्थ का अपने में तिरोधान करता है या छिपा लेता है किन्तु सामान्य में दो पदार्थों में गुण-साम्य के कारण अभेदता की प्रतीति होती है। अर्थात् दो पदार्थ इस प्रकार घुलेमिले रहते हैं कि दोनों में भेद की प्रतीति नहीं होती। मीलित में दोनों ही पदार्थ एक दूसरे को इस प्रकार आच्छादित कर देते हैं कि उनका प्रत्यक्ष ज्ञान हो नहीं पाता किन्तु सामान्य में दोनों ही पदार्थ प्रत्यक्ष होते हैं पर उनमें भेद का ज्ञान नहीं होता।

सामान्य

जब समान गुण के कारण प्रस्तुत से अप्रस्तुत की एकरूपता का कथन किया जाय तो वहां सामान्य अलंकार होता है।

सामान्य का अर्थ समानता से है। इस अलंकार में दो पदार्थों में समान गुणता या एकधर्मता का संस्थापन या कथन किया जाता है। अर्थात् समान गुण या धर्म के कारण प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत में अभेद-प्रतीति होती है। यह लोकन्यायमूलक अलंकार है। इस अलंकार में तुल्य गुणवाले दो पदार्थों का वर्णन किया जाता है जो गुण-साम्य के कारण परस्पर मिल जाते हैं। दोनों पदार्थों में एक का स्पष्ट रूप से ज्ञान होता है क्योंकि उसके चिह्न स्फुट या प्रकट होते हैं। किन्तु दूसरे पदार्थ का स्पष्ट रूप से ज्ञान नहीं होता, क्योंकि उसके चिह्न स्पष्टतः प्रतीत नहीं होते या प्रकट नहीं रहते। सामान्य में अप्रस्तुत के समान गुण के न होने पर भी अन्य साधनों के द्वारा प्रस्तुत उसके समान होकर भेदरहित दिखाई पड़ता है।

क—चंदन चर्चित तन किये, धरि पुनि हीरक हार।
धवलवस्त्र सजि कामिनी, चांदनि महँ पग धार॥

ख—लखिये पिय निसि में नवल, कौतुक सुखसरसात।
हिमकर अरु तिय वदन में, अन्तर लह्यौ न जात॥ सोमनाथ।

यहां चन्द्रमा और नायिका के मुँह में भेद का न होना या तादात्म्य प्रतिपादन सामान्य है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सामान्य और तद्‌गुण—तद्‌गुण में अपने गुण का त्यागकर दूसरे के गुण को ग्रहण किया जाता है किन्तु सामान्य में अपने गुण का त्याग नहीं होता। सामान्य में सादृश्य या सदृश गुण के कारण दो पदार्थों में तादात्म्य प्रतिपादन होता है।

उन्मीलित

यदि एक वस्तु में दूसरी वस्तु के छिप जाने पर किसी कारण विशेष से भेद की प्रतीति हो तो वहां उन्मीलित अलंकार होगा।

यह मीलित का उलटा है जिसका अर्थ है खुला हुआ। इस अलंकार में दो पदार्थों का भेद खुला रहता है या स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है, अतः इसे उन्मीलित कहते हैं। उन्मीलित में एक वस्तु दूसरी वस्तु में मिल जाती है किन्तु किसी कारण से उसमें भेद दिखाई पड़ने लग जाता है। अर्थात् अत्यधिक साम्य या सादृश्य के कारण दो वस्तुओं के मिल जाने पर भी किसी प्रकार से भेद प्रतीत होने लगे तो वहां उन्मीलित अलंकार होगा।

> मिलि चंदन-बेंदी रही, गोरे मुख न लखाय।
> ज्यों-ज्यों मदलाली चढ़ै, त्यों-त्यों उघरति जाय ॥ बिहारी।

नायिका के गोरे मुख में चंदन की उजली बिंदी छिप जाती है किन्तु मद की लाली चढ़ने से (मुख पर) या बढ़ती हुई मदलाली के कारण उसका स्पष्ट ज्ञान होने लगता है।

मदलाली के कारण गोरे मुख की उजली बेंदी के स्पष्ट होने में यहां उन्मीलित अलंकार हुआ।

उत्तर

चमत्कारपूर्ण उत्तर के वर्णन में उत्तर अलंकार होता है।

उत्तर का अर्थ स्पष्ट है। इसमें कविकल्पना प्रसूत उत्तर का वर्णन किया जाता है। इसमें तीन बातें प्रधान हैं—

क—उत्तर से ही प्रश्न की कल्पना करना।

ख—अनेक प्रश्नों के अनेक अप्रसिद्ध उत्तर का दिया जाना।

ग—प्रश्न से ही उत्तर का निकलना।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तरालंकार में उत्तर साभिप्राय या साकूत हुआ करता है। कवि प्रश्नोत्तर की योजना कर इस अलंकार में अपूर्व चमत्कार भर देता है। यह लोकन्याय-मूलक अलंकार की श्रेणी में आता है जिसे कतिपय आचार्य गूढोत्तर भी कहा करते हैं।

उत्तरालंकार के प्रमुख दो भेद हैं—

प्रथम उत्तर—जहाँ उत्तर से ही प्रश्न की कल्पना की जाय।

क—बाल ! कहा लाली भई, लोयन कोयन मांह।
लाल ! तिहारे दृगन की, परी दृगन महँ छाँह ॥ बिहारी।

नायक के यह पूछने पर कि तुम्हारी आँखों का कोना लाल क्यों है ? नायिका उत्तर देती है कि तुम्हारी आँखों की छाया मेरी आँखों में आ पड़ी है। यहाँ चमत्कारपूर्ण उत्तर का वर्णन है।

ख—पूछ रहे हो घर में रहना, सास नहीं घर, नाथ विदेश।
मैं अबला बाला एकाकिनि, दूँ कैसे तुमको आदेश ॥

यहाँ उत्तर से पता चलता है कि कोई पथिक नायिका से रहने के लिए प्रश्न कर रहा है।

ग—तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या ?
तेरा अधर विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मृति-मिश्रित हाला।
तेरा मानस ही मधुशाला,
फिर पूछूं मैं मेरे साकी देते हो मधुमय विषमय क्या ? महादेवी।

यहाँ पता चलता है कि उत्तर के निमित्त ही किसी ने प्रश्न किया हो।

द्वितीय उत्तर—जहाँ अनेक प्रश्नों के अनेक अप्रसिद्ध या असंभाव्य उत्तर दिये जाएँ।

क—गौरव क्या है ? जनभार वहन करना ही।
सुख क्या है ? बढ़कर दुःख सहन करना ही ॥ गुप्त जी।

यहाँ गौरव एवं सुख के अनेक अप्रसिद्ध उत्तर दिये गए हैं।

यदि प्रश्न के वाक्य में ही उत्तर निकल जाय अथवा बहुत से प्रश्नों का एक ही उत्तर हो तो वहां भी इसका तीसरा प्रकार होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रश्न के वाक्य में ही उत्तर का निकलना—

ख—कहलाने एकत बसत, अहि, मयूर, मृग, बाघ ?
जगत तपोवन सों कियो, दीरघ दाघ निदाघ ॥ विहारी ।

प्रश्न—सर्प, मोर, मृग और बाघ एक साथ क्यों (कहलाने) रहते हैं ?
उत्तर—गर्मी से बेचैन (कहलाने) होकर ।
यहाँ प्रश्न के वाक्य में ही उत्तर है ।

अनेक प्रश्नों का एक उत्तर—

क—पाठ गया क्यों भूल ? क्यों भाजन दीखत मलिन ?
कट्यौ पतँग क्यों मूल ? कह विहार माँजा नहीं ॥

यहाँ तीन प्रश्न हैं—पाठ क्यों भूला, वर्त्तन मैला क्यों हुआ तथा पतंग क्यों कटी ? इन तीनों का एक ही उत्तर है कि माँजा नहीं । पाठ नहीं माँजने से भूल गया, वर्त्तन साफ न करने से तथा पतंग मांझा के विना कट गयी ।

ख—पंथी प्यासो जाय, गदहा रहे उदास क्यों ?
उत्तर दीन बताय, एक वचन 'लोटा' न था ॥

काव्यलिंग और उत्तर—दोनों ही अलंकारों में एक के कथन से दूसरे का ज्ञान होना वर्णित होता है । काव्यलिंग में एक कथन दूसरे कथन का कारक हेतु होता है किन्तु उत्तर में एक कथन दूसरे कथन का ज्ञापक हेतु । काव्यलिंग में कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है किन्तु उत्तरालंकार में उत्तर से प्रश्न का उद्भव नहीं होता बल्कि उसके पूर्व अस्तित्व का संकेत प्राप्त होता है तथा प्रतिवचन से (उत्तर से) प्रश्न की कल्पना की जाती है । काव्यलिंग में कारण और कार्य दोनों वर्णित होते हैं किन्तु उत्तर में कारण स्वरूप उत्तर का ही कथन किया जाता है एवं प्रश्न की कल्पना पाठक स्वतः करता है ।

उत्तर और अनुमान—दोनों ही अलंकारों में ज्ञापक हेतु विद्यमान रहता है जिससे किसी तथ्य का उद्भावन होता है । अनुमान में साध्य एवं साधन दोनों ही अनेक शब्दों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं । उत्तर में एकधर्मी में स्थित साध्य एवं साधन का निर्देश नहीं होता । इसमें केवल साधन या उत्तर का ही वर्णन किया जाता है एवं साध्य रूप प्रश्न की कल्पना अपने से ही की जाती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सूक्ष्म

आकार अथवा चेष्टा के द्वारा संलक्षित सूक्ष्म अर्थ किसी युक्ति से प्रकाशित हो तो वहाँ सूक्ष्म अलंकार होता है।

सूक्ष्म का अर्थ है अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा जानने योग्य या बारीक अथवा महीन। इस अलंकार में आकार अथवा चेष्टा के द्वारा पहचानने योग्य कोई सूक्ष्म वस्तु किसी अन्य उपाय से प्रकाशित हो जाती है। इसमें दो बातें देखी जाती हैं एक तो यह कि किसी की चेष्टा या आकार को देख कर कोई व्यक्ति उसके गुप्त रहस्य के भेद को समझ लेता है। दूसरी बात यह कि जाने हुए रहस्य को वह इङ्गित के द्वारा प्रकट कर उस व्यक्ति को इसकी सूचना दे देता है कि उसने उसके संकेत को समझ लिया है। यह गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अलंकार है जिसमें अत्यन्त गूढ़ या छिपे हुए रहस्य का ज्ञान या प्रतीति होती है। इसमें किसी की बात को स्पष्ट रूप से नहीं कहा जाता बल्कि लक्षित रहस्य को किसी संकेत द्वारा सूचित कर दिया जाता है। इसमें अभिप्राय युक्त चेष्टा से संलक्षित रहस्य का संकेत होता है। सूक्ष्म अलंकार में हृद्‌गत सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति कर कवि इसके नाम की सार्थकता सिद्ध कर देता है। इस अलंकार में गोपन की भावना स्पष्ट होती है किन्तु उसे आंगिक चेष्टाओं एवं भावभंगिमाओं से ही प्रकट किया जाता है, स्पष्ट रूप से कहा नहीं जाता।

उदाहरण—यदि भीड़ में नायक को देखकर नायिका कमल को संपुटित कर दे तो नायक उसे संध्या समय मिलन का संकेत समझेगा। यहाँ नायिका का यह कथन कि तुम संध्या समय मिलना, इसकी अभिव्यक्ति कमल के संपुटित करने से होती है। नायक को दिखाकर ही यह क्रिया की जाती है, अतः वह समझ जाता है कि मुझे सन्ध्या समय मिलने को नायिका आमंत्रण दे रही है। यहां अपने रहस्य को अन्य से छिपाने के लिए ही संकेत या इङ्गित का उपयोग किया गया है।

उदाहरण—

परतिय दोष पुरान सुनि, लखि मुलकी सुखदानि।
कसु करि राखी मिसिर हू मुख आयी मुसकानि॥ बिहारी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहां नायिका का मुस्कान के द्वारा अपने रहस्य की व्यंजना करने में आकार द्वारा सूच्य अर्थ को लक्षित किया गया है। कोई पंडित पुराणों में कथित परस्त्री प्रसंग के दोष का वर्णन कर रहे थे, वहाँ श्रोता मंडली के मध्य उनकी प्रेमिका (परकीया) भी थी। वह पंडित जी की बातें सुन कर मुस्कुरा उठी और पंडित जी भी बड़ी कठिनाई से अपनी मुस्कान रोक सके।

चेष्टा द्वारा संलक्षित सूक्ष्म अर्थ का प्रकाशन—

लखि गुरुजन बिच कमल सों, सीस छुवायो स्याम।
हरिसम्मुख करि आरसी, हिये लगाई बाम ॥ बिहारी।

कृष्ण ने गुरुजनों के बीच राधा को देखकर कुछ कहने में अपने को असमर्थ जानकर कमल को सिर से लगा दिया। इससे उन्होंने चेष्टा द्वारा यह आशय प्रकट किया कि मैं तुम्हारे कमलवत् चरणों को प्रणाम करता हूँ। इस पर उत्तर के रूप में राधिका ने कृष्ण के सम्मुख आरसी दिखा कर यह अभिप्राय बताया कि मैं तुम्हें अपने स्वच्छ हृदय में, जो आईने के समान स्वच्छ है, स्थान दिये हुई हूँ।

व्याजोक्ति

गुप्त रहस्य के प्रकट होने पर उसे किसी बहाने से छिपाया जाय तो उसे व्याजोक्ति अलङ्कार कहते हैं।

व्याजोक्ति में दो शब्द हैं—व्याज (बहाना) और उक्ति (कथन)। इसका अर्थ हुआ बहाने का कथन। छिपा हुआ रहस्य (जिसको प्रकट करने की इच्छा न हो) किसी प्रकार प्रकट हो जाय और उसे किसी बहाने से छिपाया जाय तो वहाँ व्याजोक्ति अलङ्कार होगा। इस अलङ्कार में कवि के अतिरिक्त किसी भिन्न पात्र की उक्ति का कथन किया जाता है तथा जिस बात को वक्ता छिपाना चाहता है वह (उक्ति) येनकेन प्रकारेण प्रकट हो जाती है। इस गोपनीय बात को छिपाने के लिए वक्ता ऐसी युक्ति का सहारा लेता है जो वास्तविक नहीं होती है। अर्थात् वह ऐसे कारण को रखता है जो मिथ्या होता है। इसमें वास्तविक कारण को इसलिए छिपाया जाता है कि इसके प्रकट होने पर वक्ता को किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका बनी रहती है। यह गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक अलङ्कार है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

ललन चलन सुनि पलन में अँसुआ झलके आय ।
भई लखाइ न सखिनहू, झूठे ही जमुहाय ॥ बिहारी ।

नायक के विदेश जाने का समाचार सुन कर नायिका की आंखों में आंसू आ गए, किन्तु वह सखियों के बीच बैठी हुई थी; अतः उसने इस रहस्य को छिपाने के लिए झूठ-मूठ की अँगड़ाई लेना प्रारम्भ कर दिया। वह अँगड़ाई लेकर सखियों को दिखा रही है कि इसी कारण से (अँगड़ाई लेने से) ही आँखों में आँसू आ गए। यहां क्रिया के द्वारा रहस्य का गोपन है।

व्याजोक्ति और छेकापह्नुति में अन्तर—अपह्नुति (छेकापह्नुति) साधर्म्य वर्ग का अलंकार है एवं व्याजोक्ति गूढ़ार्थप्रतीति मूलक वर्ग का। दोनों में इस बात में साम्य है कि पहले सत्य को छिपाकर असत्य का प्रतिपादन किया जाता है। दोनों में अन्तर यह है कि अपह्नुति अलंकार में जो बात छिपाई जाती है उसका पहले कथन किया जाता है तब निषेध होता है किन्तु व्याजोक्ति में वास्तविक बात का संकेत भी नहीं किया जाता। छेकापह्नुति में गुप्त रहस्य को पहले अपने से ही प्रकट कर बाद में उसे छिपाया जाता है जबकि व्याजोक्ति में किसी प्रकार प्रकट हुए रहस्य को पुनः छिपाया जाता है।

लोकोक्ति

प्रसंगप्राप्त किसी 'लोकोक्ति' के प्रयोग में लोकोक्ति अलंकार होता है।

लोकोक्ति का अर्थ है कहावत इस अलंकार में लोकोक्ति एवं मुहावरों के प्रयोग के द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। इसके अलंकारत्व का सर्वप्रथम वर्णन अप्पयदीक्षित ने किया है। दीक्षित के अनुसार लोकोक्ति अलंकार वहाँ होता है जहां काव्य में लोक-प्रवाद या लोकोक्ति का प्रयोग किया जाय।

किसी नायक द्वारा विरहिणी नायिका को संकेत दिया गया है।

'आँखें मीच कर कुछ महीने और व्यतीत कर लो।'

यहां 'लोचने मीलयित्वा' प्रसिद्ध लोकोक्ति है।

कहावतों का प्रयोग—

वृथा मरहु जनि गाल बजाई। मनमोदकनि कि भूख बुझाई ॥ रामायण।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ 'गाल बजाना' एवं 'मनमोदक से भूख न मिटना' दो कहावतों का प्रयोग है।

मुहावरों का प्रयोग—

जो मेरी आँखों में रहती वही आँख दिखलावे।
जो कल संग हवा खाती थी, आज हवा बतलावे॥ नूरजहाँ।

यहाँ आँखों में रहना, आँख दिखाना, हवा खाना और हवा बतलाना कई मुहावरों का प्रयोग है।

जो अपांगों से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढ़ता है तथा,
वारि पीकर पूछता है घर सदा। पंत।
तट ने धोखा दिया मुझे मझधार का।
अंगुली छू गई बाँह गहने लगी॥ हृदयेश।

द्वै छिगुनी पहुँचो जिलत अति दीनता दिखाइ।
बलि बामन को ब्योंत सुनि को बलि तोहि पतियाइ॥ विहारी।

स्वभावोक्ति

किसी वस्तु की जाति, स्वभाव या गुण का यथावत् वर्णन करने में स्वभावोक्ति अलंकार होता है।

स्वभावोक्ति का अर्थ है स्वभाव का कथन। इस अलंकार में किसी वस्तु का यथार्थ चित्रण किया जाता है। अर्थात् जो वस्तु जैसी हो उसका तद्रूप वर्णन करना ही स्वभावोक्ति है। स्वभावोक्ति अलंकार में बालक आदि की चेष्टाओं का यथावत् वर्णन, पशुओं की चेष्टाओं का यथावत् चित्रण एवं प्राकृतिक दृश्य का याथातथ्य अंकन किया जाता है। उपर्युक्त सभी विषयों के अंगों का सूक्ष्म चित्रण होना चाहिए साथ ही वह वर्णन चमत्कारपूर्ण भी हो। इसमें (वर्णन में) विषय की वैज्ञानिकता या विवरण पर उतना ध्यान न देकर कविप्रतिभा की उचित रीति से अभिव्यक्ति होनी चाहिए अर्थात् वर्णन विवरणात्मक न होकर कवि-प्रतिभा से पूर्ण एवं चमत्कारजनक होना चाहिए। तभी स्वभावोक्ति का अलंकारत्व सिद्ध होगा। इस अलंकार में कवि वर्णन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की यथावत् प्रतीति के लिए वर्णित वस्तु के विशिष्ट धर्मों का भी उल्लेख कर उसे साकार रूप देता है। वस्तु के विशिष्ट धर्म का (इस अलंकार में) यहाँ यह तात्पर्य है कि पाठक को उनका ज्ञान तो अवश्य हो, किन्तु प्रकृत पदार्थ के वर्णन में उनका ध्यान उस ओर न जा सका हो अर्थात् वर्णित वस्तु के प्रकरण में पाठकों का ध्यान उन धर्मों की ओर न जा सका हो। "इन धर्मों का ज्ञान यदि पाठक को न हो तो वस्तु में उन धर्मों का वर्णन पढ़कर, पाठक न तो उस वस्तु के लौकिक रूप से उसका मेल मिला सकता है और न उस मेल के आधार पर प्रस्तुत वर्णन में यथावत्व की अनुभूति ही कर सकता है। परन्तु वे धर्म प्रस्तुत वस्तु के प्रसंग में सीधे ही पाठक के सामने न आने चाहिए। ऐसा होने से ही उन धर्मों का वर्णन पढ़कर वह उस वस्तु के लौकिक वर्णन की ओर मुड़ेगा और देखेगा कि लोक में होता तो ठीक ऐसा ही है और उस समय ही उसको उस वर्णन में यथावत्त की प्रतीति होगी।" स्वभावोक्ति अलंकार में सामान्य चित्र की अपेक्षा किसी के विशिष्ट चित्र के अंकन में चमत्काराधिक्य होता है। उसमें पाठक को उक्त पदार्थ के रूप में सजीवता दृष्टिगोचर होती है, फलतः उसकी मनोवृत्ति वास्तविक आनन्द प्राप्त कर मानसिक तृप्ति का अनुभव करती है। स्वभावोक्ति अलंकार लोक एवं जीवन के अत्यन्त निकट होता है। इसमें कवि लोक जीवन के आधार पर किसी वस्तु का वर्णन कर अनुभूति जगाने में समर्थ होता है।

पदार्थ की नानावस्था में सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषताओं का प्रत्यक्षीकरण करना ही स्वभावोक्ति का उद्देश्य है। अतः वस्तु के असाधारण धर्म का स्फुट वर्णन करना ही स्वभावोक्ति अलंकार है। लौकिक आधार के अनुसार जब कवि पाठकों के समक्ष वर्णित विषय की यथावत् अभिव्यक्ति या चित्रण कर उसके मन में उस वस्तु के स्वाभाविक चित्र की साकार अनुभूति करा दे तो वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होगा। इसमें कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय प्राप्त होता है।

उदाहरण—

ख—नासा मोरि, नचाइ दृग, करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकति हियें, गड़ी कटीली भौंह॥ बिहारी।

यहाँ नायिका की मुद्रा का सूक्ष्म चित्रण है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भाविक

यदि भूत अथवा भविष्य का वर्त्तमान की भांति वर्णन किया जाय तो वहां भाविक अलंकार होगा।

भाविक शब्द का अर्थ है सत्ता की रक्षा (भू-सत्ता, इक-रक्षा[1]) इस अलंकार में भूत और भविष्य का वर्त्तमान की भाँति वर्णन कर उनकी सत्ता की रक्षा की जाती है तथा अप्रत्यक्ष का प्रत्यक्षवत् वर्णन किया जाता है। संस्कृत-काव्यशास्त्रियों ने भाविक शब्द की अनेकधा व्युत्पत्ति की है—

१—जिसमें[2] भाव विद्यमान रहे उसे भाविक कहते हैं, ऐसा विचार प्रतीहारेन्दुराज का है।

२—कवि[3] के अभिप्राय को भाव कहा जाता है। इस अलंकार में चूँकि कवि भूत एवं भविष्य का प्रत्यक्षवत् वर्णन करने की इच्छा करता है, अतः इसे भाविक कहते हैं।

भाविक अलंकार के निरूपण में कवि भूत एवं भावी अखंड तथा अविच्छिन्न कालावधि को प्रत्यक्षवत् प्रतीत कराता है। वह उन्हीं पदार्थों की भावना करता है जिसके प्रति उसके मन में विस्मयावेश उत्पन्न हो सके। भाविक अलंकार की सिद्धि के लिए कवि को विस्मयाविष्ट वस्तु के वर्णन के साथ-ही-साथ भाषा की प्रासादिकता पर भी ध्यान देना पड़ता है। सहज बोधगम्य भाषा के अभाव में कवि अतीतानागत का प्रत्यक्षवत् वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सकता। अतः शब्दार्थ योजना या भाषा की अनाकुलता या सद्यः अर्थबोधकता एवं विषय की विस्मय-जनकता दोनों ही भाविक अलंकार की सफलता के आवश्यक साधन हैं। विमर्शिनीकार (जयरथ) के अनुसार शब्दार्थ की रमणीयता का अभिप्राय कवि द्वारा वर्णित पदार्थों को समुचित शब्दार्थ योजना द्वारा व्यक्त करने में है। इसमें कविकल्पनाप्रसूत वाच्यवैचित्र्य का होना अनिवार्य है। कवि उक्तिवैचित्र्य के द्वारा ही अपने हृदयगत भावों को सहृदय के चित्त में प्रतिबिम्बित करता है। अर्थात् कवि-वर्णनावैचित्र्य के द्वारा ही अप्रत्यक्ष पदार्थ का प्रत्यक्षीकरण होता है।

इस अलंकार में कवि द्वारा वर्णित एवं कल्पित सभी चित्र अनुभवकर्त्ता के समक्ष वर्त्तमान की भाँति दृष्टिगोचर होकर काल के परे हो जाते हैं। अतः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जब अतीत एवं अनागत से सम्बद्ध आश्चर्यजनक वस्तुयें अर्थप्रतीति या सहज-बोधगम्यशैली में प्रत्यक्ष की तरह वर्णित हों तो वहाँ भाविक अलंकार होगा। कवि सरल एवं सहज बोधगम्य तथा शक्तिशाली शैली के द्वारा ही आश्चर्य-जनक भूत एवं भविष्य की वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण या प्रत्यक्षगोचर करा सकता है। प्रतीहारेन्दुराज ने भाविक को रस-बोध का सार स्वीकार किया है। इनके अनुसार विविध रसों एवं भावों के आशय की जिस प्रकार कवि को अनुभूति होती है यदि उसी प्रकार का अनुभव पाठक के भी मन में हो तो वहाँ भाविक होता है। कवि के समान ही सहृदय या श्रोता अपने अभिप्राय के साथ अभेद स्थापित कर (उस) काव्य में प्रतिबिम्बित रूप का साक्षात्कार करते हैं। अतः शैली में सहजता होने के कारण ही कवि के भाव या अनुभव पाठक के द्वारा भी उसी प्रकार अनुभूत होने लगते हैं जिस प्रकार का प्रतिबिम्ब काव्य में प्रस्तुत होता है या स्वयं कवि उसे जिस रूप में अनुभव करता है। इस प्रकार कवि द्वारा वर्णित भूत एवं भावी पदार्थों के प्रत्यक्षवत् वर्णन के साथ सहृदय श्रोता भी अपने अभिप्राय या आशय के साथ अभेद स्थापित करते हुए उसका प्रत्यक्ष की भांति अनुभव करने लगते हैं।

उदाहरण—

भूत का वर्त्तमान की भांति वर्णन—

क—यों दलिमलियत निरदई ! दई कुसुम से गात।
कर धर् देखो धर हरा, अजौं न उर तें जात॥ बिहारी।

नायक ने नायिका का आलिंगन किया है। उसके विगत आलिंगन का यहां प्रत्यक्ष की भांति वर्णन है।

ख—अरे मधुर हैं कष्टपूर्ण भी जीवन की बीती घड़ियां।
जब निःसंबल होकर कोई जोड़ रही बिखरी कड़ियां॥ महादेवी।

ग—संभल-संभल कर पलकों के पग धरिये इसमें दर्शक वृन्द।
दलित न हो पायें मानव के लोहू के वे विन्दु अमन्द॥
चमक रहे सम्मुख रजकण वे लेकर रण का हास-विलास।
ये वे कीर्तिस्तम्भ हैं जिन पर लिखा पुण्य-जय का इतिहास॥

जौहर : "सुधीन्द्र"॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भविष्य का प्रत्यक्षवत् वर्णन—

क—रितु बसंत पिय-गमन लखि, चित्र दिखायौ आन ।
पिक, मयूर, घन-दामिनी, मदन सुमन धनुबान ॥

यहां नायिका ने प्रियतम की विदेश-यात्रा को रोकने के लिए वसंत ऋतु में भावी वर्षा का वर्त्तमान रूप दिखाया है ।

ख—मत चलाइये चलन की, चरचा स्याम सुजान ।
मैं देखति हौं वाहि यह, बात सुनत बिन प्रान ॥ मतिराम ।

प्रियतम के विदेश चले जानेपर नायिका का शरीर निष्प्राण हो जायगा । यहां कवि ने उसकी भावी प्राणहीनता का प्रत्यक्षवत् वर्णन किया है ।

ग—अरुण अधरों का पल्लव प्रात, मोतियों-सा हिलता हिमहास,
इन्द्रधनुषी पट से ढँक गात, बाल विद्युत का पावस लास ।
हृदय में खिल उठता तत्काल, अधखिले अंगों का मधुमास ।
तुम्हारी छबि का कर अनुमान प्रिय प्राणों की प्राण ॥ गुंजन

उदात्त

वस्तु की समृद्धि का वर्णन अथवा महापुरुषों का चरित वर्णनीय का अङ्ग हो तो उदात्त अलंकार होता है ।

उदात्त का अर्थ है उत्कृष्ट—उत् (उत्कर्षेण) आदीयत (गृह्यते) स्म इत्युदात्तम् (उत्+आ+दा) । इसका अर्थ (उदात्त का) औदार्य एवं ऐश्वर्य भी होता है—उदात्त शब्दस्य औदार्यम् ऐश्वर्यं चार्थः ।

समुद्रबन्ध—पृ० २०७ ।

इस अलंकार में किसी वस्तु की समृद्धि का वर्णन होता है जिससे कि उसकी महत्ता प्रतिष्ठित हो सके अथवा महापुरुषों का चरित उपलक्षण के रूप में अर्थात् वर्णनीय वस्तु का अङ्ग होकर उसके महत्व का प्रतिपादन करे । इस प्रकार इसके दो तत्त्व परिलक्षित होते हैं—वस्तु की समृद्धि एवं महान जनों की उपलक्षणता । उदात्त का आधार वस्तु की समृद्धि का ही वर्णन है । यद्यपि यहां समृद्धि या सम्पत्ति की समृद्धि का मिथ्यापूर्ण वर्णन नहीं होता फिर भी उसमें अतिरंजना का भाव तो रहता ही है जो सामान्य जीवन से अवश्य ही दूर रहता है । कवि वस्तु की समृद्धि का वर्णन कर उसकी महनीयता का प्रतिपादन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करता है। उदात्त में केवल अच्छे पदार्थों (सत्) का ही वर्णन होता है बुरे पदार्थों का नहीं। इसके विषय के अन्तर्गत सम्पत्ति, शौर्य, विभूति, औदार्य, नगर, राजप्रासाद आदि आ जाते हैं।[1] कविप्रतिभाप्राप्त महाऐश्वर्यशाली वस्तु के अलौकिक वर्णन में ही उदात्त होगा। इसके दूसरे भेद में किसी वस्तु का वर्णन करते समय उसके वैशिष्टय-प्रदर्शन के लिए कवि किसी महापुरुष के चरित्र का वर्णन करता है तथा महानों का चरित प्रधानरूप से न होकर अङ्ग रूप या गौण रूप से उपस्थित किया जाता है। महापुरुषों के चरित का वर्णन करते समय अतिशयोक्ति का होना आवश्यक नहीं है। ऐतिहासिक वृत्तान्त के आधार पर महानों के चरित का वर्णन करने में अतिशयोक्ति अलंकार इसके मूल में नहीं रहता किन्तु विपरीत स्थिति में इसका रहना अनिवार्य है। इस भेद में महानों के चरित्र का ऐतिहासिक या पौराणिक होना आवश्यक है। महानों के चरित, वर्णन की महनीयता प्रदान करने के लिए उपन्यस्त होते हैं। यह गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अलंकार है। इसमें महान् चरित्रों के वर्णन में अतिशयोक्ति मूलाधार के रूप में नहीं आती पर ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में अतिशयोक्ति बीज रूप में वर्त्तमान रहेगी ही।

भेद—उदात्तालंकार के दो भेद हैं—

प्रथम में सम्पत्ति की समृद्धि एवं द्वितीय में महान् जनों के चरित की उपलक्षणता का वर्णन होता है।

(१) प्रथम उदात्त का उदाहरण—

जगत-जनक बरनै कहा, जनक नगर को ठाट।
सहल महल हीरन बने, हाटबाट करहाट॥

यहां राजा जनक के महल की समृद्धि का वर्णन है जिसमें साधारण गृह भी (सहल महल) हीरों के बने थे एवं बाजार करहाट (कमल) के थे।

(२) द्वितीय उदात्त का उदाहरण—

करत भये जाके तरे, राधा-कृस्न विहार।
सो न होइ क्यों तरुन को, वंसीवट सिंगार॥

यहां राधा कृष्ण के विहार से वंशीवट का महत्व अधिक बढ़ गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निरुक्ति

योगवश किसी नाम के चमत्कारपूर्ण अर्थ की कल्पना करना निरुक्ति अलंकार है।

निरुक्ति का अर्थ है शब्द-व्युत्पत्ति अर्थात् अर्थानुकूल शब्द का विग्रह या व्युत्पत्ति करना। निरुक्ति अलंकार में शब्द के वास्तविक अर्थ को छोड़ कर अन्य काल्पनिक अर्थ की कल्पना की जाती है, जिसमें अधिक चमत्कार होता है। ऐसी स्थिति में श्लिष्ट शब्दों की काल्पनिक व्युत्पत्ति अधिक चमत्कारपूर्ण ढंग से संभव है।

उदाहरण—

छीनी छवि मृग मीन की, कहौ कहाँ की रीति।
नामहिं में नहि नीति का, करैं नयन ये नीति॥ बिहारी।

यहाँ नयन शब्द की विलक्षण निरुक्ति है। नय (नीति) न (नहीं) का अर्थ है जिसमें नीति न हो। आँखों ने मृग एवं मछलियों की शोभा छीन ली है। यह कार्य अर्थात् दूसरे की चीज छीन लेना, नीति-विरुद्ध है। किन्तु जिसका नाम ही ऐसा अर्थ सूचित करता है जो नीति–विरुद्ध आचरण करने वाला है, तो उससे इससे अधिक और क्या आशा की जा सकती है। यहाँ कवि ने नयन शब्द का चमत्कारपूर्ण अर्थ किया है।

अत्युक्ति

किसी वस्तु का अत्यन्त बढ़ा-चढ़ाकर मिथ्यापूर्ण वर्णन करना अत्युक्ति अलंकार है। इसमें वीरता, दानशीलता (शौर्य एवं औदार्य) का अत्यन्त बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया जाता है। कुछ आचार्य इसका अन्तर्भाव उदात्त के प्रथम प्रकार में ही करना उचित समझते हैं। इसका सर्वप्रथम उल्लेख जयदेव ने किया तथा उनका दीक्षित ने अनुकरण किया। अतिशयोक्ति में भी किसी वस्तु का लोकसीमातिशायी वर्णन होता है। किन्तु अत्युक्ति में यह वर्णन अत्यन्त अधिक होता है। इसमें अत्यन्त असत् उक्ति का प्रयोग होता है जब कि अतिशयोक्ति में असत् उक्ति का ही कथन किया जाता है। दीक्षित के अनुसार उदात्त और अतिशयोक्ति में अन्तर यह है कि उदात्त के प्रथम भेद में सम्पत्ति की समृद्धि का वर्णन होता है जब कि अत्युक्ति में शौर्य या औदार्य का अतिशय वर्णन होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

क—सौन्दर्यात्युक्ति—

भूषन भार सँभारिहैं, क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पाँय न धर परत, सोभा ही के भार॥ बिहारी।

ख—प्रेमात्युक्ति—

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात॥ बिहारी।

हेतु

कारण और कार्य का अभेद वर्णन हेतु अलंकार है। हेतु से अर्थ लिया जाता है कारण का। इस अलंकार में कारण और कार्य का एक ही साथ वर्णन होता है या कारण और कार्य में अभेदता दिखाई जाती है। कारण और कार्य दो भिन्न पदार्थ हैं तथा कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। हेतु अलंकार इस प्रकार के भेद को हटाकर कारण और कार्य का अभेद रूप से वर्णन होता है।

उदाहरण—

प्रथम भेद—कारण के साथ कार्य का वर्णन—

घर घर डोलत दीन ह्वै जनु जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ॥ बिहारी।

यहाँ लोभरूपी चस्मा (कारण) एवं छोटों को भी बड़े रूप में देखना कार्य का एक ही साथ वर्णन होने से हेतु अलंकार हुआ।

द्वितीय हेतु—कारण और कार्य का अभेद कथन—

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति बिदारनहार॥ बिहारी।

यहाँ संपत्ति कार्य एवं यदुपति कारण हैं। कृष्ण ही संपत्ति देने वाले हैं, किन्तु यहाँ पर दोनों के भेद को हटाकर कृष्ण को ही संपत्ति कह देने से हेतु अलंकार हुआ।

रूपक और हेतु—रूपक में उपमेय और उपमान में अभेद दिखलाया जाता है और हेतु में कारण तथा कार्य की अभेदता का कथन होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुमान

साधन के द्वारा साध्य के चमत्कारपूर्ण ज्ञान को अनुमान अलंकार कहते हैं।

अनुमान में अनु और मिति दो शब्द हैं जिसका अर्थ है चिह्न (अनु) या लक्षण और मिति (ज्ञान) अर्थात् लक्षण के द्वारा ज्ञान। इसमें लक्षण के द्वारा किसी पदार्थ का ज्ञान प्राप्त होता है। अनुमान न्यायशास्त्र का विषय है किन्तु काव्य में चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रयुक्त होने पर ही यह अलंकारत्व प्राप्त करता है।

मितेन लिङ्गेन अर्थस्य अनुपश्चात् मानम्[1] अर्थात् "प्रत्यक्षप्रमाण से ज्ञात लिंग द्वारा अर्थ के अनु अर्थात् पीछे से होने वाले ज्ञान को अनुमान कहते हैं।" अनुमान शब्द का प्रयोग जब काव्यशास्त्र में होता है तो उसका एक भिन्न अर्थ होता है। इस अलंकार में साधन के द्वारा साध्य का ज्ञान होता है। सिद्ध की जाने वाली वस्तु को साध्य एवं जिससे वह सिद्ध होती है उसे साधन कहते हैं। जैसे धूँए के द्वारा अग्नि का ज्ञान होता है—'यत्र-यत्र धूमः तत्र-तत्र अग्निः।' अर्थात् जहाँ-जहाँ धूआँ होगा वहाँ-वहाँ आग भी होगी। यहाँ धूआँ साधन एवं आग साध्य है। जहां साध्य और साधन या अनुमान के विषय को कविप्रतिभोत्थित चमत्कार के द्वारा उपस्थित किया जाय वहाँ अनुमान अलंकार होगा। अर्थात् जब कविकल्पनाजन्य चमत्कार से साधन के द्वारा साध्य की प्रतीति हो वहां अनुमानालंकार होगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि साधन और साध्य दोनों ही कल्पित एवं चमत्कारपूर्ण हों। जिस प्रकार न्याय में लिंग-परामर्श एवं व्याप्ति की प्रणाली को अपनाया जाता है उसी प्रकार काव्य में भी यह गृहीत होता है, किन्तु इसका तर्कशास्त्रानुमोदित होना या न्यायशास्त्र की दृष्टि से सर्वथा शुद्ध होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि अनुमानालंकार की पहली शर्त है कविकल्पित चमत्कार का होना। यह तर्कन्यायमूलक अलंकार है।

इसकी विशेषताएँ—

क—तर्कानुमान की प्रणाली की भांति ही इसमें साधन के द्वारा साध्य के अनुमान का वर्णन होता है।

---

१. न्यायदर्शन—वात्स्यायन भाष्य १,१,३

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ख—इसमें साध्य एवं साधन दोनों का कविकल्पित एवं चमत्कारी होना वांछनीय है—

ग—न्याय की प्रणाली के ही आधार पर इसमें व्याप्ति एवं लिंग-परामर्श होता है किन्तु वह न्यायशास्त्र-सम्मत नहीं होता—वह कविकल्पना पर आश्रित होता है। नैयायिकों की भांति इसका तर्कसंगत होना आवश्यक नहीं है।

उदाहरण—

क—नाचि अचानक ही उठे, बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं नंदित करी, इहि दिसि नंदकिसोर॥ बिहारी।

बिना वर्षा ऋतु के ही वन में अचानक मोरों का नाचना यह साधन या हेतु है। मोरों के नाचने से यहाँ श्रीकृष्ण के आगमन का ज्ञान होता है या साध्य या कार्य की प्रतीति होती है।

ख—तर झुरसी ऊपर गरी, कज्जल जल छिरकाय।
पिय पाती बिन ही लिखी, बाँची बिरह-बलाय॥ बिहारी।

यहाँ जली एवं गली हुई पत्री के द्वारा विरह का अनुमान किया गया है।

उत्प्रेक्षा और अनुमान—उत्प्रेक्षा में संभावना होती है और अनुमान में साधन के द्वारा साध्य का ज्ञान होता है। उत्प्रेक्षा में संभावनात्मक ज्ञान अनिश्चित रूप से प्रतीत होता है और अनुमान में निश्चित रूप से रहता है।

हेतु और अनुमान—हेतु में कारण और कार्य का अभेद कथन किया जाता है किन्तु अनुमान में चमत्कारपूर्ण कारण से कार्य या साध्य का अनुमान किया जाता है।

काव्यलिंग और अनुमान—दोनों में कार्य की सिद्धि के लिए हेतु का प्रयोग होता है। काव्यलिंग में जहाँ हेतु निष्पादक होता है वहाँ अनुमान में ज्ञापक।

मिश्रालंकार या उभयालंकार

जब शब्दालंकार और अर्थालंकार परस्पर मिले रहते हों अथवा एक ही संदर्भ में जब एकाधिक अलंकारों का मेल हो तो वहाँ मिश्रालंकार होता है। जिस प्रकार सुन्दरी के आभूषणों में सुवर्ण एवं मणि की निर्मित माला एक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

विशेष प्रकार का चमत्कार उत्पन्न करती है उसी प्रकार काव्य में रूपकादि विभिन्न अलंकार परस्पर मिलकर अलौकिक सौन्दर्य का कारण बनते हैं। इस प्रकार के मिश्रण से काव्य का सौन्दर्य अतिशय वृद्धि प्राप्त करता है। जिस प्रकार सोने और मणि के आभूषण का अपना पृथक् सौन्दर्य होता है किन्तु जब दोनों एक साथ मिल जाते हैं तो उसमें एक विचित्र प्रकार के सौन्दर्य की सृष्टि होती है, उसी प्रकार शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों का यद्यपि पृथक् सौन्दर्य होता है किन्तु दोनों के संश्लेषण से विचित्र प्रकार का चमत्कार उत्पन्न होता है।

अलंकारों का मेल दो प्रकार से संभव है—संयोग रूप से एवं समवाय रूप से। संयोग रूप से तिल-तण्डुल की भाँति संबंध होता है। जिस प्रकार तिल और चावल को आसानी से एक दूसरे से अलग किया जा सकता है उसी प्रकार तिलतण्डुलन्याय की भाँति मिले अलंकारों को भी अलग किया जा सकता है। अलंकारों का दूसरा मेल या मिश्रण नीर-क्षीर की भाँति होता है। यहाँ एक अलंकार दूसरे से इस प्रकार मिला रहता है कि उसे पृथक् नहीं किया जा सकता। तिल-तण्डुल की भाँति मिले अलंकारों की निरपेक्ष रूप से स्थिति होती है किन्तु जल और दूध की तरह मिश्रित अलंकारों की स्थिति सापेक्ष होती है। तिल-तण्डुल की तरह मिले हुए अलंकारों को संसृष्टि एवं नीर-क्षीर की भाँति मिले हुए अलंकारों को संकर कहते हैं। रुय्यक, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ के यही विचार हैं।

संसृष्टि

जहां तिल-तण्डुल की भांति या तिलतण्डुलन्याय से परस्पर निरपेक्ष अनेक अलंकारों की एकत्र स्थिति हो वहां संसृष्टि अलंकार होता है।

संसृष्टि का अर्थ है संयोग या मेल। मेल से यहां तात्पर्य है अनेक अलंकारों की एकत्र स्थिति से। जहां तिल-तण्डुल के अनुरूप दो या दो से अधिक शब्दालंकार अथवा अर्थालंकार स्वतन्त्र रूप से मिले हों वहां संसृष्टि होती है। इसके तीन भेद हैं—शब्दालंकार संसृष्टि, अर्थालंकार संसृष्टि और शब्दार्थालंकार संसृष्टि।

संसृष्टि अलंकार के तीन भेद माने गए हैं—

१—शब्दालंकारसंसृष्टि—जहां स्वतंत्ररूप से कई शब्दालंकारों की एकत्र स्थिति हो वहाँ शब्दालंकार संसृष्टि होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण—

क—बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तें, हरिनी के ये नैन ॥ बिहारी।

यहाँ मैन और नैन तथा हरिनी के और हरिनी के में दो यमकालंकारों की एकत्र स्थिति है।

ख—मार सु मार करी खरी, डरी अरी अकुलाइ।
हरि, हरिये बलि, बिरह चलि, मुख-सुखमा दरसाइ ॥ बिहारी।

यहां मार और मार, हरि, हरि में यमक तथा करी, खरी, डरी, अरी, बलि एवं बिरह में अनुप्रास है।

२—अर्थालंकारसंसृष्टि—जहाँ स्वतन्त्ररूप से अनेक अर्थालंकारों की एकत्र स्थिति हो तो अर्थालंकारसंसृष्टि होती है।

उदाहरण—

क—वाके नामहिं के सुने, होत सौति मुख मंद।
चख-चकोर कीजै सुखी, लखि राधामुख-चन्द ॥

यहां चपलातिशयोक्ति एवं रूपक की संसृष्टि है।

पूर्वार्द्ध में चपलातिशयोक्ति है—नायिका का नाम सुनते ही नायक का मुख मलिन पड़ जाना तथा चख-चकोर एवं राधा मुख-चन्द्र में रूपक है।

ख—जो अपांगों से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढ़ता है तथा,
वारि पीकर पूछता है घर सदा ॥ पंत।

यहां विषम, विरोधाभास एवं लोकोक्ति की संसृष्टि है।

३—शब्दार्थालंकारसंसृष्टि—जहां अनेक शब्दालंकार और अर्थालंकारों की स्वतन्त्र रूप से स्थिति हो वहां शब्दार्थालंकारसंसृष्टि होती है।

उदाहरण—

विषम विषम सर विषम सर, लगत लगत पल है न।
आइ सुनाइ जियाइये, सुखद सुधासम बैन ॥

यहां अनुप्रास, यमक एवं उपमा की संसृष्टि है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संकर

नीर-क्षीरन्याय के अनुसार परस्पर मिले हुए अलंकारों को संकर कहते हैं। संकर शब्द का अर्थ है मिला हुआ। इसमें अनेक अलंकार इस प्रकार मिले रहते हैं कि उनको पृथक् नहीं किया जा सकता। इसमें मिले हुए सभी अलंकार परस्पर सापेक्ष रहते हैं, वे दूध और पानी की तरह परस्पर मिले रहते हैं। जिस प्रकार दूध और पानी को अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार यहां अलंकारों का पृथक्करण असंभव होता है। इसके तीन प्रकार होते हैं—अंगांगिभावसंकर, एकवाचकानुप्रवेशसंकर तथा संदेहसंकर।

संकर के भेद :—संकर अलंकार के तीन भेद होते हैं—

१—अंगांगिभाव संकर—जहाँ कई अलंकार अन्योन्याश्रित हों, वहाँ अंगांगिभाव संकर होता है।

अंग का अर्थ है अप्रधान या गौण और अंगी का अर्थ प्रधान होता है। इसमें एक अलंकार दूसरे का उपकारक होता है तथा एक की सिद्धि दूसरे के द्वारा होती है।

उदाहरण—

क—करुणामय को भाता है तम के परदे से आना।
ओ नभ की दीपावलियो, तुम छन भर को बुझ जाना॥ महादेवी।

यहाँ 'तम के परदे में' तथा नभ की दीपावलियो में दो रूपक हैं तथा दोनों ही एक दूसरे के उपकारक हैं।

ख—खल-बढ़ई बल करि थके, कटै न कुबत-कुठार।
आलबाल-उर झालरी, खरी प्रेम-तरु-डार॥ बिहारी।

खल रूपी बढ़ई जोर लगाकर थक गए किन्तु बदनामी (कुबत) रूपी कुठार कट न सका। फिर भी थाला (आलबाल) रूपी हृदय में प्रेमरूपी उत्तम डाल (झालरी) लहलहा गयी (हरीभरी हो गयी)। यहाँ खल-बढ़ई, कुबत-कुठार, आलबाल-उर और प्रेमतरु चार रूपक हैं। काटना कारण के होते हुए भी कार्य न होना, यहाँ विशेषोक्ति है। यहाँ रूपक से ही विशेषोक्ति की सिद्धि हुई है। दोनों अलंकार अन्योन्याश्रित हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२—एकाश्रयानुप्रवेश संकर—जहाँ एक ही आश्रय में अनेक अलंकारों की स्थिति हो वहाँ एकाश्रयानुप्रवेश संकर कहते हैं। इसे एकवाचकानुप्रवेश संकर भी कहा जाता है।

उदाहरण—

क—उर न टरै नींद न परै हरै न काल-विपाक।
छिन छाकै उछकै न फिरि, खरौ विषम छबि-छाक ॥ बिहारी।

यहाँ 'छबि-छाक' पद में रूपक और अनुप्रास दो अलंकार एक ही आश्रय में स्थित हैं।

ख—सिंधु-सेज पर धरावधू अब,
तनिक संकुचित बैठी सी ॥

यहाँ 'सिंधु-सेज' में रूपक एवं अनुप्रास है।

३—संदेह संकर—जहाँ बहुत से अलंकारों में एक अलंकार का निर्णय न हो सके वहाँ संदेह संकर होता है। संदेह संकर को समझने के लिए अलंकारों के साधक-बाधकभाव का जानना आवश्यक होता है। जो वस्तु किसी अलंकार के मानने में सहायक होती है उसे उसका साधक कहते हैं और जो बात किसी अलंकार के लिए प्रतिकूल सिद्ध हो तो वह उसका बाधक होती है। दो या दो से अधिक अलंकारों का एक स्थान पर समावेश होने पर भी विरोध के कारण एक साथ रहना संभव न होने पर यह निश्चय न होता कि यहाँ कौन अलंकार है तो वहाँ सन्देह संकर होता है।

उदाहरण—

क—सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के।
लोचन-नलिन भरे जल सिय के ॥ रामायण।

यहां 'लोचन-नलिन' में उपमा है या रूपक इसका निश्चय नहीं हो पाता है।

ख—काली आंखों में कितनी यौवन के मद की लाली।
मानिक-मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली ॥ प्रसाद।

यहां रूद्योपमा एवं रूपक में संदेह है। मानिक-मदिरा, नीलम की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection.

प्याली और मद की लाली में रूपक है या आंखें मानिक मदिरा से पूर्ण नीलम की प्याली की तरह सुन्दर हैं।

ग—जब शांत मिलन संध्या को हेमजाल पहनाते।
काली चादर के स्तर का खुलना न देखने पाते ॥ आंसू।

यहां रूपकातिशयोक्ति एवं उल्लास का संकर है। हेमजाल और काली चादर क्रमशः संध्या की लाली एवं रात्रि के अंधकार के द्योतक हैं, पर हेमजाल (गुण) के साथ काली चादर (दोष) के कारण उल्लास अलंकार भी है।

मिथ्याध्यवसिति

जहाँ किसी मिथ्या या असत्य अर्थ को सिद्ध करने के लिए दूसरे मिथ्या अर्थ की कल्पना की जाय, वहाँ मिथ्याध्यवसिति अलंकार होता है।

'मिथ्याध्यवसिति' का अर्थ है—मिथ्या (असत्य) की अध्यवसिति (निश्चय करना)। इस अलंकार में मिथात्व या असत्य के निश्चय का चमत्कारपूर्ण वर्णन होता है, अतः इसे मिथ्याध्यवसिति कहते हैं। इसमें एक असत्य अर्थ की सिद्धि के लिए दूसरे असत्य अर्थ की कल्पना की जाती है। जैसे कहा जाय कि 'आकाश-कुसुम की माला धारण करनेवाला ही वेश्या को वश में कर सकता है' तो वहाँ यह अलंकार होगा।

आकाश-कुसुम की माला एक मिथ्या अर्थ है और इसकी सिद्धि के लिए या इस कथन की पुष्टि के लिए दूसरे मिथ्यात्व या वेश्या को वश में करने की बात कही गयी है। यहाँ वेश्या को वशीभूत करने की असंभवता को सिद्ध करना ही कवि का अभिप्रेत है, किन्तु वह इसकी सिद्धि के लिए मिथ्यान्तर-आकाश-कुसुम की कल्पना करता है। आकाश-कुसुम का होना असम्भव है, उसी प्रकार वेश्या को वश में करना भी असंभव है।

उदाहरण—

क—जो आँजै नभ-कुसुम-रस, लखै सो अहि के कान।

यहाँ 'अहि (सर्प) के कान' को मिथ्या सिद्ध करने के लिए 'नभ-कुसुम-रस' (अन्य मिथ्या कथन) की कल्पना की गयी है।

ख—ससा-सींग के धनुष लिय, गगन-कुसुम धरि माल।
खेलत बन्ध्या सुतन सँग, तुव अरिगन छितिपाल ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रहर्षण

अत्यन्त हर्षकारक पदार्थों की प्राप्ति के वर्णन में प्रहर्षण अलंकार होता है। 'प्रहर्षण' का अर्थ है प्रकृष्ट हर्षण अर्थात् अत्यन्त हर्ष। इसमें अत्यन्त हर्षकारक पदार्थों की प्राप्ति का वर्णन होता है, अतः इसे प्रहर्षण अलंकार कहते हैं। इसके तीन प्रकार होते हैं—प्रथम प्रहर्षण, द्वितीय प्रहर्षण एवं तृतीय प्रहर्षण। इस अलंकार में कवि उत्कण्ठितार्थ (अभिलषितवस्तु) से अधिक का बिना यत्न की प्राप्ति का वर्णन करता है।

१—प्रथम प्रहर्षण—जब अभीष्ट वस्तु की अनायास (बिना यत्न के) प्राप्ति हो तो प्रथम प्रकार होगा।

जैसे—

जाको रूप अनूप लखि, सखि न गयो धरि धीर।
आपुहि ते गैयो दुहन, आयो वही अहीर॥

यहाँ अभिलषित वस्तु अर्थात् नायक का दर्शन होना बिना प्रयास के वर्णित है।

जिसके रूप को देखकर नायिका का धैर्य छूट गया था वह अहीर अपने आप ही गाय दूहने के लिए आ गया।

२—द्वितीय प्रहर्षण—वांछित वस्तु से अधिक का लाभ होने पर यह भेद होता है।

धरहु धीर ह्वैहैं सुत चारी।
त्रिभुवन विदित जगत भयहारी॥ रामायण

यहाँ राजा दशरथ के एक पुत्र माँगने में चार उत्कृष्ट पुत्रों की प्राप्ति का वर्णन अभीष्ट से अधिक का लाभ है।

३—तृतीय प्रहर्षण—उपाय की खोज में फल का लाभ होना तृतीय भेद है।

हरि की सुधि करि राधिका, चली अली के भौन।
हँसत बीच ही मिलि गए, बरनि सकै सुख कौन॥

कृष्ण की सुधि (याद) कर उनसे मिलने के लिए राधिका का सखी के घर जाने पर कृष्ण का बीच ही रास्ते में मिल जाना तृतीय प्रहर्षण हुआ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विषादन

वांछित अर्थ के विपरीत लाभ के वर्णन में विषादन अलंकार होता है।

विषादन का अर्थ है विशेष दुःख। यह अलंकार प्रहर्षण का विलोम या उल्टा है। इसमें अभीष्ट या वांछितार्थ के विपरीत फल की प्राप्ति या लाभ का वर्णन होता है। इसमें अभिलषित पदार्थ के विपरीत लाभ होने में दुःख होता है जब कि प्रहर्षण में अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति से सुख।

उदाहरण—

कन दैवो सौंप्यो ससुर, बहू थुरहथी जान।
रूप रहँचटे लगि लग्यौ, माँगन सब जग आनि॥ बिहारी।

दुलहिन को छोटे हाथ वाली (थुरहथी) जान कर उसके ससुर ने उसे कन (अनाज) देने का भार सौंप दिया कि यह छोटे हाथ के कारण भिक्षुकों को थोड़ा ही दे सकेगी किन्तु उसके रूप के लालची (रहँचटे) सारे संसार ने आकर माँगना प्रारम्भ कर दिया। यहां अभीष्ट के विरुद्ध फल की प्राप्ति के वर्णन में विषादन अलंकार हुआ।

अनुज्ञा

किसी विशेष गुण को देख कर दोष-युक्त वस्तु की इच्छा करना अनुज्ञा अलंकार है।

अनुज्ञा का अर्थ है अनुकूल ज्ञान—अनु (अनुकूल) ज्ञा (ज्ञान)। इस अलंकार में दोष में गुण देख कर, उसको अनुकूल समझ कर, उसकी इच्छा की जाती है। किसी विशेष गुण की स्थिति के कारण दोष को भी गुणयुक्त मान कर उसकी कामना का वर्णन अनुज्ञा अलंकार है।

उदाहरण—

१—चेरिये पै जो गुपाल रचैं तो चलौ री सबै मिलि चेरी कहावैं।

यहाँ गोपियों का दासी बनने में ही प्रसन्नता का अनुभव करना अनुज्ञा अलंकार है।

२—रामहिं चितव सुरेस सुजाना।
गौतप-साप परम हित माना॥ रामायण।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हजार आँखों से रामचन्द्र को देखकर इन्द्र का गौतम के शाप को कल्याणकारक समझना अनुज्ञा अलंकार है।

तिरस्कार

गुणयुक्त पदार्थ का, दोषयुक्त होने से तिरस्कार करना तिरस्कार अलंकार है।

तिरस्कार का अर्थ है अनादर। यह अनुज्ञा अलंकार का विलोम (विपरीत) है। इसमें गुणवाली वस्तु को भी दोषयुक्त समझ कर उसका तिरस्कार किया जाता है।

उदाहरण—

जिन होवहु श्रिय विभव औ, गज तुरंग वर बाग।
जिनमें रत नर करत नहिं, हरि चरनन अनुराग॥

यहां भगवान् की भक्ति में बाधक होने के कारण सम्पत्ति का तिरस्कार किया गया है।

रत्नावली

रत्नावली में ऐसे प्राकरणिक अर्थों का क्रमशः वर्णन होता है जिनका एक साथ कहा जाना प्रसिद्ध हो।

रत्नावली का अर्थ है रत्नों का समूह। इसमें रत्नों की पंक्ति की भांति प्राकरणिक अर्थों का क्रमानुसार वर्णन किया जाता है।

उदाहरण—

रसिक चतुरमुख लच्छिमपति, सकल ज्ञान के धाम।

यहां कवि किसी राजा की प्रशंसा करते हुए कहता है कि आप चतुरों में मुख्य, धनवान् एवं सारे ज्ञान के धाम हैं। यह अर्थ प्रस्तुत अर्थ है। इससे दूसरा प्रसिद्ध क्रम भी सूचित होता है—चतुरमुख (ब्रह्मा), लक्ष्मीपति (विष्णु) एवं सकल ज्ञान के धाम (शिव)। तीनों का प्रयोग प्रसिद्ध क्रम के अनुसार है।

अनुगुण

दूसरे की समीपता से अपने गुण की वृद्धि को अनुगुण अलंकार कहते हैं। अनुगुण का अर्थ है गुण का बढ़ना—अनु (वृद्धि), गुण। इस अलंकार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में किसी वस्तु के सम्बन्ध से किसी वस्तु के स्वाभाविक गुण में वृद्धि हो जाने का वर्णन होता है।

उदाहरण—मुक्तमाल हिय हास तें अधिक सेत ह्वै जात ॥

हृदय की मोती की माला का हँसी के कारण अधिक श्वेत हो जाना अनुगुण अलंकार हुआ।

गूढ़ोक्ति

जब अन्योद्देशक वाक्य को अन्य के प्रति कहा जाय तो गूढ़ोक्ति अलंकार होता है।

इसमें गूढ़ या रहस्यपूर्ण उक्ति का वर्णन होता है, इसलिए इसे गूढ़ोक्ति कहते हैं। किसी को लक्षित कर जब कोई बात किसी से कही जाय तो वहां यह अलंकार होगा। जिस व्यक्ति से कुछ कहना होता है उसे इस अभिप्राय से कहा जाता है कि उस व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य तटस्थ पुरुष उस तथ्य को न समझ सके अतएव उस व्यक्ति से श्लेष के रूप से कथन किया जाता है। ऐसी स्थिति में ही गूढ़ोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—

१—सांझ सखी मैं जाइहौं, पूजन देव महेस।

यहां उपपति को सन्ध्या समय मिलने के संकेत में गूढ़ोक्ति अलंकार है।

२—पुनि आउब यहि बिरिया काली।

यहां सीता द्वारा राम को पुनः मिलने का संकेत है।

विवृतोक्ति

जब कवि छिपे हुए रहस्य को स्वयं प्रकट कर दे तो विवृतोक्ति अलंकार होगा।

विवृतोक्ति का अर्थ है (खुली हुई) उघारी हुई उक्ति। इसमें कवि उक्तिचातुर्य के द्वारा गुप्त रहस्य को स्वयं प्रकट कर देता है।

उदाहरण—

तजै निकुंजहिं इत कढ़त, जब तब स्याम भुजंग।
यों कहि सखि सिख दै सबनि, रखी चतुर तिय संग ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहां कवि सूचित करता है कि सखियों के बीच कृष्ण की प्रेमिका को देखकर चतुर सखी ने कहा कि कुंज को छोड़कर काला सर्प आ रहा है अर्थात् कृष्ण आ रहे हैं। ऐसा कह कर सखी ने उस चतुर सखी को रोक लिया। यहां कवि द्वारा रहस्य का उद्घाटन होने से विवृतोक्ति अलंकार हुआ।

लोकोक्ति

प्रसंगप्राप्त किसी लोकोक्ति के प्रयोग में लोकोक्ति अलंकार होता है।

लोकोक्ति का अर्थ है कहावत। इस अलंकार में लोकोक्ति एवं मुहावरों के प्रयोग द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया जाता है।

उदाहरण—

१—बृथा मरहु जनि गाल बजाई।
मनमोदकनि कि भूख बुझाई॥ रामायण।

यहां 'गालबजाना' एवं 'मनमोदक से भूख न मिटना' दो कहावतों का प्रयोग है।

२—जो मेरी आँखों में रहती वही आँख दिखला वे।
जो कल संग हवा खाती थी, आज हवा बतलावे॥ नूरजहाँ।

छेकोक्ति

अन्य अर्थगर्भ लोकोक्ति को छेकोक्ति अलंकार कहते हैं।

छेकोक्ति का अर्थ है छेक (चतुर) उक्ति (कथन) अर्थात् चतुर जनों का कथन। इस अलंकार में चतुर व्यक्ति लोकोक्ति का इस प्रकार कथन करता है कि उससे किसी अन्य अर्थ की प्रतीति होने लगती है।

उदाहरण—

जमुनातट दृग रावरे, लगे लाल मुख ओर।
चोरन की गति को सखी जानत है जग चोर॥

यहां किसी लक्षिता नायिका (जिसका प्रेम प्रकट हो जाय) के प्रति चतुर सखी का कथन है कि मैं तुम्हारी सारी रति-क्रीड़ा को जानती हूँ।

तुम्हारी आंखें यमुना के तट पर प्रिय से लग चुकी हैं, प्रेमी की स्थिति को कोई प्रेमी ही जान सकता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अत्युक्ति

किसी वस्तु का अत्यन्त बढ़ाकर मिथ्यापूर्ण वर्णन करना अत्युक्ति अलंकार है। इस अलंकार में वीरता एवं दानशीलता का अत्यन्त बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया जाता है। अतिशयोक्ति एवं अत्युक्ति में मात्रा का अन्तर है। दोनों में ही लोक-सीमा का उल्लंघन कर वस्तु का वर्णन होता है किन्तु अत्युक्ति में यह वर्णन अत्यन्त अधिक होता है और अतिशयोक्ति में अधिक होता है। अत्युक्ति में अत्यन्त असत् उक्ति का प्रयोग किया जाता है जबकि अतिशयोक्ति में असत् उक्ति का प्रयोग होता है। सुन्दरता, शूरता, उदारता, प्रेम, विरह के अतिशय वर्णन में यह अलंकार दिखाई पड़ता है।

सौन्दर्यात्युक्ति—

भूषन भार सँभारिहैं, क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पांय न धरपरत, सोभा ही के भार॥ बिहारी।

यहां सुन्दरता का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन है।

शौर्यात्युक्ति—

कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर-चांप कर फेरन लगे।
ब्रह्माण्ड दिग्गज कमठ अहि महि सिन्धु भूधर डगमगे॥

प्रतिषेध

प्रसिद्ध निषेध की पुनः चर्चा करने या उसके वर्णन करने में प्रतिषेध अलङ्कार होता है।

प्रतिषेध का अर्थ है निषेध। इसमें जिस वस्तु का निषेध प्रसिद्ध होता है उसका पुनः निषेध किया जाता है।

उदाहरण—

छुटि न गांठि जु राम सों, तियन कह्यो तेहि ठाहिं।
सिय कंकन को छोरिबो, धनुष तोरिबो नांहि॥

यहां सीता के कंकन की गांठ खोलने में असमर्थ होने पर जनकपुर की स्त्रियों की राम के प्रति परिहासपूर्ण उक्ति है कि यह तो धनुष तोड़ना नहीं है यह तो कंकन खोलना है। इसमें बताया गया है कि हे राम! आप संसार की व्यावहारिकता से कोसों दूर हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विधि

पूर्वसिद्धि वस्तु का पुनः विधान करने में विधि अलंकार होता है।

यह अलंकार प्रतिषेध का विलोम है। विधि का अर्थ है विधान। जिस वस्तु का विधान पूर्व सिद्ध हो चुका है उसका फिर से वर्णन करना ही विधि अलंकार है।

उदाहरण—

तजु कर सर मुनि सुद्र पर द्विज-सिसु-जीवन हेत।
राम गात है जिन तजी, सीता गर्भ समेत॥

यहां शूद्र मुनि पर राम के शस्त्र-प्रहार का वर्णन है। राम का हाथ उनके अंग का एक भाग है, यह सिद्ध अर्थ है, किन्तु यहां दया का अभाव सिद्ध करने के लिए यह बताया गया है कि यह वही राम का हाथ है जिसने गर्भवती सीता का निष्कासन किया है। यह कथन राम में दया का अभाव सिद्ध करने के लिए किया गया है। यहाँ राम की कठोर हृदयता की पुष्टि या सिद्धि होती है।

अनुकूल

प्रतिकूल आचरण का अनुकूलता का साधक होना अनुकूल अलंकार है।

इस अलंकार में प्रतिकूलता अनुकूल कार्य सम्पन्न करती है, अतः इसे अनुकूल कहते हैं।

जैसे—

क्यों आवाज लगाती हो, हाजिर हूँ बन्दी कर लो।
जंजीरों का कौन काम है, मंजु अंक में भर लो॥ नूरजहाँ।

सलीम का मेहरुन्निसा से अपने को बन्दी बनाने के लिए आलिंगनपाश में बाँधने के लिए कहना अनुकूल अलंकार है। आलिंगनपाश में बांधना प्रतिकूल होने पर भी आनन्ददायक है।

दे० अलंकार मुक्तावली पृ० २५०–२५१।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नवीनतम चौखम्बा प्रकाशन

(सर्वाधिक नवीन प्रकाशन के सविवरण सूचीपत्र नं० ८१ निःशुल्क मंगाकर पढ़ें)

अमरकोष-रामाश्रमी—सटिप्पण 'सरल मणिप्रभा' हिन्दी व्या० सहित ३५-००

काशिकावृत्तिः—'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या सहित । प्र० ब्रह्मदत्तजिज्ञासुः प्रथम भाग १२-००

हिन्दी सिद्धान्तकौमुदी । व्या०-प्रो० बालकृष्ण पंचोली । पूर्वार्ध १८-००

प्रबन्धरत्नाकरः—डॉ० रमेशचन्द्र शुक्ल । सर्वोच्च निबन्ध ग्रन्थ १६-५०

नवीन अनुवादचन्द्रिका—डॉ० रमाकान्तत्रिपाठी । सरलतमसंस्करण ३-००

अभिज्ञानशाकुन्तल : एक अध्ययन—श्री काशीनाथ द्विवेदी ४-००

हिन्दी गाथासप्तशती—व्या०-जगन्नाथ पाठक । बृहत्तम संस्करण २०-००

हिन्दी युधिष्ठिर विजय—व्या०-ब्रजेशचन्द्र श्रीवास्तव १२-५०

ललितमाधवं नाटकम्—रूपगोस्वामि कृत । हिन्दीव्याख्या सहित १५-००

हिन्दी वक्रोक्तिजिवित—(विमर्श सहित) व्या०-राधेश्याम मिश्र १५-००

हिन्दी विक्रान्तकौरव—व्या०-पन्नालाल जैन ६-००

हिन्दी वेतालपंचविंशति—व्या०-दामोदर झा । कथासार सहित १०-००

हिन्दी राजनीतिरत्नाकर—चण्डेश्वर कृत । व्या०-वाचस्पति शास्त्री १०-००

काश्मीर शैवदर्शन और कामायनी—डॉ० भंवरलाल जोशी २०-००

संस्कृत नाट्यसिद्धान्त—डॉ० रमाकान्त त्रिपाठी १०-००

संस्कृत महाकाव्य की परम्परा—डॉ० केशवराव मुसलगांवकर २५-००

संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्गम एवं विकास—डॉ. कवठेकर २०-००

कवियों की लोकदृष्टि—पं० शिवशंकर त्रिपाठी १०-००

हिन्दी न्यायदर्शन—(वात्स्यायनभाष्यसहित) व्या०-ढुंढिराजशास्त्री १५-००

हिन्दी खण्डनखण्डखाद्य—(शांकरीसहित) व्या०-हनुमानदासजी २५-००

हिन्दी वैशेषिकदर्शन—(उपस्कार सहित) व्या०-ढुंढिराज शास्त्री २०-००

न्यायपरिचय—(म० म० फणिभूषण तर्कबागीश) हिन्दी रूपान्तर १०-००

बौद्धन्याय—(एफ० टी० शेरबात्स्की) हिन्दी रूपान्तर । प्र० भाग ३०-००

आपस्तम्बधर्मसूत्रम्—(उज्ज्वलावृत्तिसहित) 'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या २०-००

धर्मसिन्धुः—सटिप्पण 'धर्मदीपिका' हिन्दी व्याख्या सहित २५-००

शुक्रनीतिः—हिन्दी व्याख्या सहित । प्र० पण्डितराज रामेश्वरशास्त्री १२-५०

याज्ञवल्क्यस्मृतिः—(मिताक्षरासहित) 'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या २०-००

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी-१